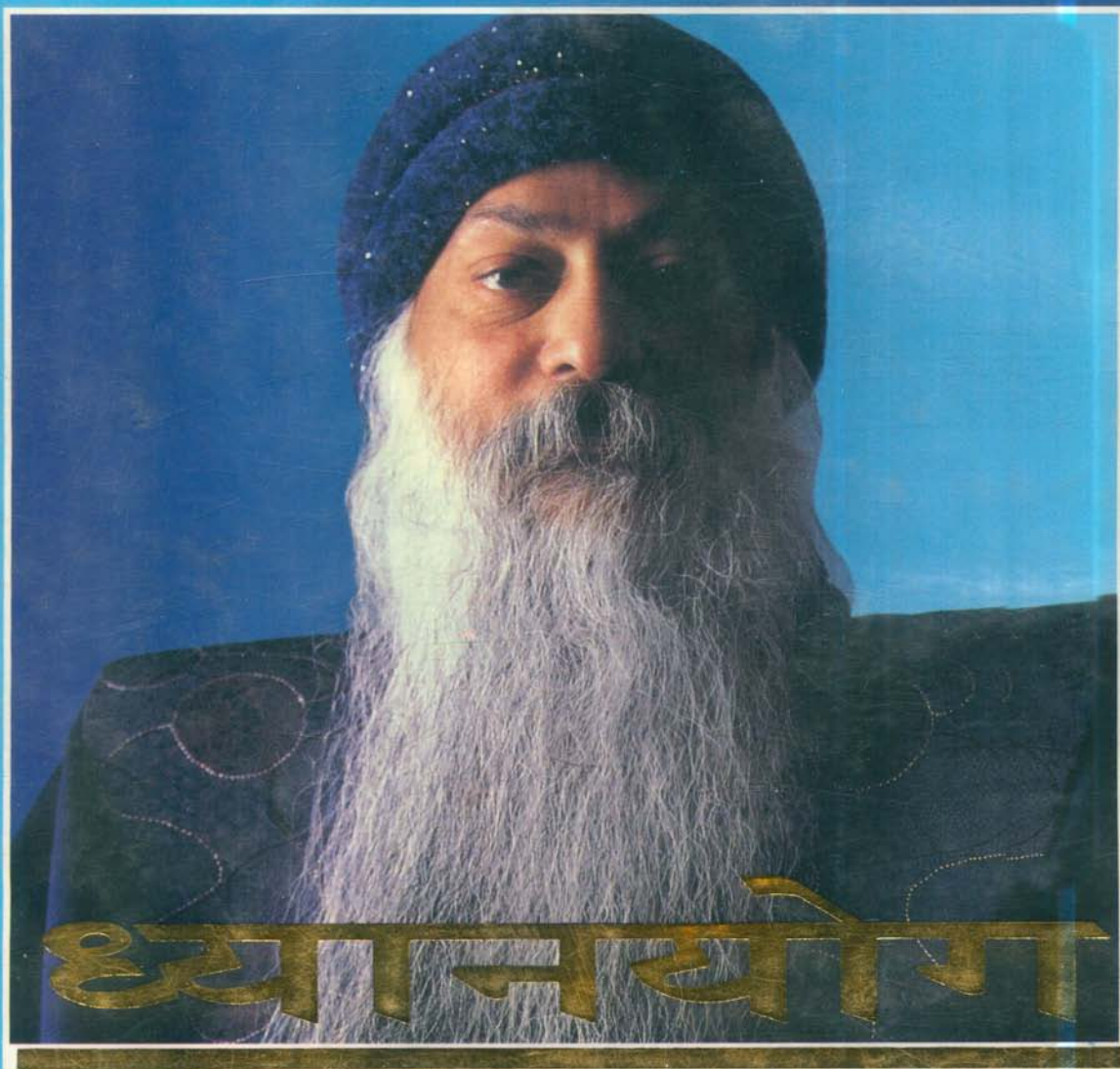


ओशो



प्रथम और अंतिम मुक्ति

ध्यान-साधना के लिए मार्ग-दर्शिका

मनु में ओशो के लिए अगाध प्रेम है।
बुद्ध के बाद वे ही एकमात्र व्यक्ति हैं
जिन्होंने चेतना के अंतिम स्तर
—महापरिनिर्वाणात्मक स्तर— का स्पर्श किया है।
उनके साथ जुड़कर मैं स्वयं को धन्य मानता हूँ।

महाकवि नीरज

मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण,
दर्शन और धर्म के चौराहे पर ओशो सबसे महत्वपूर्ण
और सबसे सफल शिक्षक हैं।

डा. गार्ड एल. क्लेक्सटन,
डी. फिल. (आक्सफर्ड)

शिक्षा-मनोविज्ञान के व्याख्याता
यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन, यू. के.

भगवान श्री रजनीश अब केवल 'ओशो' नाम
से जाने जाते हैं।

ओशो के अनुसार उनका नाम विलियम जेम्स के
शब्द 'ओशनिक' से लिया गया है, जिसका
अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना।

'ओशनिक' से अनुभूति की व्याख्या तो होती
है, लेकिन वे कहते हैं कि अनुभोक्ता के संबंध में
क्या? उसके लिए हम 'ओशो' शब्द का प्रयोग
करते हैं। बाद में उन्हें पता चला कि ऐतिहासिक
रूप से सुदूर पूर्व में भी 'ओशो' शब्द प्रयुक्त होता
रहा है, जिसका अभिप्राय है: भगवत्ता को उपलब्ध
व्यक्ति, जिस पर आकाश फलों की वर्षा करता है।



संकलन: स्वामी देव वदुद, बी एफ ए, एम एल ए (हार्वर्ड), डी फिल एम (आर आई एम यू)
अनुवाद: स्वामी संजय भारती, बी कॉम
संपादन: स्वामी योग चिन्मय, एम एम, डी फिल एम (आर आई एम यू), आचार्य
टाइपिंग: स्वामी अनुराग धर्मा, एम ए (यूनीवर्सिटी आफ हैम्बर्ग)
डिजाइन: मा प्रेम प्रार्थना, एम एस सी
टाइपसेटिंग: ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि., 50 कोरेगांव पार्क, पुणे
संयोजन: स्वामी योग अमित, बी एस सी
प्रकाशक: रेबल पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., 50 कोरेगांव पार्क, पुणे
मुद्रण: टाटा डॉनली लिमिटेड, मुंबई

Translation Copyright © 1990 Osho International Foundation
All Rights Reserved

Originally published under the title 'Meditation : The First And Last Freedom'
Copyright © 1988/1990 Osho International Foundation
All Rights Reserved

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग
या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व
ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

पाँचवाँ विशेष राजसंस्करण: मार्च, 1998

ISBN 81-7261-029-7

ओशो

ध्यानयोग

प्रथम और अंतिम मुक्ति

ध्यान-साधना के लिए मार्ग-दर्शिका

ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति

भूमिका

xi

पाठकों के लिए सुझाव

xiv

पहला खंड

ध्यान के विषय में

2. ध्यान क्या है ?
2. साक्षी है ध्यान की आत्मा

6. ध्यान की खिताबट

6. गहन मौन
7. संवेदनशीलता का विकास
7. प्रेम—ध्यान की सुवास
8. करुणा
8. अकारण सतत आनंद
8. प्रतिभा : प्रत्युत्तर की क्षमता
9. एकाकीपन तुम्हारा स्वभाव है
10. तुम्हारा सच्चा स्वरूप

दूसरा खंड

ध्यान का विज्ञान

12. विधियां और ध्यान
12. विधियां सहयोगी हैं
13. प्रयास से शुरू करो
13. ये विधियां सरल हैं
14. पहले विधि को समझ लो
15. सम्यक विधि का बोध
15. कब विधि को छोड़ना
16. कल्पना तुम्हारे लिए कार्य कर सकती है
18. साधकों के लिए प्रारंभिक सुझाव
18. ध्यान का समय
18. उपयुक्त स्थान
19. सुखपूर्वक होओ
19. रेचन से प्रारंभ करो

ध्यान का विज्ञान

24. मुक्ति हेतु दिशा-निर्देश
24. तीन अनिवार्यताएं
24. खेलपूर्ण रहो
24. धैर्य रखो
25. परिणाम मत खोजो
25. बेहोशी का भी सम्मान करों
26. यंत्र मदद देते हैं परंतु ध्यान निर्मित नहीं करते
27. तुम अनुभव नहीं हो
29. द्रष्टा साक्षी नहीं है
30. ध्यान एक गुरु है, एक 'नैक' है

तीसरा खंड

ध्यान की विधियां

35. जागरण की दो शक्तिशाली विधियां
37. सक्रिय-ध्यान : रेचन और उत्सव
39. सक्रिय-ध्यान (डाइनेमिक मेडिटेशन) के लिए निर्देश *
40. स्वयं को नया जन्म देना
43. साक्षी बने रहो
45. कुंडलिनी ध्यान *
47. ओशो ध्यान चिकित्सा-समूह
49. "मिस्टिक रोज़" ध्यान *
51. हंसी के लिए निर्देश
52. रुदन एवं 'शिखर पर बैठे द्रष्टा' के लिए निर्देश
53. "नो-माइंड" ध्यान
54. नो-माइंड ध्यान के लिए निर्देश *
55. "बॉर्न अगेन"
56. बॉर्न अगेन के लिए निर्देश

ध्यान की विधियां

57. नृत्य : एक ध्यान
57. नृत्य में खो जाओ
59. नटराज ध्यान *
60. विहरलिंग ध्यान *
63. कुछ भी ध्यान बन सकता है
65. दौड़ना, जॉगिंग और तैरना
67. हंसना ध्यान
68. हंसते हुए बुद्ध
69. धूम्रपान ध्यान
71. श्वास : एक सेतु — ध्यान तक
73. विपस्सना *
75. चलते हुए विपस्सना : चंक्रमण
76. श्वासों के बीच के अंतराल को देखना
78. बाजार में अंतराल को देखना
80. स्वप्न पर स्वामित्व
82. मनोदशाओं को बाहर फेंकना
83. हृदय को खोलना
85. बुद्धि से हृदय की ओर
88. प्रार्थना ध्यान *
90. शांत हृदय
94. हृदय का केंद्रीकरण
96. अतीशा की हृदय विधि
97. स्वयं से शुरू करो
99. आंतरिक केंद्रीकरण
101. दुखी या सुखी होने का निर्णय

ध्यान की विधियां

- 103. वास्तविक स्रोत की खोज
- 105. झंझावात का केंद्र
- 110. अनुभव करो—‘मैं हूँ’
- 112. मैं कौन हूँ?
- 113. स्व-सत्ता के केंद्र की ओर

- 115. भीतर देखना
- 117. अंतर्दर्शन ध्यान
- 119. समग्रता को देखना
- 121. ऊर्जा का अंतर्वृत्त

- 123. प्रकाश पर ध्यान
- 125. स्वर्णिम प्रकाश ध्यान
- 127. प्रकाश का हृदय
- 129. सूक्ष्म शरीर को देखना
- 131. आलोकमयी उपस्थिति

- 133. अंधकार पर ध्यान
- 135. आंतरिक अंधकार
- 139. आंतरिक अंधकार को बाहर लाओ

- 141. ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी करना
- 143. जीवन ऊर्जा का आरोहण—1
- 149. जीवन ऊर्जा का आरोहण—2

- 151. ध्वनिरहित नाद का श्रवण
- 153. नादब्रह्म ध्यान *
- 154. स्त्री-पुरुष जोड़ों के लिए नादब्रह्म
- 155. ओम् ॐ
- 158. देववाणी *

ध्यान की विधियाँ

- 159. देववाणी ध्यान के लिए निर्देश
- 160. संगीत : एक ध्यान
- 162. ध्वनि का केंद्र
- 165. ध्वनि का आरंभ और अंत

- 167. अंतस आकाश को खोज लेना
- 169. रिक्त आकाश में प्रवेश करो
- 172. सब को समाविष्ट करो
- 174. जेट-सेट के लिए एक ध्यान
- 175. विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो
- 178. बांस की पोली पोंगरी

- 179. मृत्यु में प्रवेश
- 181. मृत्यु में प्रवेश
- 184. मृत्यु का उत्सव मनाना

- 187. तृतीय नेत्र से देखना
- 189. गौरीशंकर ध्यान *
- 191. मंडल ध्यान *
- 192. साक्षी को खोजना
- 195. पंख की भांति छूना
- 198. नासाग्र को देखना

- 203. मात्र बैठना
- 205. झा-झेन
- 207. झेन की हंसी

- 211. प्रेम में ऊपर उठना : ध्यान में एक साझेदारी
- 215. प्रेम का वर्तुल

चौथा खंड

ध्यान में बाधाएं

- 217. संभोग में कंपना
- 219. प्रेम का आत्म-वर्तुल

- 223. दो कठिनाइयां
- 223. अहंकार
- 228. वाचाल मन

- 232. झूठी विधियां
- 232. ध्यान एकाग्रता नहीं है
- 234. ध्यान आत्मपरीक्षण नहीं है

- 236. मन की चालबाजियां
- 236. अनुभूतियों के द्वारा मत ठगे जाओ
- 236. मन पुनः प्रवेश कर सकता है
- 237. मन तुम्हें छल सकता है

पांचवां खंड

ओशो से प्रश्नोत्तर

- 242. केवल साक्षी ही वास्तव में नृत्य कर सकता है
- 246. स्वीकार और साक्षी से मन का अतिक्रमण
- 249. शिखर पर खड़ा द्रष्टा
- 252. मन को धटकने दो : तुम बस देखो
- 256. द्वंद्वों का निर्द्वंद्व साक्षी
- 258. सब मार्ग पर्वत शिखर पर मिल जाते हैं
- 260. रेचन के बाद सहज मौन और सृजन
- 265. संक्रमणकालीन अनिश्चितता और असुरक्षा
- 268. होश के क्षणों का संबल
- 272. द्रष्टा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर गहराओ
- 275. साक्षित्व के बीज और अ-मन के फूल
- 279. साक्षित्व पर्याप्त है

* इन ध्यान विधियों के लिए संगीत कैसेट साधना फाउंडेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पुणे, महाराष्ट्र में उपलब्ध है।

सं बुद्ध सद्गुरु ओशो ध्यान और मनुष्य की मुक्ति के लिए एक विश्वव्यापी क्रांति को जन्म दे रहे हैं। आप सोचेंगे: यह कैसा विषम चुनाव है! कैसे ये दो विषय जुड़ते हैं? तथापि इन दो आयामों का जो सूक्ष्म अंतर्संबंध है वह मनुष्य के भविष्य की विकास-क्षमताओं को समझने के लिए एक निर्णायक बिन्दु है। प्रेम, आत्मीयता, सृजन और विस्तार की हमारी संभावनाओं के खुलने का द्वार है ध्यान। और ओशो के अनुसार और कोई द्वार नहीं है, और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

पिछले पैंतीस वर्षों से ओशो विश्व के अनेक महान धर्मों और रहस्यदर्शी गुह्य परम्पराओं का रहस्योद्घाटन करते रहे हैं। उनके प्रवचनों को आज तक ६५० पुस्तकों के रूप में संकलित किया गया है, जिनमें उन्होंने अनेकानेक प्राचीन और समकालीन रहस्यदर्शियों पर जीवंत चर्चा की है और उनकी शिक्षाओं की अंतर्दृष्टि को आज के हमारे जीवन के संदर्भ में उपयोगी और समझने योग्य बनाया है।

प्रस्तुत पुस्तक ओशो द्वारा ध्यान पर दिये गये गहन प्रवचनांशों का संकलन है। इसमें ध्यान की अनेक विधियों का वर्णन है जो हमारी सहायता कर सकती हैं उस आयाम का अन्वेषण करने में जिसे उन्होंने

कहा है: “ध्यानयोग—प्रथम और अंतिम मुक्ति।” ओशो ने कहा है: “ध्यान कोई नई घटना नहीं है; तुम उसके साथ ही इस जगत में जन्मे हो। मन एक नया घटक है; ध्यान तुम्हारा स्वभाव है, ध्यान तुम्हारी अंतस सत्ता है। यह कठिन कैसे हो सकता है?”।

या तो हम ध्यान को कठिन बना लेते हैं ऐसी किसी बात से संघर्ष खड़ा करके जिसके बारे में हम सोचते हैं कि वह हमारी मुक्ति में बाधक है; या हम किसी ऐसी बात की खोज में लग जाते हैं, इस आशा के साथ कि वह हमें मुक्ति प्रदान करेगी। लेकिन वास्तव में ध्यान फलित होता है—हम जो हैं, उसमें विश्रामपूर्ण होने से—जीवन को क्षण-क्षण जीने से।

भूमिका

सारी दुनिया में लोग संघर्षरत हैं ‘किसी से’ मुक्त होने में। फिर चाहे वह संघर्ष हो परेशान करने वाली पत्नी से, या नियंत्रण की चाह वाले पति से, या कि आधिपत्य करने वाले मां-बाप से या उस बॉस से जो तुम्हारी सृजनात्मकता को कुचल रहा है। मेरा संघर्ष या तो था किसी दमनकारी राजनीतिक प्रणाली से या मेरा प्रयास था अनेक समूह मनोचिकित्सा (ग्रुप थैरेपी) में भाग लेकर अपने आपको बचपन में पड़े संस्कारों से मुक्त करना। इस संघर्ष ने मुझे मुक्त नहीं बनाया। यह केवल एक प्रतिक्रिया मात्र थी उसके विरुद्ध जिसे मैं अपनी मुक्ति के मार्ग का अवरोध समझता था।

ध्यान-जनित-मुक्ति ‘किसी लक्ष्य के

लिए' मुक्ति पाने का प्रयास भी नहीं है। हममें ऐसे कितने लोग हैं जो अपने आपको दैनंदिन जीवन की आपाधापी और तनावों से मुक्त कर किसी ऐसी स्थिति या आदर्शलोक में होने की कामना करते हैं जो विश्रामपूर्ण और स्वयं होने में सहायता कर सके? मेरे अनुभवों ने यह स्पष्ट किया है कि जिस मुक्ति की हम खोज कर रहे हैं, वह किसी बाहरी बात पर आधारित नहीं है। तो वह मुक्ति क्या है, जिसकी हम अभीप्सा कर रहे हैं?

मैंने सुना है कि ओशो ने इस स्थिति को "सिर्फ मुक्ति" कहा है—अभी और यहाँ जीना—क्षण-क्षण; न तो अतीत की स्मृतियों के बोझ में जीना, न भविष्य की कल्पनाओं में जीना। ओशो ने कहा है:

"खाते समय बस खाओ; उसमें तल्लीन रहो। चलते समय बस चलो—उसी क्षण में बने रहो। उस क्षण के आगे मत जाओ; यहाँ-वहाँ मत उछलो। मन या तो हमेशा आगे-आगे चलता है या पीछे घसिटा रहता है। वर्तमान क्षण में टिके रहो!" २

ओशो मन के बारे में जो कह रहे हैं, उसका हममें से अनेकों को अनुभव है। मन या तो हमेशा आगे-आगे कूदता रहता है या पीछे घसिटा रहता है, लेकिन यह कभी वर्तमान क्षण में नहीं होता। वह एक सतत बड़बड़ाहट है। जब यह बड़बड़ाहट चलती है, तब यह हमें वर्तमान में होने और जीवन को उसकी पूर्णता में जीने से वंचित कर देती है। हम कैसे समग्रतापूर्वक जी सकते हैं जब हमारा मन स्वयं के साथ

ही बड़बड़ा रहा हो—दैनंदिन कार्यों में हम संलग्न हैं तब भी?

इस बात को स्पष्ट करने के लिए एक छोटा-सा प्रयोग करें। इस पुस्तक को कुछ समय के लिए अलग रख दें और आंखें बंद कर लें। देखें कि आप कितनी देर चारों ओर की आवाजों को सुनते हुए और अपने शरीर के बोध का आनंद लेते हुए बस सहज बैठे रह सकते हैं। संभावना है कि यह समय ज्यादा लम्बा न होगा, शायद एक मिनट मात्र और आपका मन बातचीत शुरू कर देगा। यदि आप कुछ देर बैठें और ध्यान दें कि भीतर क्या चल रहा है तो आप चकित हो जायेंगे: आप पायेंगे कि अनेक असंगत अंतर्वाताओं को आप चला रहे हैं; यदि आप किसी दूसरे व्यक्ति को इन्हीं बातों को जोर से बोलते हुए सुनें तो आप उसे विक्षिप्त समझेंगे। यह सतत चल रही भीतर की बातचीत हमें जीवन से तोड़ देती है और प्रतिपल जीवन से मिलने वाले आनंद का भोग करने से हमें वंचित कर देती है।

तो क्या किया जाये इस बड़बड़ाहट के साथ जो हमारे वश में नहीं है, और जो हमें जीवन के अमूल्य क्षणों से तोड़ती है, उनसे हमें वंचित रखती है? मैंने ओशो को बारंबार यह कहते हुए सुना है कि ध्यान में डूबो। मैंने सुना है उन्हें यह कहते हुए कि हम इस बड़बड़ाहट में मन को सीधे बंद नहीं कर सकते, लेकिन ध्यान के द्वारा मन का शोरगुल थोड़ा धीमा हो जाता है और अंततः विलीन हो जाता है।

ध्यान से मन एक उपयोगी उपकरण बन

जाता है, परंतु ध्यान के अभाव में मन अपने शोरगुल से हमें गुलाम बनाए रखता है। लेकिन ध्यान की विधियों की बहुलता तथा उनकी अस्पष्टता के कारण उनकी अप्रासंगिता हमें अक्सर भ्रांति में डाल देती है। ओशो ने इन विधियों की अशुद्धियों को छांटकर अपने हाथों शुद्ध और सही विधियाँ बनाई हैं; उनके अंतर्गत रहस्यों का भेदन करके हमें उनकी सार-सूत्र-कुंजी प्रदान की है, जो हमारी कल्पना के परे अस्तित्व के रहस्य का द्वार खोल सकती है। यह कुंजियों की कुंजी—महा कुंजी है: साक्षीभाव—देखने की एक सहज और प्रगाढ़ अवस्था जिसमें, जैसे हम हैं, उसका पूरा स्वीकार है।

ओशो हमें समझाते हैं कि:

"साक्षी का सीधा-सरल अर्थ होता है—आग्रहशून्य तटस्थ अवलोकन; यही है ध्यान का पूरा रहस्य।" ३

वास्तव में यह इतना सरल है कि मैं इसे वर्षों तक चूकता रहा। हम सब निश्चय ही ऐसा सोचते हैं कि हम जानते हैं कि देखना, साक्षीभाव क्या है, क्योंकि हम अपने चारों ओर घटित हो रही चीजों का अवलोकन करते हैं। हम टेलीविजन देखते हैं; हम अन्य लोगों को पास से गुजरते देखते हैं और नोट करते हैं कि वे कैसे कपड़े पहने हुए हैं, वे कैसे लगते हैं, लेकिन सामान्यतः हम स्वयं का अवलोकन नहीं करते। यदि हम स्वयं को देखते भी हैं, तो वह बहुधा मनोग्रस्त मूल्यांकन होता है। हम अपने बारे में कोई ऐसी बात सोच निकालते हैं, जो हमें पसंद

नहीं है और फिर हम चिन्ता करने लगते हैं कि दूसरे लोग इस बाबत क्या सोचेंगे। बहुधा मन की यह भीतरी बड़बड़ाहट हमें ऐसा खयाल देती है कि हम दुखी व्यक्ति हैं। यह साक्षीभाव नहीं है।

ओशो हमें याद दिलाते हैं :

“कुछ भी करने की जरूरत नहीं है; बस साक्षी बने रहो—एक देखने वाले, एक निरीक्षक, मन की ट्रैफिक को देखने वाले—गुजरते हुए विचार, इच्छाएं, स्मृतियां, सपने, कल्पनाएं—इन सब को देखने वाले। बस तटस्थ खड़े रहें—शांत, देखते हुए, जानते हुए; बिना किसी मूल्यांकन के, बिना किसी निंदा के—न कहें कि ‘यह अच्छा है’, न कहें कि ‘यह बुरा है’।”⁴

ध्यान की इन विधियों द्वारा, जो इस पुस्तक में वर्णित हैं, आप आविष्कृत कर पायेंगे कि साक्षी क्या है। ओशो की उपस्थिति में बैठे-बैठे साक्षी सहज ही फलित होने लगता है। ऐसे क्षण आते हैं जब हम मात्र बैठे रहते हैं, जो भी हो रहा है उसे सुनते हुए, अनुभव करते हुए, देखते हुए—शांत, मौन। यह मौन है विराट शून्य आकाश की भांति—फिर भी जीवन से ओतप्रोत।

ओशो का निवास है आकाश और उनकी सत्ता है मौन। उनके शब्द हृदय के

अंतरतम को छूते हैं, उनके गीत शून्य आकाश के गीत हैं।

“तुम्हारी अंतस सत्ता और कुछ नहीं वरन अंतस आकाश है। बादल आते हैं और चले जाते हैं; ग्रह-उपग्रह जन्मते हैं और विसर्जित होते हैं; तारे बनते और मिटते हैं, लेकिन अंतस आकाश पूर्ववत् बना रहता है—अस्पर्शित, स्वच्छ, अखंड। इस अंतस आकाश को हम कहते हैं: साक्षी, द्रष्टा—और यही है ध्यान का सारा लक्ष्य।”

“भीतर मुड़ो और अंतस आकाश का आनंद लो। ध्यान रहे, जो भी तुम देख पाते हो, वह तुम नहीं हो। तुम विचारों को देख सकते हो, तब तुम विचार नहीं हो। तुम अपने भावों को देख सकते हो, तो तुम अपने भाव नहीं हो। तुम अपने सपनों, इच्छाओं, स्मृतियों, कल्पनाओं, प्रक्षेपों को देख सकते हो, तो तुम उनमें से कुछ भी नहीं हो। जो भी तुम देख पाते हो, उसको अलग करते जाओ। तब एक दिन एक दुर्लभ क्षण आता है, तुम्हारे जीवन का

सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण क्षण, जब निषेध करने को कुछ भी पीछे नहीं बचता।”

“समस्त दृश्य विलीन हो गये हैं और केवल द्रष्टा रह गया है। द्रष्टा है अंतस आकाश।”

“इसे जान लेना अभय हो जाना है, और इसे जानना प्रेम से आपूरित हो जाना है। इसे जान लेना दिव्य हो जाना है, अमृत हो जाना है।”⁵

इस पुस्तक के माध्यम से आप आमंत्रित हैं अपने अंतस आकाश का अनुभव करने के लिए।

मेरा अहोभाव और प्रेम शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता है, केवल आंसू ही मेरे भावों को व्यक्त कर सकते हैं। प्यारे ओशो के मुक्ति के आह्वान को सुन कर जीवन द्वारा क्षण-क्षण बरसाये गये सौंदर्य और प्रसाद के प्रति मेरा जागना प्रारंभ हुआ है।

अहोभाव, प्यारे सद्गुरु!

स्वामी देव चंद्र, पूना

इस पुस्तक को ध्यान के लिए मार्ग-दर्शक की भांति उपयोग करने के लिए आपको इसे प्रथम से अंतिम पृष्ठ तक पढ़ना जरूरी नहीं है। कोई विधि आजमाने के लिए इस पुस्तक का उपयोग अंतर्प्रेरणा से करें। पुस्तक पर नजर डालें और कोई अध्याय या ध्यान की विधि जो आपको रुचे उसे चुन लें। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि आप सीधे तीसरे खण्ड में संकलित किसी विधि में छलांग लगाना चाहें और उसमें डूबना चाहें, बिना भूमिका और निर्देशिका अंश पढ़े। तो जो अच्छा लगे वैसा करें।

एक विधि चुनने के बाद कम से कम तीन दिन तक उसका अभ्यास करें, फिर यदि अच्छा अनुभव आये, तो उसका अभ्यास जारी रखें—गहराई में जायें। महत्वपूर्ण बात यह है कि विधि का प्रयोग आप गैर-गंभीर, खेल के भाव से करें और अपने से पूछें कि क्या यह विधि मेरे आनंद और संवेदनशीलता को गहरा करके मेरे विकास में सहायक है?

ध्यान में संगीत का उपयोग

संगीत और ध्यान बड़ी सरलता से साथ-साथ गति करते हैं। इस संबंध में ओशो ने एक जगह कहा है:

इस पुस्तक का उपयोग कैसे करें

"मेरे देखे ध्यान और संगीत एक घटना के दो पहलू हैं। और बिना संगीत के ध्यान में कुछ कमी रह जाती है; बिना संगीत के ध्यान कुछ ढीला और निष्प्राण-सा होता है। और बिना ध्यान के संगीत केवल एक शोरगुल होता है—लयबद्ध, फिर भी एक कोलाहल। बिना ध्यान के संगीत मात्र एक मनोरंजन है; संगीत और ध्यान साथ-साथ गतिमान होने चाहिए। इससे दोनों ही विषयों में एक नया आयाम जुड़ जाता है। दोनों ही इससे अधिक सम्पन्न हो जाते हैं।"⁶

इसलिए सक्रिय ध्यान को संचालित करने के लिए संगीत का कैसेट बनाया गया है। साथ ही अन्य सक्रिय ध्यान-विधियों, जैसे कुंडलिनी, मंडल, नटराज, देववाणी, प्रार्थना और गौरीशंकर आदि के लिए भी संगीत के कैसेट तैयार हैं। ध्यान के ये विशेष संगीत कैसेट रेबल डिस्ट्रिब्यूशन

प्रा.लि., 17 कोरेगांव पार्क, पूना में उपलब्ध हैं।

तिरछे अक्षरों में छपी पंक्तियां

खण्ड तीन में सम्मिलित ध्यान की विधियां विभिन्न बुद्धपुरुषों, जैसे भारत के बुद्ध, पतंजलि और शिव; तिब्बत के अतीशा और तिलोपा तथा चीन के सद्गुरु लाओत्सु आदि की देशनाओं से ली गयी हैं। जब ओशो उनके वचनों और सूत्रों का उद्धरण देते हैं, तब उन पंक्तियों को, उस संत के नाम सहित तिरछे अक्षरों में छपा गया है। फिर कुछ निर्देशक पंक्तियां ध्यान-विधियों के साथ जोड़ी गई हैं, वे ओशो की शिक्षाओं पर आधारित हैं लेकिन ये पंक्तियां मूलतः ओशो के शब्दों में नहीं हैं। इस फर्क को दर्शाने के लिए उन्हें भी तिरछे अक्षरों में छपा गया है।

ध्यान के विषय में

ध्यान क्या है ?

साक्षी है ध्यान की आत्मा

ध्यान अभियान है—सबसे बड़ा अभियान जिस पर मनुष्य का मन निकल सकता है। ध्यान है बस होना—कुछ भी न करते हुए—कोई क्रिया नहीं, कोई विचार नहीं, कोई भाव नहीं। तुम बस हो। और यह एक खालिस आनंद है। कहां से आता है यह आनंद जब तुम कुछ भी कर नहीं रहे हो? यह आता है न-कहीं से या कि आता है सब-कहीं से। यह अकारण है, क्योंकि यह अस्तित्व बना है उस तत्व से जिसे कहते हैं आनंद।

जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो—न शरीर से, न मन से—किसी भी तल पर नहीं—जब समस्त क्रियाएं शून्य हैं और तुम बस हो, स्व मात्र—यह है ध्यान। तुम उसे 'कर' नहीं सकते; उसका अभ्यास नहीं हो सकता; तुम उसे समझ भर सकते हो।

जब कभी तुम्हें मौका मिले बस होने का, तब सब क्रियाएं गिरा देना। सोचना भी क्रिया है, एकाग्रता भी क्रिया है और

मनन भी। यदि एक क्षण के लिए भी तुम अक्रिया में हो, बस 'स्व' में हो—परिपूर्ण विश्राम में—यह है ध्यान। और एक बार तुम्हें इसका गुर मिल जाए, फिर तुम इसमें जितनी देर रहना चाहो, रह सकते हो। अंततः चौबीस घंटे ही इसमें रहा जा सकता है।

एक बार तुम्हें अंतस के अकंपित रहने का बोध हो जाए, फिर तुम धीरे-धीरे कर्म करते हुए भी यह होश रख सकते हो कि

तुम्हारा अंतस निष्कंप बना रहता है। यह ध्यान का दूसरा आयाम है। पहले सीखो कि कैसे बस होना है; फिर छोटे-छोटे कार्य करते हुए इसे साधो: फर्श साफ करते हुए, स्नान लेते हुए स्व से जुड़े रहो। फिर तुम जटिल कार्यों के बीच भी इसे साध सकते हो।

उदाहरण के लिए मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन मेरा ध्यान खंडित नहीं हो रहा है। मैं बोले चला जा सकता हूं, लेकिन मेरे अंतस केंद्र पर एक तरंग भी नहीं उठती, वहां बस मौन है, गहन मौन।

इसलिए ध्यान कर्म के विपरीत नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम्हें जीवन को छोड़कर भाग जाना है। यह तो तुम्हें एक नये ढंग से जीवन को जीने की शिक्षा देता है। तुम झंझावात के शांत केंद्र बन जाते हो। तुम्हारा जीवन गतिमान रहता है—पहले से अधिक प्रगाढ़ता से, अधिक आनंद से, अधिक स्पष्टता से, अधिक अंतर्दृष्टि और

अधिक सृजनात्मकता से—फिर भी तुम सब में निर्लिप्त होते हो, पर्वत शिखर पर खड़े निरीक्षणकर्ता की भांति, नीचे चारों ओर जो हो रहा है उसे मात्र देखते हुए।

तुम कर्ता नहीं, द्रष्टा होते हो। यह ध्यान का पूरा रहस्य है कि तुम द्रष्टा हो जाते हो। कर्म अपने तल पर जारी रहते हैं, इसमें कोई समस्या नहीं बनती—चाहे लकड़ियां काटना हो या कुएं से पानी भरना हो। तुम कोई भी छोटा या बड़ा काम कर सकते हो; केवल एक बात अवांछित है और वह है कि तुम्हारा स्व-केंद्रस्थ होना खोये नहीं। यह होश, यह द्रष्टा सर्वथा अनाच्छादित और अखंडित बना रहना चाहिए।²

यहूदी धर्म में विद्रोही साधकों की एक रहस्य-धारा है हसीद। इसके स्थापक बाल शेम एक दुर्लभ व्यक्ति थे। मध्य रात्रि को वे नदी से वापस लौटते। यह उनकी रोज की चर्या थी, क्योंकि रात में नदी पर परिपूर्ण निस्तब्धता और शांति रहती थी। वे बस बैठते थे वहां—कुछ न करते—बस 'स्व' को देखते हुए, द्रष्टा को देखते हुए। एक रात जब वे नदी से वापस आ रहे थे, तब वे एक धनी व्यक्ति के बंगले से गुजरे और पहरेदार प्रवेशद्वार पर खड़ा था।

पहरेदार उलझन में पड़ा हुआ था कि हर रात, ठीक इसी समय यह व्यक्ति वापस आ जाता था। पहरेदार आगे आया और बोला, "मुझे क्षमा करें आपको रोकने के लिए, लेकिन मैं अपनी उत्सुकता को और ज्यादा रोक नहीं सकता। तुम मुझ पर

दिन-रात छाये हुए हो—दिन-प्रति-दिन। तुम्हारा काम-धंधा क्या है? तुम नदी पर क्यों जाते हो? अनेक बार मैं तुम्हारे पीछे गया हूं, लेकिन वहां कुछ भी नहीं होता—तुम बस बैठे रहते हो घंटों, फिर आधी रात को तुम वापस आते हो!"

बाल शेम ने कहा, "मुझे पता है कि तुम कई बार मेरे पीछे आये हो, क्योंकि रात का सन्नाटा इतना है कि मैं तुम्हारे पदचाप की ध्वनि सुन सकता हूं। और मैं जानता हूं कि हर रात तुम बंगले के द्वार के पीछे छिपे रहते हो। लेकिन केवल ऐसा ही नहीं है कि तुम मेरे बारे में उत्सुक हो, मैं भी तुम्हारे बारे में उत्सुक हूं। तुम्हारा काम क्या है?"

पहरेदार बोला, "मेरा काम? मैं एक साधारण पहरेदार हूं।"

बाल शेम बोला, "हे परमात्मा, तुमने तो मुझे कुंजी जैसा शब्द दे दिया। मेरा धंधा भी तो यही है!"

पहरेदार बोला, "लेकिन मैं नहीं समझा! यदि तुम पहरेदार हो तो तुम्हें किसी बंगले या महल की देख-रेख करनी चाहिए। तुम वहां क्या देखते हो नदी की रेत पर बैठे-बैठे?"

बाल शेम ने कहा, "हमारे बीच थोड़ा फर्क है। तुम देख रहे हो कि बाहर का कोई व्यक्ति महल के भीतर न घुस पाये। मैं बस इस देखनेवाले को देखता रहता हूं। कौन है यह द्रष्टा?—यह मेरे पूरे जीवन की साधना है कि मैं स्वयं को देखता हूं।"

पहरेदार बोला, "लेकिन यह एक अजीब काम है। कौन तुम्हें वेतन देगा?"

बाल शेम बोला, "यह इतना

आनंदपूर्ण, आह्लादकारी परम धन्यता है कि यह स्वयं अपना पुरस्कार है। इसका एक क्षण—और सारे खजाने इसके सामने फीके हैं।"

पहरेदार बोला, "यह अजीब बात है। मैं अपने पूरे जीवन निरीक्षण करता रहा हूं लेकिन मैं ऐसे किसी सुंदर अनुभव से परिचित नहीं हुआ हूं। कल रात मैं आपके साथ आ रहा हूं। मुझे इसमें दीक्षित करें। मुझे पता है कि कैसे निरीक्षण करना है लेकिन शायद देखने के किसी दूसरे ही आयाम की जरूरत है। आप शायद किसी दूसरे ही आयाम के द्रष्टा हैं।"

केवल एक ही चरण है और वह चरण है एक नया आयाम, एक नई दिशा। या तो हम बाहर देखने में रत हो सकते हैं या हम बाहर के प्रति आंखें बंद कर सकते हैं और अपनी समग्र चेतना को भीतर केंद्रित कर सकते हैं। फिर तुम जान सकोगे, क्योंकि तुम 'जानने वाले' हो, तुम चैतन्य हो। तुमने इसे कभी खोया नहीं है। तुमने अपनी चेतना को हजार बातों में उलझा भर रखा है। अपनी चेतना को सब तरफ से वापस लौटा लो और उसे स्वयं के भीतर विश्रामपूर्ण होने दो और तुम घर वापस आ गये हो।³

ध्यान का अंतरतम और सार तत्व है यह सीखना कि कैसे साक्षी हों।

एक कौआ आवाज दे रहा है... तुम सुन रहे हो। यहां दो हैं—विषय-वस्तु (आब्जेक्ट) और विषयी (सब्जेक्ट)।

लेकिन क्या तुम उस द्रष्टा को देख सकते हो जो इन दोनों को देख रहा है?—कौआ—सुनने वाला—और फिर एक 'कोई और' जो इन दोनों को देख रहा है। यह एक सीधी-सरल घटना है।

तुम एक वृक्ष को देखते हो—तुम हो और वृक्ष है, लेकिन क्या तुम एक और तत्व को नहीं पाते?—कि तुम वृक्ष को देख रहे हो और फिर एक द्रष्टा है जो देख रहा है कि तुम वृक्ष को देख रहे हो।⁴

साक्षी ध्यान है। तुम क्या देखते हो, यह बात गौण है। तुम वृक्षों को देख सकते हो, तुम नदी को देख सकते हो, बादलों को देख सकते हो, तुम बच्चों को आसपास खेलता हुआ देख सकते हो। साक्षी होना ध्यान है। तुम क्या देखते हो यह बात नहीं है; विषय-वस्तु की बात नहीं है।

देखने की गुणवत्ता, होशपूर्ण और सजग होने की गुणवत्ता—यह है ध्यान।

एक बात ध्यान रखें: ध्यान का अर्थ है होश। तुम जो कुछ भी होशपूर्वक करते हो वह ध्यान है। कर्म क्या है, यह प्रश्न नहीं, किंतु गुणवत्ता जो तुम कर्म में ले आते हो, उसकी बात है। चलना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक चलो। बैठना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक बैठ सको। पक्षियों की चहचहाहट को सुनना ध्यान हो सकता है, यदि तुम होशपूर्वक सुन सको। या केवल अपने भीतर मन की आवाजों को सुनना ध्यान बन सकता है, यदि तुम जाग्रत और साक्षी रह सको।

सारी बात यह है कि तुम सोये-सोये मत रहो। फिर जो भी हो, ध्यान होगा।⁵

होश के लिए पहला चरण है अपने शरीर के प्रति पूर्ण होश रखना। धीरे-धीरे व्यक्ति प्रत्येक भाव-भंगिमाओं के प्रति, हर गति के प्रति होशपूर्ण हो जाता है। और जैसे ही तुम होशपूर्ण होने लगते हो, एक चमत्कार घटित होने लगता है: अनेक बातें जो तुम पहले कब्रते थे, सहज ही गिर जाती हैं। तुम्हारा शरीर ज्यादा विश्रामपूर्ण, ज्यादा लयबद्ध हो जाता है। शरीर तक में एक गहन शांति फैल जाती है, एक सूक्ष्म संगीत फैल जाता है शरीर में।

फिर अपने विचारों के प्रति होशपूर्ण होना शुरू करो। जैसे शरीर के प्रति होश को साधा, वैसे ही अब विचारों के प्रति करो। विचार शरीर से ज्यादा सूक्ष्म हैं, और फलतः ज्यादा कठिन भी हैं। और जब तुम विचारों के प्रति जाओगे, तब तुम आश्चर्यचकित होओगे कि भीतर क्या-क्या चलता है। यदि तुम किसी भी समय भीतर क्या चलता है उसे लिख डालो, तो तुम चकित होओगे। तुम भरोसा ही न कर पाओगे कि भीतर यह सब क्या चलता है। फिर दस मिनट के बाद इसे पढ़ो—तुम पाओगे कि भीतर एक पागल मन बैठा हुआ है। चूंकि हम होशपूर्ण नहीं होते, इसलिए यह सब पागलपन अंतर्धारा की तरह चलता रहता है। यह प्रभावित करता है—जो कुछ तुम करते हो उसे या जो कुछ तुम नहीं करते

उसे। सब कुछ प्रभावित होता है। और इन सब का जोड़ ही तुम्हारा जीवन बनने वाला है। इसलिए इस भीतर के पागल व्यक्ति को बदलना होगा। और होश का चमत्कार यह है कि तुम्हें और कुछ भी नहीं करना है सिवाय होशपूर्ण होने के। इसे देखने की घटना मात्र ही इसका रूपांतरण है। धीरे-धीरे यह पागलपन विसर्जित हो जाता है। धीरे-धीरे विचार एक लयबद्धता ग्रहण करने लगते हैं; उनकी अराजकता हट जाती है और उनकी एक सुसंगतता प्रकट होने लगती है। और फिर एक ज्यादा गहन शांति उतरती है। फिर जब तुम्हारा शरीर और मन शांतिपूर्ण हैं तब तुम देखोगे कि वे परस्पर भी लयबद्ध हैं, उनके बीच एक सेतु है। अब वे विभिन्न दिशाओं में नहीं दौड़ते; अब वे दो घोड़ों पर सवार नहीं होते। पहली बार भीतर एक सुख-चैन आया है और यह सुख-चैन बहुत सहायक होता है—तीसरे तल पर ध्यान साधने में और वह है—अपनी अनुभूतियों और भावदशाओं के प्रति होशपूर्ण होना।

यह सूक्ष्मतम तल है और सबसे कठिन भी। लेकिन यदि तुम विचारों के प्रति होशपूर्ण हुए हो, तब यह केवल एक कदम आगे है। कुछ ज्यादा गहन होश और तुम अपने भावों और अनुभूतियों के प्रति सजग हो जाओगे। एक बार तुम इन तीन आयामों में होशपूर्ण हो जाते हो, फिर ये तीनों जुड़कर एक ही घटना बन जाते हैं। जब ये तीन एक साथ हो जाते हैं—एक साथ क्रियाशील और निनादित हो उठते हैं, तब तुम

इनका संगीत अनुभव कर सकते हो, वे तीनों एक सुरताल बन जाते हैं—तब चौथा चरण “तुरीय” घटता है—उसे तुम कर नहीं सकते। चौथा अपने से होता है। यह समग्र अस्तित्व से आया उपहार है; जो प्रथम तीन चरणों को साध चुके हैं, उनके लिए यह एक पुरस्कार है।

चौथा चरण होश का चरम शिखर है, जो व्यक्ति को जाग्रत बना देता है।

व्यक्ति होश के प्रति जागरूक हो जाता है—यह है चौथा। व्यक्ति बुद्ध हो जाता है, जाग जाता है। और इस जागरण में ही अनुभूति होती है कि परम आनंद क्या है। शरीर जानता है देह-सुख; मन जानता है प्रसन्नता; हृदय जानता है हर्षोल्लास और चौथा, तुरीय जानता है आनंद। आनंद लक्ष्य है संन्यास का, सत्य के खोजी का—और जागरूकता है उसके लिए मार्ग।⁶

महत्व की बात है कि तुम जागरूक हो, कि तुम होशपूर्ण होना भूले नहीं हो, कि तुम साक्षी हो, द्रष्टा हो, सचेत हो। और जैसे-जैसे देखने वाला, द्रष्टा ज्यादा सघन, ज्यादा थिर, ज्यादा अकंप होने लगता है—एक रूपांतरण घटित होता है: दृश्य विसर्जित होने लगते हैं। पहली बार द्रष्टा स्वयं दृश्य बन जाता है, देखने वाला स्वयं दृष्ट हो जाता है। तुम ‘घर’ वापस आ गए।⁷

ध्यान की खिलावट

ध्यान कोई भारतीय पद्धति मात्र नहीं है; यह एक विधि मात्र नहीं है। तुम इसे सीख नहीं सकते। यह तो एक विकास है—तुम्हारे समग्र जीवन का विकास, तुम्हारे समग्र जीवन से उठा प्रादुर्भाव। ध्यान कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम्हारे साथ जोड़ा जा सके—जैसे अभी तुम हो। इसे तुम्हारे साथ जोड़ा नहीं जा सकता; एक अमूल रूपांतरण से, एक अंतस क्रांति से ही यह तुममें घट सकता है। यह एक खिलावट है, एक विकास है। विकास हमेशा समग्र से आता है; यह कोई जोड़ या संग्रह नहीं है। प्रेम की तरह ही यह बाहर से तुममें जोड़ा नहीं जा सकता। यह तुम्हारे अंतस से, तुम्हारी समग्रता से उपजता है। तुम्हें ध्यान की ओर विकसित होना है। ४

गहन मौन

अकसर समझा जाता रहा है कि मौन एक नकारात्मक अवस्था है—एक रिक्तता, आवाजों और शोरगुल का अभाव। यह गलतफहमी फैली हुई है क्योंकि बहुत ही कम लोगों ने आजतक मौन का अनुभव किया है। मौन के नाम पर कुल जमा जो उन्होंने अनुभव किया है

वह शोरगुल का अभाव मात्र है। लेकिन मौन एक सर्वथा भिन्न आयाम है। यह पूर्णतः विधायक है। यह अस्तित्वमय है—कोई रिक्तता नहीं। यह एक संगीत का अतिरेक प्रवाह है, जिसे तुमने कभी सुना नहीं; एक सुवास जो तुम्हारे लिए अनजानी है; एक ऐसा आलोक जिसे केवल अंतस चक्षुओं द्वारा ही देखा जा सकता है।

यह कोई काल्पनिक बात नहीं है, यह

एक वास्तविकता है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सदा से मौजूद ही है लेकिन हम कभी भीतर नहीं देखते हैं।

तुम्हारे अंतर्जगत का अपना ही स्वाद है, अपनी ही सुवास है, अपना ही प्रकाश है। और वहां परम मौन है—परिपूर्ण, असीम और शाश्वत। वहां कभी कोई शोरगुल न रहा है और न कभी होगा। कोई शब्द वहां नहीं पहुंच सकता है, लेकिन तुम वहां पहुंच सकते हो।

तुम्हारी स्व-सत्ता का केंद्र ही झंझावात का शांत केंद्र है। उसके चारों ओर जो कुछ घटता है वह उस केंद्र को प्रभावित नहीं करता। वहां शाश्वत मौन है: दिन आते हैं, चले जाते हैं; वर्ष आते हैं, चले जाते हैं; सदियां आती हैं और बीत जाती हैं। जीवन आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन तुम्हारी स्व-सत्ता का शाश्वत मौन सदा वैसा ही बना रहता है—वही स्वरहीन संगीत, वही भगवत्ता की सुवास, वही

मरणधर्मा और क्षणभंगुरता का अतिक्रमण।

यह 'तुम्हारा' मौन नहीं है। तुम ही मौन हो।

यह कुछ ऐसा नहीं है जिस पर तुम्हारी मालिकियत हो सके; वरन वही तुम्हें आविष्ट किए हुए है और यही उसकी महिमा है। वहां तुम भी नहीं होते, क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी भी वहां बाधा बन जाएगी। मौन इतना गहन होता है कि वहां कोई भी मौजूद नहीं होता—तुम भी नहीं। और यह मौन तुम्हारे लिए सत्य, प्रेम और हजारों आशीष ले आता है।⁹

संवेदनशीलता का विकास

ध्यान तुममें संवेदनशीलता लाएगा—इस जगत से जुड़े होने का एक गहन भाव लाएगा। यह जगत हमारा है—ये सितारे हमारे हैं और हम यहां अजनबी नहीं हैं। आंतरिक रूप से हम इस जगत से जुड़े हुए हैं। हम इसके हिस्से हैं, हम इसका हृदय हैं।

तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि घास का एक छोटा-सा तिनका भी तुम्हारे लिए बहुत महत्व रखने लगता है। तुम्हारी संवेदनशीलता तुम्हें स्पष्ट कर देती है कि यह छोटा-सा घास का तिनका भी अस्तित्व के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि सबसे बड़ा सितारा। इस घास के तिनके के बिना अस्तित्व कुछ कम सम्पन्न हो जाएगा। घास का यह छोटा-सा

तिनका अनूठा है, अद्वितीय है, उसकी अपनी निजता है।

और यह संवेदनशीलता तुम्हारे लिए नयी मित्रताएं पैदा कर देगी—मैत्री-भाव वृक्षों के साथ, पक्षियों के साथ, पशुओं के साथ—पहाड़ों, नदियों और सागरों के साथ। और जैसे-जैसे प्रेम फैलता है, मैत्री बढ़ती है, जीवन ज्यादा समृद्ध होता जाता है।¹⁰

प्रेम—ध्यान की सुवास

यदि तुम ध्यान करते हो तो देर-अबेर तुममें प्रेम का आविर्भाव होने ही वाला है। यदि तुम गहराई से ध्यान करते हो, तो देर-अबेर तुम अनुभव करने लगोगे कि एक प्रगाढ़ प्रेम तुम्हारे भीतर उठ रहा है, जो तुमने पहले कभी नहीं जाना है—होने की एक नई गुणवत्ता, एक नये द्वार का खुलना। तुम एक नई लौ बन जाते हो और अब तुम बांटना चाहते हो।

यदि तुम गहनता से प्रेम करते हो, तो धीरे-धीरे तुम्हें पता चलने लगता है कि तुम्हारा प्रेम ज्यादा ध्यानस्थ होता जा रहा है। मौन का एक सूक्ष्म गुण तुममें प्रवेश कर रहा है। विचार विलीन हो रहे हैं, अंतराल प्रकट हो रहे हैं। मौन—मौन—मौन! तुम स्वयं की गहराई को छू रहे हो।

प्रेम तुम्हें ध्यानस्थ बना देता है यदि वह ठीक दिशा में हो।

ध्यान तुम्हें प्रेमपूर्ण बना देता है यदि वह

ठीक दिशा में हो।¹¹

तुम्हें ऐसा प्रेम चाहिए जो ध्यान से जनमा हो—मस्तिष्क से नहीं। इसी प्रेम की मैं निरंतर चर्चा करता रहता हूँ।

करोड़ों दंपति दुनिया में ऐसे जी रहे हैं जैसे कि उनके बीच प्रेम मौजूद हो। वे 'जैसे कि' के जगत में जी रहे हैं। निःसंदेह कैसे आनंदित हो सकते हैं वे? उनकी सारी ऊर्जा का हास हो जाता है। वे एक झूठे प्रेम से कुछ पाने का प्रयास कर रहे हैं; इससे बात नहीं बनती। इसीलिए इतनी निराशा, इतनी ऊब, सतत खींचातानी और कलह-क्लेश प्रेमियों के बीच होता रहता है। वे दोनों कुछ ऐसा करने का प्रयास कर रहे हैं जो असंभव है। वे अपने प्रेम की घटना को शाश्वत बनाना चाह रहे हैं जो हो नहीं सकता। यह प्रेम मन से पैदा हुआ है और मन तुम्हें शाश्वत की कोई झलक नहीं दे सकता।

पहले ध्यान में उतरो, क्योंकि ध्यान से प्रेम जन्मेगा—वह ध्यान की सुवास है। ध्यान फूल है—सहस्र पंखुड़ियों वाला कमल। उसे खिलने दो। उसे सहायता करने दो तुम्हें ऊर्ध्वगमन के आयाम में, अमन में, समयशून्यता में उठने में और अचानक तुम पाओगे कि सुवास का जन्म हुआ। तब प्रेम शाश्वत होता है, बेशर्त होता है। तब वह किसी व्यक्ति विशेष के प्रति इंगित नहीं रह जाता है। वह कोई संबंध नहीं है, वरन वह एक गुण ज्यादा है, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे रहता है।

उसका दूसरे से कोई संबंध नहीं है। तुम प्रेमपूर्ण होते हो, तुम प्रेम होते हो। तब प्रेम शाश्वत होता है। प्रेम तुम्हारी सुवास होता है। ऐसा प्रेम बुद्ध के आसपास रहा है, जरथुस्त्र के, जीसस के आसपास रहा है। यह बिल्कुल दूसरी तरह का प्रेम होता है, यह गुणात्मक रूप से भिन्न होता है।¹²

करुणा

बुद्ध ने करुणा की परिभाषा की है: “प्रेम और ध्यान का जोड़।” जब तुम्हारा प्रेम मात्र दूसरे को पाने की लालसा नहीं होता, जब तुम्हारा प्रेम मात्र एक जरूरत नहीं होता, जब तुम्हारा प्रेम एक सहभागिता होता है, जब तुम्हारा प्रेम एक भिखारी का नहीं वरन सम्राट का प्रेम होता है, जब तुम्हारा प्रेम बदले में कोई मांग नहीं करता, बस देने को तत्पर रहता है, बस देने की खुशी के लिए देता है, तब उसके साथ ध्यान जोड़ दो और शुद्ध सुवास प्रकट होती है, अप्रकट महिमा प्रकट होती है। वह है करुणा; करुणा उच्चतम घटना है। यौन पाशविक है, प्रेम मानवीय है, करुणा दिव्य है। यौन शारीरिक है, प्रेम मानसिक है, करुणा आध्यात्मिक है।¹³

अकारण सतत आनंद

बिना किसी कारण के तुम अचानक अपने आप को आनंदित पाते हो। सामान्य जीवन में, जब कोई कारण होता है, तभी तुम आनंदित होते हो। तुम्हारी किसी सुंदर स्त्री से मुलाकात हो जाती है और तुम आनंदित हो जाते हो; या तुम्हें धन मिल जाता है जिसकी तुमने सदैव आकांक्षा की थी और तुम आनंदित हो जाते हो; या तुम एक मकान खरीदते हो सुंदर बगीचे के साथ और तुम आनंदित हो जाते हो; लेकिन यह आनंद बहुत टिकता नहीं। ये सब क्षणिक हैं, ये अबाधित और सतत नहीं रह सकते।

यदि तुम्हारा आनंद किसी कारण से होता है, तो वह विलीन हो जाएगा, वह क्षणिक होगा। वह तुम्हें जल्दी ही गहरी उदासी में ले जाएगा। सारे आनंद तुम्हें गहरी उदासी में ले जाते हैं। लेकिन एक दूसरी तरह का आनंद भी है, जो सांकेतिक है: तुम आनंदित हो जाते हो बिना किसी कारण के। तुम बता नहीं सकते क्यों? अगर कोई पूछे, “क्यों इतने प्रसन्न हो?” तो तुम कोई उत्तर नहीं दे पाते।

मैं नहीं बता सकता कि क्यों मैं इतना आनंदित हूँ। कोई कारण नहीं सूझता। बस ऐसा है। अब यह आनंद भंग नहीं किया जा सकता। अब कुछ भी हो जाए, यह बना रहेगा। यह मौजूद है हमेशा। तुम चाहे युवा हो, तुम चाहे वृद्ध हो, तुम चाहे जीवित हो, तुम चाहे मर रहे हो—यह सदैव मौजूद है। जब तुम ऐसे आनंद को पा

लेते हो जो सदा रहता है—परिस्थितियाँ बदल जाती हैं पर वह चिरस्थायी है—तब तुम बुद्धत्व के करीब आ रहे हो।¹⁴

प्रतिभा: प्रत्युत्तर की क्षमता

प्रतिभा का अर्थ है प्रत्युत्तर देने की क्षमता, क्योंकि जीवन एक प्रवाह है। तुम्हें सजग रहना है और देखना है कि तुमसे क्या मांगा जा रहा है, कि परिस्थिति की क्या चुनौती है। प्रतिभावान व्यक्ति परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करता है और मूढ़ व्यक्ति बंधे-बंधाएँ उत्तरों के अनुसार व्यवहार करता है। चाहे वे उत्तर बुद्ध के हों, क्राइस्ट या कृष्ण के हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपने ऊपर शास्त्रों को ढोता रहता है; स्वयं के ऊपर भरोसा करने से भयभीत रहता है। प्रतिभावान व्यक्ति अपनी अंतर्दृष्टि पर भरोसा करता है; वह अपने अंतः पर भरोसा करता है। वह स्वयं से प्रेम करता है और स्वयं का सम्मान करता है। नासमझ व्यक्ति दूसरों का सम्मान करता है।

प्रतिभा को फिर से आविष्कृत किया जा सकता है। उसका एक मात्र उपाय है ध्यान। ध्यान बस एक काम करता है: वह उन सब बाधाओं को नष्ट कर देता है जो समाज ने निर्मित की हैं ताकि तुम प्रतिभावान न हो सको। ध्यान बस अवरोधों को हटा देता है। उसका कार्य नकारात्मक है: यह उन चट्टानों को हटा देता है जो बाधाएं बन रही हैं तुम्हारे जलप्रवाह में, तुम्हारे झरनों के

जीवंत होने में।

सभी के पास महान संभावना है, पर समाज ने उसके प्रतिरोध में बड़ी-बड़ी चट्टानें खड़ी कर दी हैं। उसने तुम्हारे चारों ओर चीन की दीवाल खड़ी कर दी है; उसने तुम्हें बंदी बना दिया है।

इन कारागृहों से बाहर निकल आना ही प्रतिभा है—और कभी दोबारा किसी और कारागृह में न घुसना। प्रतिभा का आविष्कार किया जा सकता है क्योंकि ये सारे कारागृह मौजूद हैं तुम्हारे मन में; सौभाग्य से वे तुम्हारे अंतःकेंद्र तक नहीं पहुँच सकते। तुम्हारे केंद्र को दूषित नहीं कर सकते, बस तुम्हारे मन को ही दूषित कर सकते हैं—तुम्हारे मन तक ही उनकी पहुँच है। यदि तुम अपने मन से बाहर निकल सको, तो तुम ईसाइयत से, हिंदू, जैन, बौद्ध धर्म से बाहर निकल सकते हो और तब सब प्रकार के कूड़ा-कंकट समाप्त हो जाएंगे। तुम एक पूर्ण विराम पर पहुँच जाओगे।

और जब तुम मन के बाहर होते हो, उसे देखते हो, उसके प्रति जागरूक होते हो, बस एक साक्षी की भाँति, तो तुम प्रतिभावान होते हो। तुम्हारी प्रतिभा खोज ली गई। तुमने उसे अनकिया कर दिया जो समाज ने तुम्हारे साथ किया था। तुमने उनकी सारी साजिशों का अंत कर दिया; तुमने पुरोहितों और राजनीतिज्ञों के षड्यंत्र का अंत कर दिया—तुम उससे बाहर निकल आए, तुम एक स्वतंत्र व्यक्ति हो गए। असल में पहली बार ही तुम एक सच्चे व्यक्ति, एक प्रामाणिक व्यक्ति बने।

अब सारा आकाश तुम्हारा है। प्रतिभा मुक्ति लाती है, प्रतिभा सहजता लाती है।¹⁵

एकाकीपन तुम्हारा स्वभाव है

एकाकीपन एक फूल है, तुम्हारे हृदय में विकसित हुआ एक कमल है। एकाकीपन विधायक है, एकाकीपन स्वास्थ्य है—तुम्हारी निजता में जीने का आनंद; तुम्हारे अपने अंतर्आकाश में जीने का आनंद।

ध्यान का अर्थ है: अकेले होने का आनंद। तुम सच ही जीवंत होते हो जब तुम ध्यान में सक्षम हो जाते हो, जब किसी दूसरे पर, किसी परिस्थिति पर, किसी अवस्था पर कोई निर्भरता नहीं रहती। और चूंकि यह तुम्हारी अपनी स्थिति होती है, यह सदैव बनी रहती है—सुबह शाम, दिन में रात में, जवाग्री में या बुढ़ापे में, स्वास्थ्य में या बीमारी में। जीवन में और मृत्यु में भी यह मौजूद होता है क्योंकि यह ऐसी चीज नहीं है जो तुम्हें बाहर से घटती हो। इसका तुम्हारे भीतर से प्रादुर्भाव होता है। यह तुम्हारा अपना स्वभाव है, स्वरूप है।¹⁶

अंतर्थात्र परम एकाकीपन की ओर यात्रा है। तुम अपने साथ वहाँ किसी को नहीं ले जा सकते। तुम अपने केंद्र में किसी को भागीदार नहीं बना सकते—अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी को

भी नहीं। चीजों का ऐसा स्वभाव ही नहीं है; इस बारे में कुछ भी नहीं किया जा सकता। जिस क्षण तुम भीतर जाते हो, बाहर के जगत के सारे संबंध टूट जाते हैं, सब सेतु टूट जाते हैं। वास्तव में, सारा जगत विलीन हो जाता है।

इसी कारण से, रहस्यदर्शियों ने इस जगत को 'माया' कहा है। ऐसा नहीं कि संसार नहीं है, लेकिन ध्यानी के लिए, जो भीतर जाता है उसके लिए यह जगत करीब-करीब मिट जाता है। उसका मौन इतना गहन हो जाता है कि कोई शोरगुल उसे बेधता नहीं। एकाकीपन इतना गहरा होता है कि तुम्हें बड़े साहस की जरूरत पड़ती है। पर इसी एकाकीपन से आनंद का विस्फोट होता है। इसी एकाकीपन से परमात्मा की अनुभूति होती है। दूसरा कोई मार्ग नहीं है; कभी नहीं रहा और कभी होने वाला नहीं है।¹⁷

एकाकीपन का उत्सव मनाओ, अपने विशुद्ध अंतर्आकाश का उत्सव मनाओ और तुम्हारे हृदय में एक महान गीत फूटेगा। और यह जागरूकता का गीत होगा, यह ध्यान का गीत होगा, दूर से आता हुआ किसी एकाकी पक्षी का गीत होगा—किसी व्यक्ति-विशेष के लिए नहीं, पर गीत बस चल रहा है। क्योंकि हृदय भरा है और गाना चाहता है, क्योंकि मेघ भरा है और बरसना चाहता है, क्योंकि फूल विकसित हो गया है और पंखुड़ियाँ खुल गई हैं और सुवास फैलती है—बिना किसी को संबोधित

किए। अपने एकाकीपन को नृत्य बनने दो।¹⁸

तुम्हारा सच्चा स्वरूप

ध्यान कुछ और नहीं बस एक उपाय है तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप के प्रति सजग करने का—वह तुम्हारा निर्माण नहीं है; तुम वह हो ही। उसके साथ ही तुम जन्मे हो। तुम वही हो! बस उसका आविष्कार करना है। यदि यह संभव नहीं है ... या समाज इसे नहीं होने देता—और कोई समाज इसे होने की सुविधा नहीं देता, क्योंकि प्रामाणिक निजता खतरनाक है: खतरनाक है स्थापित चर्च के लिए, खतरनाक है सरकार के लिए, खतरनाक है भीड़ के लिए, खतरनाक है परंपरा के लिए, क्योंकि एक बार मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप को जान ले, फिर वह एक व्यक्ति बन जाता है; वह

फिर भीड़ के मनोविज्ञान का हिस्सा नहीं रह जाता; वह फिर अंधविश्वासी नहीं रहेगा और उसका शोषण नहीं किया जा सकेगा और उसे भेड़ों की तरह खदेड़ा नहीं जा सकेगा; उस पर आदेश और हुक्म नहीं चलाया जा सकेगा। वह स्वयं के प्रकाश से जिएगा; वह स्वयं की अंतः प्रेरणा से जिएगा। उसके जीवन में अद्भुत सौंदर्य और एकजुटता होगी। यही भय है समाज को।

एकजुट हुआ व्यक्ति आत्मनिष्ठ हो जाता है और समाज तुम्हें आत्मनिष्ठ नहीं होने देना चाहता। निजता की बजाय समाज तुम्हें एक 'पर्सनेलिटी' (व्यक्तित्व) बनना सिखाता है। 'पर्सनेलिटी' शब्द समझने जैसा है। यह 'पर्सोना' मूल से आता है—'पर्सोना' का अर्थ है एक मुखौटा। समाज तुम्हें एक झूठी धारणा दे देता है कि तुम कौन हो; वह तुम्हें एक खिलौना थमा देता है और तुम सारा जीवन उस खिलौने से चिपके रहते हो।¹⁹

मेरे देखे, करीब-करीब सभी लोग गलत जगह पर हैं। जो व्यक्ति एक अतिशय आनंदित डॉक्टर हो सकता था—चित्रकार बना बैठा है। और जो व्यक्ति एक अतिशय आनंदित चित्रकार हो सकता था—डॉक्टर बन बैठा है। कोई भी अपनी सही जगह पर नहीं लगता; इसी कारण यह सारा समाज इतनी झंझट में है। व्यक्ति को दूसरे संचालित कर रहे हैं; वह अपने अंतर्बोध से नहीं चल रहा है। ध्यान तुम्हारी अंतर्बोध की क्षमता के विकास में मदद करता है। यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि क्या तुम्हें परितृप्त करेगा, क्या तुम्हें विकसित होने में सहायक होगा। और सच्चा स्वरूप जैसा भी होगा, प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होगा। यही निजता का अर्थ है कि सभी अनूठे हैं। और अपनी इस निजता की खोज और तलाश एक बड़ी पुलक, एक बड़ा साहसिक अभियान है।²⁰

ध्यान का विज्ञान

किसी सद्गुरु के साथ, वैज्ञानिक विधियों से तुम बहुत-सा समय, अवसर और ऊर्जा बचा ले सकते हो। और कई बार तो कुछ ही क्षणों में तुम्हारा इतना विकास हो जाता है कि जन्मों-जन्मों तक भी इतना विकास संभव न हो पाता। यदि सम्यक विधि का उपयोग किया जाए तो विकास का विस्फोट हो जाता है—फिर इन विधियों का उपयोग हजारों वर्षों के प्रयोगों में हुआ है। किसी एक व्यक्ति ने इनकी रचना नहीं की थी; कई-कई साधकों ने इन्हें रचा था, और यहां केवल सार ही दिया गया है।

लक्ष्य तक तुम पहुंच जाओगे, क्योंकि तुम्हारे भीतर की जीवन ऊर्जा तब तक आगे बढ़ती रहेगी जब तक वह ऐसे बिंदु पर न पहुंच जाए जहां से और आगे बढ़ना संभव नहीं होगा; वह उच्चतम शिखर की ओर बढ़ती चली जाएगी। यही कारण है कि व्यक्ति बार-बार जन्म लेता रहता है। तुम पर छोड़ दिया जाए तो तुम

विधियां और ध्यान

विधियां सहयोगी हैं

विधियां सहयोगी हैं क्योंकि वे वैज्ञानिक होती हैं। तुम व्यर्थ ही भटकने से, व्यर्थ ही टटोलने से बच जाते हो; यदि तुम कोई विधि नहीं जानते, तो देर लगाओगे।

पहुंच तो जाओगे, लेकिन तुम्हें बहुत लंबी यात्रा करनी पड़ेगी, और यात्रा बहुत दुस्साध्य और उबाने वाली होगी।

सभी विधियां सहयोगी हो सकती हैं लेकिन वे वास्तव में ध्यान नहीं हैं, वे तो अंधकार में टटोलने के समान हैं। किसी दिन अचानक, कुछ करते हुए, तुम साक्षी हो जाओगे। सक्रिय, या कुंडलिनी, या दरवेश जैसा कोई ध्यान करते हुए एक दिन अचानक ध्यान तो चलता रहेगा लेकिन

तुम उससे जुड़े नहीं रह जाओगे। तुम पीछे मौन बैठ रहोगे, उसके द्रष्टा होकर—उस दिन ध्यान घटा; उस दिन विधि न बाधा रही, न सहायक रही। तुम चाहो, तो एक व्यायाम की भांति उसका आनंद ले सकते हो; उससे तुम्हें एक शक्ति मिलती है, लेकिन अब उसकी कोई आवश्यकता न रही—वास्तविक ध्यान तो घट गया।

ध्यान है साक्षित्व। ध्यान करने का अर्थ है साक्षी हो जाना। ध्यान बिलकुल भी कोई

विधि नहीं है। यह तुम्हें बड़ा विरोधाभासी लगेगा क्योंकि मैं तो तुम्हें विधियाँ दिए ही चला जाता हूँ। परम अर्थों में ध्यान कोई विधि नहीं है; ध्यान एक समझ है, एक होश है। लेकिन तुम्हें विधियों की जरूरत है क्योंकि वह जो परम समझ है तुमसे बहुत दूर है। तुम्हारे भीतर ही गहरे में है, लेकिन फिर भी तुमसे बहुत दूर है। इसी क्षण तुम उसे उपलब्ध हो सकते हो, लेकिन होओगे नहीं, क्योंकि तुम्हारा मन चलता चला जाता है। इसी क्षण यह संभव होते हुए भी यह असंभव है। विधियाँ इस अंतराल को भर देंगी; वे अंतराल को भरने के लिए ही हैं।

तो प्रारंभ में विधियाँ ही ध्यान होती हैं, अंत में तुम हंसोगे—कि विधियाँ ध्यान नहीं हैं। ध्यान तो अंततः सत्ता की एक अलग ही गुणवत्ता है, उसका किसी चीज से कुछ लेना-देना नहीं। लेकिन यह अंत में ही होगा; ऐसा मत सोचना कि प्रारंभ में ही यह हो गया, वरना अंतराल कभी भी भर नहीं पाएगा।²

प्रयास से शुरू करो

ध्यान की विधियाँ कृत्य हैं, क्योंकि तुम्हें कुछ करने का परामर्श दिया गया है—ध्यान करना भी कुछ करना है; मौन बैठना भी कुछ करना है, कुछ न करना भी एक प्रकार का करना है। बाह्य रूप से तो सभी ध्यान विधियाँ कृत्य हैं,

लेकिन गहरे में वे कृत्य नहीं हैं, क्योंकि यदि तुम उनमें सफल हो जाओ तो कृत्य समाप्त हो जाता है।

प्रारंभ में ही ऐसा लगता है कि प्रयास हो रहा है। लेकिन तुम उसमें सफल हो जाओ तो प्रयास विदा हो जाता है और सब कुछ स्वतःस्फूर्त और प्रयासरहित हो जाता है। यदि तुम उसमें सफल हो जाओ तो फिर वह कृत्य नहीं रहता। फिर तुम्हारी ओर से किसी प्रयास की जरूरत नहीं है: वह तुम्हारी श्वास-प्रश्वास की भांति हो जाता है। लेकिन प्रारंभ में तो प्रयास होगा ही, क्योंकि मन ऐसा कुछ भी नहीं कर सकता जिसमें प्रयास न हो। तुम किसी चीज को प्रयासरहित बता दो तो पूरी बात ही व्यर्थ दिखने लगती है। झेन में, जहाँ प्रयासरहितता पर बहुत बल दिया जाता है, गुरु अपने शिष्यों को कहते हैं, “बैठ भर रहो। कुछ करो मत।” और शिष्य प्रयास करता है। निश्चित ही प्रयास के अतिरिक्त और तुम कर भी क्या सकते हो?

प्रारंभ में, प्रयास भी होगा, कृत्य भी होगा—लेकिन प्रारंभ में ही, अनिवार्य बुराई की तरह। तुम्हें सतत स्मरण रखना होगा कि तुम्हें उसके पार जाना है। एक क्षण ऐसा आना ही चाहिए जब तुम ध्यान के लिए कुछ भी नहीं कर रहे हो, बस विश्रामपूर्ण उपस्थित भर हो और ध्यान घटित हो जाता है। बस बैठो या खड़े होओ और ध्यान हो जाता है। कुछ भी न करो, बस जागे रहो, और ध्यान हो जाता है।

ये सब ध्यान विधियाँ तुम्हें एक प्रयासरहित अवस्था तक ले आने के लिए

हैं। अंतरूपांतरण, अंतर्नुभूति प्रयास के द्वारा नहीं हो सकती, क्योंकि प्रयास एक प्रकार का तनाव है। प्रयास में तुम बिलकुल विश्रांत नहीं हो सकते; प्रयास ही बाधा बन जाएगा। इस पृष्ठभूमि को बुद्धि में रखकर यदि तुम प्रयास करो, तो धीरे-धीरे तुम प्रयास को छोड़ने में भी सक्षम हो जाओगे।³

ये विधियाँ सरल हैं

ये सब विधियाँ जिनकी हम चर्चा करेंगे, किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा ही बताई गई हैं जो उपलब्ध हो गया हो। इसे स्मरण रखना। वे बहुत सरल लगेंगी, और सरल वे हैं भी। हमारे मन को इतनी सरल चीजें आकर्षित नहीं कर सकतीं। क्योंकि यदि विधियाँ इतनी सरल हों और निवास इतना निकट हो, यदि तुम पहले से ही उसमें हो, और घर इतना समीप हो तो तुम स्वयं को हास्यास्पद लगोगे—कि फिर तुम उसे चूक कैसे रहे थे? अपने ही अहंकार की हास्यास्पदता को अनुभव करने की अपेक्षा तुम सोचोगे कि ऐसी सरल विधियाँ सहयोग नहीं दे सकतीं।

यह एक छलावा है। तुम्हारा मन तुमसे कहेगा कि ये सरल विधियाँ किसी काम की नहीं हो सकतीं—कि वे इतनी सरल हैं, उनसे कोई उपलब्धि नहीं हो सकती। “भगवत्ता को उपलब्ध करने के लिए, पूर्ण और परम को पाने के लिए, इतनी सरल

विधियों का उपयोग कैसे हो सकता है? वे कैसे सहयोगी हो सकती हैं?" तुम्हारा अहंकार कहेगा: वे किसी काम की न होंगी।

एक बात स्मरण रखो—अहंकार को सदा कठिन में ही रस होता है, क्योंकि जब कुछ कठिन होता है तो उसमें एक चुनौती होती है। यदि तुम कठिनाई के पार जा सको तो तुम्हारा अहंकार तृप्त अनुभव करेगा। अहंकार कभी भी सरल की ओर आकर्षित नहीं होता—कभी भी नहीं। यदि तुम अपने अहंकार को चुनौती देना चाहो तो तुम्हें कोई कठिन उपाय को खोजना होगा। यदि कुछ सरल हो, तो उसमें कोई आकर्षण नहीं होगा, क्योंकि तुम उसे जीत भी लो तो अहंकार की तृप्ति नहीं हो सकती। पहली बात, जीतने के लिए कुछ था ही नहीं: इतनी सरल बात थी। अहंकार कठिनाइयों की मांग करता है—कुछ बाधाएं जिन्हें पार करना पड़े, कुछ शिखर जिन्हें जीतना पड़े। और जितना दुर्गम शिखर होगा, उतनी ही तुम्हारे अहंकार को तृप्ति होगी।

क्योंकि ये विधियां इतनी सरल हैं, उनमें तुम्हारे मन के लिए कोई आकर्षण नहीं होगा। स्मरण रखो, तुम्हारे अहंकार को जो आकर्षित करे, वह तुम्हारे आध्यात्मिक विकास के लिए सहयोगी नहीं हो सकता।

ये विधियां इतनी सरल हैं कि तुम निर्णय कर लो तो किसी भी क्षण वह सब उपलब्ध कर ले सकते हो जो मनुष्य चेतना के लिए संभव है।⁴

पहले विधि को समझ लो

मैं ने एक वृद्ध डॉक्टर के बारे में सुना है। एक दिन उसके सहयोगी ने उसे फोन किया क्योंकि वह बड़ी कठिनाई में था: उसके मरीज का दम घुटा जा रहा था; एक बिलियर्ड की गेंद उसके गले में फंस गई थी, और सहयोगी को समझ नहीं आ रहा था कि क्या करना है। तो उसने डॉक्टर से पूछा, “अब मैं क्या करूं?” डॉक्टर ने कहा, “मरीज को किसी पंख से गुदगुदी करो।”

कुछ मिनट बाद सहयोगी ने बड़े प्रसन्न और प्रफुल्लित होकर फोन किया, “आपका इलाज तो बहुत बढ़िया सिद्ध हुआ। मरीज हंसने लगा और गेंद बाहर निकल गई। लेकिन मुझे बताइए आपने यह अपूर्व विधि कहां से सीखी?”

डॉक्टर बोला, “यह तो मैंने ही बनाई है। मेरा सदा से यह उद्देश्य रहा है: जब तुम्हें पता न चले कि क्या करना है, तो कुछ भी करो।”

लेकिन जहां तक ध्यान का संबंध है, यह नहीं चलेगा। जब तुम्हें नहीं पता कि क्या करना है तो कुछ भी मत करो। मन बहुत दुर्बोध, जटिल और कोमल है। यदि तुम्हें नहीं पता कि क्या करना है, तो कुछ भी न करना बेहतर है, क्योंकि बिना जाने तुम जो भी करोगे वह सुलझाने की अपेक्षा और जटिलताएं निर्मित करेगा। वह घातक भी सिद्ध हो सकता है, आत्मघाती भी सिद्ध हो सकता है।

यदि तुम मन के विषय में कुछ नहीं जानते... और वास्तव में तुम उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते। मन तो मात्र एक शब्द है। तुम उसकी जटिलता को नहीं जानते। मन अस्तित्व की सबसे जटिल चीज है; उसके तुल्य और कुछ भी नहीं है। और मन सबसे कोमल भी है; तुम उसे नष्ट कर ले सकते हो; तुम कुछ ऐसा कर सकते हो, जिसे फिर अनकिया न किया जा सके। ये विधियां बहुत ही गहन अनुभवों पर, मनुष्य मन के एक अत्यंत गहन साक्षात्कार पर आधारित हैं। हर विधि बहुत लंबे प्रयोग पर आधारित है।

तो इसे याद रखना: अपने आप से कुछ भी मत करो, और दो विधियों को मिलाओ मत, क्योंकि उनकी कार्यशैलियां भिन्न हैं, उनके मार्ग भिन्न हैं, उनके आधार भिन्न हैं। वे एक ही लक्ष्य पर पहुंचाती हैं, परंतु साधन की भांति वे भिन्न हैं। कई बार तो वे बिल्कुल विपरीत हो सकती हैं। तो दो विधियों को मिलाओ मत। वास्तव में, कुछ भी मत मिलाओ; विधि जिस प्रकार दी गई है, वैसे ही उसका उपयोग करो।

उसमें परिवर्तन मत करो, सुधार मत करो—क्योंकि तुम उसमें सुधार कर नहीं सकते, और कोई भी परिवर्तन तुम करोगे वह घातक होगा।

और इससे पहले कि तुम कोई विधि शुरू करो, यह भलि-भांति जान लो कि तुम उसे समझ गए हो। यदि तुम्हें कुछ संदेह हो और लगे कि अभी तुम ठीक से नहीं जानते कि विधि क्या है, तो उसे न करना बेहतर होगा, क्योंकि हर विधि

तुममें एक क्रांति ले आने के लिए है।

पहले विधि को बिलकुल सम्यक ढंग से समझने का प्रयास करो। जब तुम उसे समझ लो, तभी करो। और उस वृद्ध डॉक्टर के आदर्श को मत अपनाना कि जब तुम्हें यह न पता हो कि क्या करना है तो कुछ भी करो। नहीं, कुछ भी मत करो। न-करना अधिक लाभदायी होगा।⁵

सम्यक विधि का बोध

वास्तव में, जब तुम सम्यक विधि में उतरोगे, तो उसका तत्क्षण पता लग जाएगा। मैं तो प्रतिदिन यहां विधियों की चर्चा करता रहूंगा। तुम उन्हें करके देखते रहो। बस उनसे खेलो भर: घर जाओ और उन्हें करके देखो। जब भी सम्यक विधि में तुम्हारा उतरना होगा, उसका पता चल जाएगा। कुछ तुममें प्रस्फुटित होता है और तुम जान जाते हो कि “यही मेरे लिए सम्यक विधि है।” लेकिन प्रयास चाहिए, और किसी दिन शायद अचानक तुम चकित रह जाओ कि विधि ने तुम्हें धेर लिया है।

मैंने पाया है कि जब तुम खेलपूर्ण होते हो, तो तुम्हारा मन अधिक खुला होता है। जब तुम गंभीर होते हो तो तुम्हारा मन इतना खुला नहीं होता; बंद होता है। तो बस खेलो। बहुत गंभीर मत होओ, बस खेलो। और ये विधियां सरल हैं। तुम इनके साथ खेल सकते हो।

एक विधि ले लो: उसके साथ कम से कम तीन दिन खेलो। यदि वह तुम्हें तारतम्यता का कोई भाव देती है, मंगलदायी होने का कोई भाव देती है, यदि तुम्हें ऐसा लगे कि यह तुम्हारे लिए ही है, तो उसके प्रति गंभीर होना। फिर बाकी विधियों को भूल जाओ। दूसरी विधियों से मत खेलो; कम से कम तीन महीने के लिए उसीको जारी रखो।

चमत्कार घट सकते हैं। एक ही बात है कि विधि तुम्हारे लिए ही हो। विधि तुम्हारे लिए न हो तो कुछ भी नहीं होता। फिर जन्मों-जन्मों तुम उसे साधते रहो, कुछ भी न होगा। विधि तुम्हारे लिए हो तो तीन मिनट भी पर्याप्त हैं।⁶

कब विधि को छोड़ना

सभी सदगुरु कहते हैं, कि एक दिन तुम्हें विधि छोड़नी होगी। और जितनी जल्दी तुम उसे छोड़ दो, उतना ही अच्छा। जिस क्षण तुम पहुंच जाओ, जिस क्षण तुममें होश जग जाए, तत्क्षण विधि को छोड़ दो।

बुद्ध एक कहानी बार-बार कहते थे। पांच मूढ़ एक गांव से गुजरे। उन्हें देख सभी चकित थे, क्योंकि वे अपने सिर पर एक नाव ढो रहे थे। नाव वास्तव में बड़ी थी; उसके बोझ के नीचे वे मरे जा रहे थे। लोगों ने पूछा, “तुम कर क्या रहे हो?”

वे बोले, “इस नाव को हम नहीं छोड़ सकते। इसी नाव ने हमें उस किनारे से इस

किनारे आने में मदद दी है। इसे हम कैसे छोड़ सकते हैं? इसीके कारण तो हम यहां पहुंच पाए हैं। इसके बिना तो हम दूसरे किनारे पर ही मर गए होते। रात होने की थी, और उस किनारे पर जंगली पशु थे; यह बिलकुल निश्चित ही था कि सुबह तक हम मर गए होते। इस नाव को हम कभी न छोड़ेंगे। हम सदा-सदा के लिए ऋणी हैं। हम तो अहोभाव के रूप में इसे अपने सिर पर ही ढोएंगे।”

विधियां तभी खतरनाक होती हैं जब तुम अर्धमूर्च्छित होते हो; वरना उन्हें बड़े सुंदर ढंग से उपयोग में लाया जा सकता है। क्या तुम सोचते हो कि नाव खतरनाक होती है? वह तभी खतरनाक हो सकती है जब तुम अहोभाव से भरकर उसे जीवन भर अपने सिर पर ढोने की सोचो। वरना तो वह बस उपयोग में लाकर और छोड़ देने योग्य, उपयोग में लाकर और त्याग देने योग्य एक साधन है, उपयोग कर लेने के बाद फिर मुड़कर उसकी ओर देखने की जरूरत भी नहीं है; उसमें कोई सार भी नहीं है।

तुम औषधी को छोड़ दो तो स्वतः ही अपने स्वरूप में ठहरने लगोगे। मन आनाकानी करता है; वह तुम्हें अपने स्वरूप में ठहरने नहीं देता, वह तुम्हें ऐसी चीजों में आकर्षित रखता है जो तुम नहीं हो: जैसे नाव।

जब तुम कुछ भी नहीं पकड़ते तो कहीं जाने को नहीं रहता; सभी नावें छूट गईं, तुम कहीं नहीं जा सकते; सभी मार्ग छूट गए और तुम कहीं जा नहीं सकते; सभी

स्वप्न और कामनाएं मिट गईं, अब आगे जाने का उपाय न रहा। फिर विश्राम स्वतः ही घटता है।

जरा 'विश्राम' शब्द पर विचार करो। बस होओ... ठहर जाओ... तुम घर आ गए।

एक क्षण को सब ओर सुवास उठी, और अगले क्षण तुम उसे खोज रहे हो और खोज नहीं पा रहे कि कहां गई।

प्रारंभ में केवल झलकें मिलेंगी। धीरे-धीरे वे ठोस होती जाएंगी, अधिक स्थिर होती जाएंगी। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, बहुत धीरे वे सदा के लिए ठहर जाएंगी। उससे पहले, तुम उसे 'मिला ही हुआ' नहीं समझ सकते; वह एक भूल होगी।

जब तुम ध्यान में, साधना-काल में बैठे होओगे तो ऐसा होगा। लेकिन फिर यह चला भी जाएगा। तो ध्यान की दो घटनाओं के बीच तुम्हें क्या करना है? विधि को जारी रखो। जब तुम गहन ध्यान में पहुंच जाओ तो विधि को छोड़ दो। जैसे-जैसे जागरूकता शुद्ध होती जाती है, एक क्षण आता है जब अचानक वह बिलकुल शुद्ध हो जाती है: तब विधि को छोड़ दो, विधि को त्याग दो, औषधी के विषय में सब भूल जाओ; बस ठहरो और हो रहो।

लेकिन प्रारंभ में ऐसा कुछ क्षण के लिए ही होगा। कई बार यहां मुझे सुनते हुए भी ऐसा हो जाता है।

एक क्षण के लिए, हवा के एक झोंके की तरह तुम दूसरे ही लोक में, अमनी लोक में पहुंच जाते हो। एक क्षण के लिए तुम जानते हो कि तुम 'जानते' हो, लेकिन

एक ही क्षण के लिए। और फिर दोबारा अंधकार घिर आता है और मन अपने सभी स्वप्न लिए, सभी कामनाएं और मूढ़ताएं लिए फिर से लौट आता है।

एक क्षण के लिए मेघ छंटे और तुम्हें सूर्य के दर्शन हुए। अब मेघ फिर से घिर आए; अंधकार छा गया और सूर्य छिप गया। अब तो यह विश्वास कर पाना कठिन होगा कि सूर्य है भी। अब तो यह विश्वास भी कर पाना कठिन होगा कि क्षण भर पहले जो अनुभव हुआ, वह सत्य था। हो सकता है वह भ्रम रहा हो। शायद मन कहे, वह एक कल्पना ही रही हो।

वह अनुभव इतना अविश्वसनीय है, कि तुम्हें घटा हो यह असंभव ही लगता है। मन की इन सारी मूढ़ताओं, इन सब मेघों और अंधकार के बावजूद भी यह घटना तुम पर घटी: एक क्षण को तुम्हें सूर्य के दर्शन हुए। यह संभव नहीं लगता; लगता है जरूर तुमने उसकी कल्पना की होगी; शायद तुमने उसका सपना देखा हो।

दो झलकों के बीच में फिर से शुरू करो; नाव में उतरो, नाव का फिर से उपयोग करो।

कल्पना तुम्हारे लिए कार्य कर सकती है

पहले तुम्हें यह समझ लेना है कि कल्पना है क्या। आजकल यह काफी निंदित शब्द है। जैसे ही 'कल्पना' शब्द सुनते हो, तुम कहते हो: यह तो व्यर्थ

है; हम कुछ वास्तविक चाहते हैं, काल्पनिक नहीं। लेकिन कल्पना तुम्हारे भीतर की एक वास्तविकता है, एक क्षमता है, एक संभावना है। तुम कल्पना कर सकते हो। इससे पता चलता है तुम्हारे प्राण कल्पना करने में सक्षम हैं। यह क्षमता एक वास्तविकता है। इस कल्पना के द्वारा तुम स्वयं को नष्ट भी कर सकते हो और निर्मित भी कर सकते हो। यह तुम पर निर्भर है। कल्पना बहुत शक्तिशाली है। वह संभाव्य शक्ति है।

कल्पना क्या है? कल्पना है किसी धारणा में इतने गहरे चले जाना कि वह धारणा ही वास्तविकता बन जाए। जैसे तिब्बत में उपयोग होने वाली एक विधि के विषय में तुमने सुना होगा। वे उसे उष्मा-योग कहते हैं। सर्द रात है, बर्फ गिर रही है और तिब्बती लामा खुले आकाश के नीचे नग्न खड़ा हो जाएगा। तापमान शून्य से नीचे है। तुम तो मरने ही लगोगे, जम जाओगे। लेकिन लामा एक विधि का अभ्यास कर रहा है—वह कल्पना कर रहा है कि उसका शरीर एक ज्वलंत अग्नि है और उससे पसीना निकल रहा है—इतनी गरमी है कि उसका पसीना निकल रहा है। और सच ही पसीना बहने लगता है जबकि तापमान शून्य से नीचे है और खून तक जम जाना चाहिए। उसका पसीना बहने लगता है। क्या हो रहा है? यह पसीना वास्तविक है, उसका शरीर वास्तव में गरम है—लेकिन यह वास्तविकता कल्पना से पैदा की गई है।

एक बार तुम अपनी कल्पना से लयबद्ध हो जाओ, तो शरीर भी साथ सक्रिय हो जाता है। इसी तरह तुम कितने ही काम कर रहे हो जो तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारी कल्पना करवा रही है। कई बार तुम कल्पना से ही बहुत से रोग पैदा कर लेते हो। तुम कल्पना करते हो कि फलां रोग, जो संक्रामक है, सब ओर फैला है। तुम ग्रहणशील हो गए, अब हर संभावना है

कि तुम बीमार पड़ोगे—और वह रोग वास्तविक होगा। लेकिन वह कल्पना से निर्मित हुआ है। कल्पना एक शक्ति है, एक ऊर्जा है, और मन उससे चलता है। और जब मन उससे चलता है तो शरीर भी अनुसरण करता है। ४

तंत्र परंपरा और पाश्चात्य सम्मोहन में यही भेद है: सम्मोहनविद मानता है

कि तुम कल्पना से कुछ निर्मित कर रहे हो; तंत्र का मानना है कि तुम उसे निर्मित नहीं कर रहे—कल्पना द्वारा तुम बस उससे लयबद्ध हो रहे हो जो पहले से ही है। कल्पना द्वारा तुम जो भी निर्मित करोगे, वह स्थायी नहीं हो सकता। यदि वह वास्तविकता नहीं है तो मिथ्या है, अवास्तविक है, और तुम एक भ्रम निर्मित कर रहे हो। ५

ध्यान का समय

जब तुम ध्यान में डूबने का प्रयोग कर रहे हो, तो फोन को उतार कर रख दो, स्वयं को मुक्त कर लो। द्वार पर एक सूचना लटका दो कि एक घंटे तक कोई दस्तक न दे, कि तुम ध्यान कर रहे हो। और जब ध्यान कक्ष में प्रवेश करो, तो जूते उतार कर अलग रख दो, क्योंकि पवित्र भूमि पर तुम्हारे पैर पड़ रहे हैं। न केवल अपने जूते ही उतार कर अलग करो, वरन वह सब भी छोड़ दो जिसमें तुम उलझे हुए हो। होशपूर्वक, जूतों के साथ-साथ सब छोड़ दो। अव्यस्त होकर भीतर प्रवेश करो।

चौबीस घंटों में से एक घंटा निकाला जा सकता है। तेईस घंटे अपने व्यवसाय को, कामनाओं, विचारों, महत्वाकांक्षाओं, प्रक्षेपणों को दो। इस सब में से एक घंटा निकाल लो, और अंततः तुम पाओगे कि वह एक घंटा ही तुम्हारे जीवन का वास्तविक समय था; वे तेईस घंटे तो व्यर्थ ही रहे। बस एक घंटा ही बचा लिया गया, बाकी सब तो व्यर्थ गया। 10

साधकों के लिए प्रारंभिक सुझाव

उपयुक्त स्थान

कोई ऐसा स्थान तुम्हें खोज लेना चाहिए जो ध्यान में अभिवृद्धि करे। जैसे किसी वृक्ष के नीचे बैठना सहयोगी होगा। सिनेमा घर के सामने जाकर बैठने या रेलवे स्टेशन पर जाकर प्लेटफार्म पर बैठने की अपेक्षा प्रकृति में, पर्वतों पर, वृक्षों के, नदियों के पास जाओ जहां ताओ अभी भी चारों ओर स्पंदित, आलोड़ित, प्रवाहित हो रहा है। वृक्ष सतत ध्यानमग्न है। वह ध्यान मौन और अचेत है। मैं वृक्ष बनने को नहीं कह रहा हूँ; तुम्हें बुद्ध होना है! लेकिन बुद्ध में वृक्ष जैसी एक बात तो है: वे भी वृक्ष जैसे ही

हरे-भरे हैं, वृक्ष जैसे ही रसपूर्ण हैं, वृक्ष जैसे ही उत्सवमय हैं—निश्चित ही एक भेद उनमें है। वे जागे हैं, वृक्ष सोया है। वृक्ष अचेत रूप से ताओ में हैं, बुद्ध सचेत रूप से ताओ में हैं। और यह बड़ा भेद है, धरती और आकाश का भेद है।

लेकिन यदि तुम किसी वृक्ष के निकट बैठ रहो जिस पर सुंदर पक्षी गाते हों, या कोई मोर नाचता हो; या किसी बहती नदी के पास, जहां बहते जल का नाद हो, या किसी जलप्रपात के निकट उसके महासंगीत में...

ऐसा कोई स्थान खोज लो जहां प्रकृति

अभी भी अस्त-व्यस्त और प्रदूषित न हुई हो। ऐसा कोई स्थान न खोज पाओ तो द्वार बंद करके अपने ही कमरे में बैठ जाओ। संभव हो तो ध्यान के लिए अपने घर में एक विशेष कक्ष बना लो। एक छोटा-सा कोना भी काम देगा, लेकिन वह विशेषतः ध्यान के लिए ही हो। विशेषतः ध्यान के लिए ही क्यों?—क्योंकि हर प्रकार का कृत्य अपनी तरंगें पैदा करता है। यदि उस स्थान पर तुम केवल ध्यान ही करो, तो वह स्थान ध्यानमय हो जाता है। हर रोज तुम ध्यान करते हो—जब भी तुम ध्यान में होते हो तो वह स्थान तुम्हारी तरंगों को पी लेता है। अगले दिन जब तुम आते हो, तो वे तरंगें तुम्हीं पर वापस लौटने लगती हैं। वे सहयोग देती हैं, प्रत्युत्तर देती हैं, प्रतिसंवेदित होती हैं। जब कोई व्यक्ति वास्तव में ध्यानी हो जाता है, तो वह सिनेमाघर के सामने बैठ कर भी ध्यान कर सकता है, रेलवे प्लेटफार्म पर बैठकर भी ध्यान कर सकता है।

पंद्रह वर्ष तक लगातार मैं देशभर में घूमता ही रहा, घूमता ही रहा—दिन आए और गए, वर्ष आए और गए—लगातार कभी रेलगाड़ी में, कभी हवाई जहाज में, कभी कार में। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। एक बार तुम वास्तव ही अपने स्व में स्थिर हो जाओ, तो फिर कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन नये साधक के लिए ऐसा नहीं है।

जब वृक्ष अपनी जड़ें जमा लेता है, तो भले ही हवाएं आएँ और वर्षा आएँ और बादल गरजें, सब ठीक है। इससे वृक्ष को

मजबूती मिलती है। लेकिन जब वृक्ष छोटा होता है, कोमल होता है, तो एक छोटा बच्चा भी काफी खतरनाक होगा, या पास से गुजरती एक गाय भी उसे नष्ट करने के लिए पर्याप्त होगी। ॥

सुखपूर्वक होओ

शरीर की मुद्रा ऐसी हो कि तुम अपने शरीर को भूल सको। आरामपूर्ण होना क्या है? जब तुम अपने शरीर को भूल जाते हो, तब तुम आराम में होते हो। जब तुम्हें शरीर का सतत स्मरण बना रहता है, तो तुम कष्ट में होते हो। तो चाहे कुर्सी पर बैठो कि भूमि पर बैठो, यह प्रश्न नहीं है। सुखपूर्वक हो रहो, क्योंकि तुम्हारा शरीर ही यदि सुखपूर्वक नहीं होगा तो तुम उन आशीषों की अभीप्सा नहीं कर सकते जिनका संबंध गहरे तलों से है: पहले तल पर ही चूक जाओ, तो बाकी सब तल बंद हो जाते हैं। यदि तुम वास्तव में सुखी, आनंदित होना चाहते हो तो आरंभ से ही आनंदित होना शुरू करो। जो लोग भी आंतरिक आनंद तक पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं, शरीर की सुविधा उनके लिए अनिवार्य आवश्यकता है। ॥२

रेचन से प्रारंभ करो

मैं लोगों को कभी भी सीधे बैठने भर से ही शुरू करने को नहीं कहता।

शुरू ऐसी जगह से करो जहां से शुरू करना सरल हो। वरना तो व्यर्थ ही तुम्हें बहुत ही कुछ लगने लगेगा—जो वास्तव में है नहीं।

यदि तुम सीधे बैठने से शुरू करते हो, तो भीतर बड़ी बेचैनी अनुभव करोगे। जितना तुम बैठने का प्रयास करोगे, उतनी ही अशांति अनुभव होगी। तुम्हें बस अपने विक्षिप्त मन का ही पता चलेगा किसी और चीज का नहीं। इससे विषाद पैदा होगा; तुम हताश हो जाओगे, आनंदित अनुभव नहीं करोगे। बल्कि, तुम्हें लगने लगेगा कि तुम विक्षिप्त हो गए। और कई बार तुम वास्तव में विक्षिप्त भी हो सकते हो।

यदि तुम ईमानदारी से 'मात्र बैठने' का प्रयास करो तो विक्षिप्त भी हो सकते हो। लोग क्योंकि ईमानदारी से प्रयास नहीं करते, इसीलिए अधिक विक्षिप्तता नहीं घटती। थिर बैठने की मुद्रा में तुम्हें भीतर की इतनी विक्षिप्तता का पता लगना शुरू हो जाता है कि यदि तुम इसे निष्ठापूर्वक जारी रखो तो सच में विक्षिप्त हो सकते हो। ऐसा पहले बहुत बार हुआ है। तो मैं कभी भी किसी ऐसी चीज की सलाह नहीं देता जो निराशा, विषाद या उदासी पैदा कर सके... जो तुम्हें अपनी विक्षिप्तता के प्रति बहुत ज्यादा सचेत कर दे। हो सकता है कि अपने भीतर की पूरी विक्षिप्तता के प्रति जाग पाने की तुम्हारी तैयारी न हो।

कुछ बातें तुम्हें धीरे-धीरे पता लगने देनी चाहिए। ज्ञान सदा शुभ नहीं होता। जैसे-जैसे उसे पचाने की तुम्हारी क्षमता बढ़ती जाए, उसे वैसे ही धीरे-धीरे खुलना

चाहिए।

मैं तुम्हारी विक्षिप्तता से ही शुरू करता हूँ, बैठने की मुद्रा से नहीं। मैं तुम्हारे पागलपन को चलने देता हूँ। यदि तुम पागल की तरह नाचो, तो उसका विपरीत तुम्हारे भीतर घटित होगा। तेज नृत्य में तुम्हें अपने भीतर एक शांत बिंदु का पता लगना शुरू होता है; शांत बैठने से तुम्हें विक्षिप्तता का पता लगने लगता है। सदा विपरीत का ही पता चलता है।

पागलों की तरह, अव्यवस्थित रूप से नाचने में, रोने में, अराजक श्वास प्रक्रिया में मैं तुम्हें पागल होने देता हूँ। फिर सतह के पागलपन के विपरीत तुम्हें एक ऐसे सूक्ष्म बिंदु, अपने भीतर के एक ऐसे गहन बिंदु का पता लगने लगता है जो शांत और स्थिर है। तुम बहुत आनंदित अनुभव करोगे; तुम्हारे केंद्र पर एक आंतरिक मौन होगा। लेकिन यदि तुम सीधे थिर बैठते हो तो भीतर विक्षिप्तता ही होगी। बाहर से तुम शांत हो, पर भीतर से विक्षिप्त हो।

यदि तुम किसी सक्रिय विधि से शुरू करो—जो विधायक हो, जीवंत हो, गतिमय हो—तो बेहतर होगा। फिर तुम भीतर एक स्थिरता को विकसित होता हुआ अनुभव करोगे। जितनी वह स्थिरता विकसित होगी उतना ही तुम्हारे लिए किसी बैठने अथवा लेटने की मुद्रा का उपयोग कर पाना संभव होगा—कोई अधिक शांत ध्यान विधि संभव हो सकेगी। लेकिन तब तक बात भिन्न हो जाएगी, बिल्कुल भिन्न हो जाएगी।

जो ध्यान विधि सक्रियता से, गतिमयता

से शुरू होती है, वह तुम्हें अन्य रूपों में भी सहयोगी होती है। वह एक रेचन बन जाती है। जब तुम बस बैठ जाते हो, तो व्यथित होते हो: तुम्हारा मन तो चलना चाहता है और तुम बस बैठे हुए हो। हर मांसपेशी तन जाती है, हर स्नायु तन जाता है। तुम स्वयं पर ऐसा कुछ आरोपित करने का प्रयास कर रहे हो जो तुम्हारे लिए स्वाभाविक नहीं है। फिर तुमने स्वयं को आरोपित करने वाले और जिस पर आरोपित किया जा रहा है उसमें विभाजित कर लिया। और वास्तव में जिस भाग पर आरोपित किया जा रहा है और जिसे दबाया जा रहा है, वह अधिक मौलिक है। वह दमन करने वाले भाग से अधिक प्रमुख है, और प्रमुख भाग की निश्चित ही जीत होगी।

जिसका तुम दमन कर रहे हो, उसे तो वास्तव में बाहर फेंकना है, दबाना नहीं है। क्योंकि तुम लगातार उसे दबाते रहे हो इसलिए वह तुम्हारे भीतर जमा हो गया है। तुम्हारे सारे संस्कार, सारी सभ्यता और शिक्षा दमनकारी है। तुम इतना कुछ दबाते रहे हो जिसे सरलता से निकाला जा सकता था यदि तुम्हें एक भिन्न शिक्षा मिलती, एक अधिक जागरूक शिक्षा मिलती, अधिक जाग्रत माता-पिता मिलते। यदि मन की आंतरिक व्यवस्था के प्रति अधिक सजगता होती तो संस्कृति तुम्हें बहुत कुछ निकाल लेने देती। जैसे, कोई बच्चा क्रोधित होता है तो हम उसे कहते हैं, “क्रोध मत करो।” वह क्रोध को दबाने लगता है। धीरे-धीरे, जो क्षणिक घटना थी

वह स्थायी हो जाती है। अब वह क्रोध करेगा तो नहीं, लेकिन क्रोधित रहेगा। क्षणिक घटनाओं से हमने बहुत क्रोध जमा कर लिया है। यदि क्रोध को दबाया न जाए तो कोई हर समय क्रोधित नहीं रह सकता। क्रोध तो क्षणिक है, जो आता है और चला जाता है; यदि उसे अभिव्यक्त कर दिया जाए, तो फिर तुम क्रोधित नहीं रहते। तो अपने साथ, मैं बच्चों को अधिक प्रामाणिक रूप से क्रोधित होने दूंगा। क्रोधित होओ, लेकिन उसमें गहरे जाओ। उसे दबाओ मत।

निश्चित ही, समस्याएं तो आएंगी। जब हम कहते हैं, “क्रोधित होओ,” तो तुम किसी व्यक्ति पर क्रोधित होओगे।

लेकिन बच्चे को दिशा दी जा सकती है। उसे तकिया देकर कहा जा सकता है कि “तकिये पर क्रोध कर लो। तकिये पर हिंसा कर लो।” आरंभ से ही बच्चे को क्रोध का दिशा-परिवर्तन सिखाया जा सकता है। उसे कोई वस्तु दे सकते हैं: जब तक क्रोध चला न जाए वह उस वस्तु को पटकता रह सकता है। कुछ ही मिनटों में, क्षणों में उसका क्रोध समाप्त हो जाएगा, क्रोध का कोई संचय नहीं होगा।

तुमने क्रोध, काम, हिंसा, लोभ—सब कुछ संचयित कर लिया है। अब यह संचय ही तुम्हारे भीतर विक्षिप्तता बन गया है। वह तुम्हारे भीतर ही है। यदि तुम किसी निरोधक विधि से आरंभ करते हो (जैसे बैठना) तो तुम इस सब का दमन कर रहे हो, उसे निर्मुक्त नहीं होने दे रहे हो। तो मैं रेचन से आरंभ करता हूँ। पहले जितने

दमन हैं उन्हें हवा में निकलने दो। और जब तुम अपने क्रोध को हवा में निकाल सको तो तुम परिपक्व हुए।

यदि मैं अकेला प्रेमपूर्ण न हो सकूँ, यदि मैं उसी एक व्यक्ति के साथ प्रेमपूर्ण हो सकूँ जिसे प्रेम करता हूँ, तो मैं अभी परिपक्व नहीं हुआ। तब प्रेमपूर्ण होने के लिए भी मैं किसी पर आश्रित हूँ। कोई व्यक्ति होना चाहिए, तभी मैं प्रेमपूर्ण हो सकता हूँ। वह प्रेमपूर्ण होना तो बहुत उथली बात होगी। वह मेरा स्वभाव नहीं है। यदि कमरे में अकेला होने पर मैं प्रेमपूर्ण नहीं हूँ तो प्रेम का वह गुण बहुत गहरा नहीं गया; वह मेरे प्राणों का अंग नहीं बना।

जितने तुम कम आश्रित होते जाते हो, उतने ही तुम अधिक परिपक्व हो जाते हो। यदि तुम अकेले क्रोधित हो सको, तो तुम अधिक परिपक्व हो गए। तुम्हें क्रोधित होने के लिए किसी विषय की जरूरत न रही। तो प्रारंभ में मैं रेचन को एक अनिवार्यता बना देता हूँ। बिना किसी विषय का खयाल किए तुम्हें सब कुछ आकाश में खुले अंतरिक्ष में फेंक देना चाहिए।

जिस व्यक्ति के साथ तुम क्रोध करना चाहते थे, उसके बिना क्रोधित होओ। रोओ, बिना किसी कारण को खोजे। हंसो, अकारण ही हंसो। फिर तुम सारा संचय तिरोहित कर सकते हो। तुम उसे बस फेंक सकते हो! और एक बार तुम्हें ढंग आ जाए, तो तुम पूरे अतीत से निर्भर हो जाते हो।

कुछ ही मिनटों में तुम जन्म भर के बोझ

से, बल्कि जन्मों-जन्मों के बोझ से निर्भर हो सकते हो। यदि तुम सबकुछ निकाल फेंकने को तैयार हो जाओ, यदि तुम अपनी विक्षिप्तता को बाहर आने दे सको तो कुछ ही क्षणों में सब स्वच्छ हो जाए। अब तुम स्वच्छ हुए: ताजे, निर्दोष। तुम पुनः शिशुत्व हो गए। अब तुम्हारी इस निर्दोषता में, बैठकर ध्यान हो सकता है—बस बैठकर, या लेटकर या कैसे भी—क्योंकि अब भीतर कोई विक्षिप्तता नहीं है जो बैठने में बाधा डाले।

सबसे पहले सफाई होनी चाहिए—रेचन होना चाहिए। वरना, प्राणायाम से, बस बैठने से, आसन, योगासन साधने से तो तुम कुछ दबा रहे हो। और एक बड़ी अद्भुत घटना घटती है: जब तुम सबकुछ बाहर निकल जाने देते हो, तो बैठना ऐसे ही घट जाएगा, आसन ऐसे ही घट जाएंगे। यह सहज घटना होगी।

रेचन से आरंभ करो, और फिर तुम्हारे भीतर कुछ शुभ उपज सकता है। उसका एक भिन्न गुणधर्म होगा, एक भिन्न सौंदर्य होगा—बिल्कुल भिन्न। वह प्रामाणिक होगा।

जब मौन आता है, जब मौन तुम पर उतरता है, तो वह झूठा नहीं होता। तुम उसका सप्रयास निर्माण नहीं करते रहे हो। वह तुम पर आता है; तुममें घटित होता है। तुम उसे अपने भीतर ऐसे ही विकसित होता अनुभव करने लगते हो जैसे एक मां बच्चे को भीतर विकसित होता अनुभव करती है।¹³

जब मैं स्वयं ध्यान शिविर लेता था, तो हर रोज दोपहर को एक विधि होती थी जिसमें सभी शिविरार्थी एक साथ बैठ जाते थे, और हर किसी को छूट थी कि वह जो करना चाहे कर सकता है—कोई प्रतिबंध नहीं था, बस किसी और की प्रक्रिया में हस्तक्षेप भर नहीं करना था। वह जो कहना चाहे, कह सकता है; यदि रोना चाहे तो रो सकता है; हंसना चाहे तो हंस सकता है—और एक हजार लोग! कैसा मजेदार दृश्य होता था! ऐसे लोग जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते थे—गंभीर लोग—ऐसी-ऐसी मूर्खताएं करने लगते थे! कोई मुंह बना रहा है, जीभ जितनी बाहर निकाल सकता है निकाल रहा है, और तुम जानते हो कि यह व्यक्ति पुलिस कमिश्नर है!

एक व्यक्ति को तो मैं भूल ही नहीं सकता, क्योंकि वह हर रोज मेरे सामने बैठता था। वह अहमदाबाद का एक बड़ा धनी व्यक्ति था, और क्योंकि उसका पूरा व्यवसाय ही शेयर बाजार का था, तो वह हमेशा फोन करने में ही लगा रहता। जब भी यह एक घंटे का ध्यान शुरू होता, दो या तीन मिनट में ही वह फोन उठा लेता। वह नंबर घुमाने लगता: “हलो!” उसके चेहरे से ऐसा लगता जैसे उसे दूसरी ओर से उत्तर मिल रहा हो, और वह कहता—“खरीद लो।”

एक घंटे तक यह चलता रहता, और वह बार-बार कभी इधर फोन करता, कभी उधर फोन करता, और कभी-कभी मेरी ओर देख कर मुस्करा देता: “मैं भी क्या

मूर्खता कर रहा हूँ!” लेकिन मुझे बिलकुल गंभीर रहना पड़ता। मैं कभी उसकी ओर देखकर नहीं मुस्कराया। तो वह दोबारा फोन करना शुरू कर देता: “कोई नहीं देख रहा है, सभी अपने-अपने काम में लगे हैं।”

एक हजार लोग इतना कुछ करने लगे...और यह सब लगातार उनके मन में चल रहा था। वह सबकुछ बाहर निकालने का उनके लिए यह सुअवसर था। ऐसा खेल चलता था।

जयंतीभाई माउंट आबू के शिविर के संचालक थे, और उनके एक घनिष्ठ मित्र ने अपने सभी कपड़े उतार दिए। यह आश्चर्य की बात थी। जयंतीभाई मेरे पास ही खड़े थे; वे तो इस पर विश्वास ही न कर पाए। वह व्यक्ति बहुत गंभीर, और बहुत समृद्ध था; एक हजार लोगों के सामने वह यह क्या करने लगा? और फिर वह कार को धक्का देने लगा, जिसमें बैठकर मैं आया था—वह जयंतीभाई की कार थी। हम पहाड़ों पर थे, और ठीक सामने एक हजार फीट गहरा खड्ड था, और नंगा वह कार को धकेले जा रहा था।

जयंतीभाई मुझसे बोले, “क्या करूँ? वह तो कार को नष्ट कर देगा, और मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि यह आदमी मेरी कार के खिलाफ है। हम घनिष्ठ मित्र हैं।”

तो मैंने उन्हें कहा, “तुम दूसरी ओर से धक्का देने लगे; वरना वह तो...”

जयंतीभाई कार को रोकने लगे और उनका मित्र उछल-उछल कर चिल्लाने लगा, “मेरे रास्ते से हट जाओ! मैं हमेशा

से इस कार से घृणा करता हूँ।”—क्योंकि उसके पास कार नहीं थी, और यह एक विदेशी कार थी जो जयंतीभाई ने मेरे लिए रखी हुई थी। मैं वर्ष में तीन या चार बार माउंट आबू आता था, तो वह कार उन्होंने मेरे लिए ही रखी हुई थी।

उनके मित्र के भीतर जरूर ईर्ष्या रही होगी कि उसके पास कोई विदेशी कार नहीं है। और फिर परिस्थिति को देखकर कुछ लोग मदद के लिए दौड़े आए। जब उसने देखा कि इतने लोग उसे रोक रहे हैं, तो विरोध-प्रदर्शन में वह मेरे सामने एक वृक्ष पर चढ़ गया। नग्न वह वृक्ष की चोटी पर बैठ गया, और वृक्ष को हिलाने लगा। खतरा था कि वृक्ष के समेत वह हजार लोगों के ऊपर गिर जाएगा। जयंतीभाई ने मुझसे पूछा, “अब क्या किया जाए?”

मैंने कहा, “वह तुम्हारा मित्र है। वह जो करता है उसे करने दो, उसकी चिंता मत करो। बस लोगों को इधर-उधर हटा दो, और वह जो करता है उसे करने दो। अब वह कार को तो नुकसान नहीं पहुंचा रहा है। ज्यादा से ज्यादा उसकी कुछ हड्डियां ही टूटेंगी।”

जैसे ही लोग हटे, वह भी रुक गया। वृक्ष पर शांत होकर बैठ गया। ध्यान समाप्त हो जाने पर भी वह वृक्ष पर ही बैठा रहा। तब जयंतीभाई बोले, “अब नीचे उतर आओ। ध्यान समाप्त हुआ।”

जैसे नींद से जागा हो, उसने चारों ओर देखा और देखा कि वह नग्न था! वह वृक्ष से कूदा, और अपने वस्त्रों की ओर भागा। वह बोला, “मुझे हो क्या गया था?”

रात वह मुझे मिलने आया और बोला, “यह तो बड़ा खतरनाक ध्यान था! मैंने तो स्वयं को या किसी और को मार ही डाला होता। मैंने कार को तोड़-फोड़ डाला होता, और जयंतीभाई का मैं अच्छा मित्र हूँ, और मैंने कभी सोचा भी नहीं था...लेकिन निश्चित ही यह भाव मेरे भीतर रहा होगा।

“मुझे यह बात बुरी लगती थी कि आप हमेशा उन्हीं की कार में आते थे, और मुझे यह बात भी बुरी लगती थी कि उनके पास विदेशी कार है, लेकिन यह बात मेरे चेतन में बिलकुल भी नहीं थी। और मैं वृक्ष पर क्या कर रहा था? जरूर मुझमें इतनी हिंसा रही होगी, जो मैं लोगों को मार डालना चाहता था।”

वह ध्यान बड़ा सहयोगी था। एक घंटे में ही लोग इससे इतने विभ्रान्त हो जाते कि वे मुझसे कहते, “ऐसा लगता है कि सिर से कोई भारी बोझ उतर गया। हमें तो पता भी नहीं था कि हम अचेतन मन में क्या-क्या दबाये हुए हैं।” लेकिन उसके बोध के लिए उसे बेशर्त और अबाधित अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा और कोई उपाय नहीं था।

यह एक छोटा-सा प्रयोग था; मैंने लोगों से कहा कि वे इसे जारी रखें: जल्दी ही तुम्हारे सामने बहुत-सी चीजें आएंगी, और एक दिन तुम उस स्थिति पर पहुंच जाओगे जहां सब समाप्त हो जाता है। बस इतना स्मरण रखो कि किसी दूसरे व्यक्ति को हस्तक्षेप नहीं करना है और विध्वंसात्मक नहीं होना है। जो भी तुम कहना चाहते हो कहो; गालियां दो; जो भी

चाहो—और जो कुछ भी तुम जमा करते रहे हो उसे समाप्त करो।

लेकिन यह संसार भी विचित्र है। राजस्थान की सरकार ने अपनी विधानसभा में यह प्रस्ताव पारित किया कि

मैं माउंट आबू में शिविर नहीं ले सकता, क्योंकि उनके सुनने में आ रहा था कि यह सब वहां हो रहा है—अच्छे-भले लोग पागल हो जाते हैं, कुछ भी करने लगते हैं। अब विधानसभा में बैठे राजनीतिज्ञों को

मनुष्य के मन का, उनकी ग्रंथियों का, और उन्हें कैसे समाप्त करना, कैसे जलाना, इसका कुछ पता नहीं है। मुझे वह ध्यान बंद करना पड़ा क्योंकि वरना वे मुझे माउंट आबू में शिविर न लेने देते।¹⁴

तीन अनिवार्यताएं

ध्यान में कुछ अनिवार्य तत्व हैं, विधि कोई भी हो, वे अनिवार्य तत्व हर विधि के लिए आवश्यक हैं। पहली है एक विश्रामपूर्ण अवस्था: मन के साथ कोई संघर्ष नहीं, मन पर कोई नियंत्रण नहीं; कोई एकाग्रता नहीं। दूसरा, जो भी चल रहा है उसे बिना किसी हस्तक्षेप के, बस शांत सजगता से देखो भर—शांत होकर, बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के, बस मन को देखते रहो।

ये तीन बातें हैं: विश्राम, साक्षित्व, अ-निर्णय—और धीरे-धीरे एक गहन मौन तुम पर उतर आता है। तुम्हारे भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है। तुम हो, लेकिन 'मैं हूँ' का भाव नहीं है—बस एक शुद्ध आकाश है। ध्यान की एक सौ बारह विधियाँ हैं; मैं उन सभी विधियों पर बोला हूँ। उनकी संरचना में भेद है, परंतु उनके आधार वही हैं: विश्राम, साक्षित्व और एक निर्विवेचनापूर्ण दृष्टिकोण। 15

मुक्ति हेतु दिशा-निर्देश

खेलपूर्ण रहो

लाखों लोग ध्यान से चूक जाते हैं क्योंकि ध्यान ने गलत अर्थ ले लिए हैं। ध्यान बहुत गंभीर लगता है, उदास लगता है, उसमें कुछ चर्च वाली बात आ गई है; लगता है यह उन्हीं लोगों के लिए है जो या तो मर गए हैं या करीब-करीब मर गए हैं—जो उदास हैं, गंभीर हैं, जिनके चेहरे लंबे हो गए हैं; जिन्होंने उत्साह, मस्ती, प्रफुल्लता, उत्सव सब खो दिया है।

यही तो ध्यान के गुणधर्म हैं: जो व्यक्ति वास्तव में ध्यानी है वह खेलपूर्ण होगा;

जीवन उसके लिए मस्ती है, जीवन एक लीला, एक खेल है। वह जीवन का परम आनंद लेता है। वह गंभीर नहीं होता, विश्रामपूर्ण होता है। 16

धैर्य रखो

जल्दबाजी मत करो। बहुत बार जल्दबाजी से ही देर लग जाती है। जब तुम्हारी प्यास जगे, तो धैर्य से प्रतीक्षा करो—जितनी गहन प्रतीक्षा होगी, उतने जल्दी ही वह आएगा।

तुमने बीज बो दिए, अब छाया में बैठ रहो और देखो क्या होता है। बीज दूटेगा,

खिलेगा, लेकिन तुम प्रक्रिया को तेज नहीं कर सकते। क्या हर चीज के लिए समय नहीं चाहिए? तुम कार्य तो करो, लेकिन परिणाम परमात्मा पर छोड़ दो। जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता—विशेषतः सत्य की ओर उठाए गए कदम।

परंतु कई बार अधैर्य उठता है; प्यास के साथ ही आता है अधैर्य, पर वह बाधा है। प्यास को बचा लो और अधैर्य को जाने दो।

अधैर्य को प्यास के साथ मिलाओ मत। प्यास में उत्कंठा तो होती है परंतु कोई संघर्ष नहीं होता; अधैर्य में संघर्ष होता है और कोई उत्कंठा नहीं होती। अभीप्सा में प्रतीक्षा तो होती है परंतु कोई मांग नहीं होती; अधैर्य में मांग होती है और कोई प्रतीक्षा नहीं होती। प्यास में तो मौन आंसू होते हैं; अधैर्य में बेचैन संघर्ष होता है।

सत्य पर आक्रमण नहीं किया जा सकता; वह तो समर्पण से पाया जाता है, संघर्ष से नहीं। उसे समग्र समर्पण से जीता जाता है।¹⁷

परिणाम मत खोजो

अहंकार परिणामोन्मुख है, मन सदा परिणाम के लिए लालायित रहता है। मन का कर्म में कोई रस नहीं होता, परिणाम में ही रस होता है—“इससे मुझे क्या मिलेगा?” यदि कृत्य से गुजरे बिना ही मन परिणाम पा सके, तो वह छोटे मार्ग का ही चुनाव करेगा।

यही कारण है कि शिक्षित लोग चालाक हो जाते हैं, क्योंकि वे छोटे मार्ग खोजने में सक्षम होते हैं। यदि तुम न्यायोचित ढंग से धन कमाओ तो तुम्हारा पूरा जीवन भी इसमें लग सकता है। लेकिन यदि तुम तत्करी से, जुए से, या किसी और ढंग से—राजनेता, प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बन कर—धन कमा सको तो सभी छोटे मार्ग तुम्हें उपलब्ध होंगे। शिक्षित व्यक्ति चालाक हो जाता है। वह बुद्धिमान नहीं बनता, बस, चालाक हो जाता है। वह इतना चालाक हो जाता है कि बिना कुछ किए सब कुछ पा लेना चाहता है।

ध्यान उन्हीं लोगों को घटता है जो परिणामोन्मुख नहीं होते। ध्यान परिणामोन्मुख न होने की दशा है।¹⁸

बेहोशी का भी सम्मान करो

जब होश में हो तो होश का आनंद लो, और जब बेहोश हो तो बेहोशी का आनंद लो। कुछ भी गलत नहीं है, क्योंकि बेहोशी एक विश्राम की भांति है। वरना होश एक तनाव हो जाता। यदि तुम चौबीस घंटे जागे रहो तो तुम कितने दिन, सोचते हो कि, जीवित रहोगे?

भोजन के बिना मनुष्य तीन महीने जी सकता है; नींद के बिना तीन सप्ताह में ही वह विक्षिप्त हो जाएगा और वह आत्मघात का प्रयास करेगा। दिन में तुम सजग रहते हो; रात तुम विश्राम करते हो, और वह विश्राम तुम्हें दिन में, ताजे होकर, और

सजग होने में मदद करता है। ऊर्जाएं विश्राम की एक अवधि से गुजर जाती हैं और सुबह ज्यादा जीवंत हो जाती हैं।

ध्यान में भी ऐसा ही होगा: कुछ क्षण के लिए तुम बिलकुल होश में होते हो, शिखर पर होते हो और फिर कुछ क्षण के लिए घाटी में पहुंच जाते हो, विश्राम करते हो। होश बिदा हो गया, तुम भूल गए। लेकिन इसमें क्या गलत है? यह तो सीधी बात है। बेहोशी से फिर होश उठेगा, ताजा होकर, युवा होकर और यह चलता रहेगा। यदि तुम दोनों का आनंद ले सको तो तुम 'तीसरे' हो जाते हो, और यह सूत्र समझने जैसा है: यदि तुम दोनों का आनंद ले सको, इसका अर्थ हुआ कि तुम दोनों ही नहीं हो—न होश, न बेहोशी—तुम तो वह हो जो दोनों का आनंद लेता है। तब पार का कुछ प्रवेश कर जाता है।

वास्तव में, यही वास्तविक साक्षी है। तुम सुख का आनंद लेते हो, उसमें क्या गलत है? जब सुख गया और तुम दुखी हो गए तो दुख में क्या गलत है? उसका आनंद लो। एक बार तुम दुख का आनंद लेने में सक्षम हो जाओ तो तुम दोनों ही नहीं रहते।

और यह मैं तुम्हें कहता हूँ: यदि तुम दुख का आनंद ले सको, तो उसका अपना सौंदर्य है। सुख थोड़ा उथला है; दुख बहुत गहरा है, उसमें एक गहराई है। जो मनुष्य कभी दुखी नहीं हुआ वह उथला रहेगा, सतह पर ही रहेगा। दुख अंधेरी रात की तरह बहुत गहरा है। अंधकार में एक मौन है, और एक उदासी भी। सुख तो छलकता

है; उसमें एक आवाज होती है। वह तो पर्वतों की सरिता जैसा है; आवाज पैदा होती है। लेकिन पर्वतों में कोई भी नदी बहुत गहरी नहीं हो सकती; सदा उथली होती है। जब नदी मैदानों में पहुंचती है तो गहरी हो जाती है, लेकिन फिर आवाज नहीं होती। नदी बहती चलती है जैसे बह ही न रही हो। दुख में एक गहराई है।

झंझट क्यों खड़ी करनी? जब सुखी हो, तो सुखी होओ, उसका आनंद लो। उससे तादात्म्य मत बनाओ। जब मैं कहता हूँ: सुखी होओ, तो मेरा अर्थ है: उसका आनंद लो। उसे एक जलवायु बन जाने दो, जो बदल जाएगी। सुबह दोपहर में बदल जाती है, दोपहर शाम में, और फिर रात आ जाती है। सुख को अपने चारों ओर एक वातावरण बन जाने दो। उसका आनंद लो, और जब उदासी आए तो उसका भी आनंद लो। कुछ भी हो, मैं तुम्हें उसका आनंद लेना सिखाता हूँ। शांत बैठो और उदासी का आनंद लो, और अचानक उदासी उदासी नहीं रहती; वह स्वयं में एक सुंदर, शांत और मौन क्षण बन जाती है। उसमें कोई गलती नहीं है।

और फिर परम क्रीमिया घटित होती है, वह बिंदु आता है जहां तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम दोनों ही नहीं हो—न सुख, न दुख। तुम द्रष्टा हो: तुम शिखरों को भी देखते हो और घाटियों को भी; परंतु तुम दोनों ही नहीं हो।

एक बार यह दशा उपलब्ध हो जाए, तो तुम हर बात का उत्सव मनाते चले जा सकते हो। फिर तुम जीवन का उत्सव

मनाते हो, और मृत्यु का भी उत्सव मनाते हो।¹⁹

यंत्र मदद देते हैं परंतु ध्यान निर्मित नहीं करते

संसार भर में बहुत से यंत्र विकसित किए जा रहे हैं, जो दावा करते हैं कि वे तुम्हें ध्यान दे सकते हैं; तुम्हें बस इयरफोन लगाकर विश्राम करना है, और दस मिनट के भीतर तुम ध्यान की अवस्था में पहुंच जाओगे।

यह नितांत मूढ़ता है, परंतु तकनीकी लोगों के मन में यह विचार क्यों आया, इसके पीछे भी एक कारण है। जाग्रत अवस्था में मन एक विशेष आवृत्ति की तरंग में कार्य करता है। जब वह स्वप्न में होता है तो एक भिन्न तरंग-लंबान में कार्य करता है। लेकिन इनमें से कोई भी ध्यान नहीं है।

हजारों वर्षों से हमने ध्यान को तुरीय कहा है—“चौथा”। जब तुम गहनतम निद्रा के पार चले जाते हो और फिर भी जाग्रत होते हो, तो वह जागरण ध्यान है। वह कोई अनुभव नहीं है; वह तो तुम्हीं हो, तुम्हारा होना है।

लेकिन सही हाथों में ये उच्च तकनीक से बने यंत्र उपयोगी हो सकते हैं। वे तुम्हारे मस्तिष्क में ऐसी तरंगें पैदा करने में मदद दे सकते हैं कि तुम विश्रांत अनुभव करने लगे, जैसे कि आधे सोए हो... विचार बिदा होने लगते हैं और एक क्षण आता है

जब तुम्हारे भीतर सभी कुछ शांत हो जाता है। वही क्षण है जब वे तरंगें गहन निद्रा वाली तरंगें होती हैं। तुम्हें इस गहन निद्रा का बोध नहीं होगा, परंतु दस मिनट के बाद जब तुम्हें यंत्र से हटाया जाएगा तो तुम उसके प्रभाव देखोगे: कि तुम स्थिर, निश्चल और शांत हो गए हो; कोई चिंता नहीं रही, कोई तनाव नहीं रहा; जीवन अधिक प्रफुल्ल और आनंदमय लगने लगा है। व्यक्ति को ऐसा लगता है जैसे उसने कोई अंतर्स्नान कर लिया हो। तुम्हारा सारा अंतःशांत और शीतल हो जाता है। यंत्रों के साथ चीजें बहुत सुनिश्चित हो जाती हैं क्योंकि वे तुम्हारे किसी कृत्य पर निर्भर नहीं करतीं। यह ऐसे ही है जैसे संगीत सुनना: तुम शांत और लयबद्ध अनुभव करते हो। वे यंत्र तुम्हें तीसरी अवस्था—गहन निद्रा, स्वप्नरहित निद्रा तक ले जाएंगे।

लेकिन यदि तुम सोचो कि यही ध्यान है, तो तुम गलत हो। मैं कहूंगा, यह एक अच्छा अनुभव है, और जब तुम गहन निद्रा के क्षण में पहुंचो, और जब मन अपनी तरंगें बदलना शुरू करे, तो यदि शुरू से ही तुम जाग्रत रह सको... तुम्हें अधिक सचेत, जागरूक और सजग होना होगा कि क्या हो रहा है, और तुम पाओगे कि मन धीरे-धीरे सोता जा रहा है। और यदि तुम मन को सोते हुए देख सको... जो मन को सोते हुए देख रहा है वह तुम्हारी स्व-सत्ता है, और वही हर प्रामाणिक ध्यान का लक्ष्य है।

ये यंत्र उस सजगता को पैदा नहीं कर

सकते। वह सजगता तो तुम्हीं को निर्मित करनी होगी, परंतु ये यंत्र दस मिनट के भीतर एक ऐसी संभावना निश्चित ही निर्मित कर सकते हैं जो तुम वर्षों के प्रयास में भी निर्मित न कर पाते।

तो मैं इन तकनीकी यंत्रों के विरुद्ध नहीं हूँ, मैं उनके पक्ष में हूँ। मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ कि जो लोग संसार भर में उन यंत्रों का प्रसार कर रहे हैं, वे यह जान लें कि वे शुभ कार्य कर रहे हैं, परंतु वह अधूरा है। वह तभी पूरा होगा जब गहन मौन में उतरा हुआ वह व्यक्ति सजग भी हो, जैसे होश का छोटा-सा दीया जलता चला जाए। सब कुछ विलीन हो जाता है, सब ओर अंधकार, मौन और शांति है—लेकिन होश की एक अचल ज्योति जल रही है।

तो यदि वह यंत्र सही हाथों में हो और लोगों को सिखाया जा सके कि वास्तविक चीज यंत्र से नहीं आएगी, तो यंत्र वह अनिवार्य भूमि निर्मित कर सकते हैं जिस पर वह ज्योति विकसित हो सकती है। लेकिन ज्योति तुम पर निर्भर करती है, यंत्र पर नहीं।

तो, एक ओर तो मैं उन यंत्रों के पक्ष में हूँ और दूसरी ओर मैं उनके बहुत विरोध में भी हूँ, क्योंकि बहुत से लोग सोचेंगे, “यही ध्यान है,” और वे भ्रम में पड़ जाएंगे। ये यंत्र बहुत नुकसान पहुंचाएंगे, पर शीघ्र ही वे पूरे विश्व में फैल जाएंगे। और वे बहुत सरल हैं—उनमें बहुत कुछ नहीं है। बस एक विशेष प्रकार की तरंगें पैदा करने का प्रश्न है। संगीतज्ञ उन यंत्रों

से सीख सकते हैं कि वे किस प्रकार की तरंगें लोगों में पैदा करते हैं, और उन तरंगों को वे अपने वाद्यों से निर्मित करना शुरू कर सकते हैं। उन यंत्रों की जरूरत नहीं है, संगीतज्ञ तुम्हारे लिए उन तरंगों को पैदा कर सकते हैं, और तुम निद्रा में उतरने लगोगे। परंतु यदि तुम गहनतम निद्रा में भी जाग्रत रह सको, जब तुम देखो कि बस एक और कदम और तुम अचेतन हो जाओगे, तो तुमने एक रहस्य जान लिया। उस यंत्र का बड़ा सुंदर उपयोग हो सकता है।

और यही बात संसार के सब यंत्रों के विषय में सत्य है: सही हाथों में उन्हें मनुष्यता के अपार कल्याण के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। गलत हाथों में वे अवरोध बन जाते हैं। और दुर्भाग्य से, बहुत से गलत हाथ हैं...।

लेकिन यह ध्यान नहीं है, यह तो मात्र उन तरंगों का परिवर्तन है जो तुम्हारे चारों ओर वातावरण में सतत प्रवाहित हो रही हैं। एक अनुभव की तरह यह निश्चित ही उपयोगी होगा; वरना बहुत से लोगों के लिए तो ध्यान केवल एक शब्द ही रहता है। वे सोचते हैं कि कभी ध्यान करेंगे। और यह संदेह भी बना रहता है कि कोई ध्यान करता भी है या नहीं?

लेकिन पश्चिम का मन यांत्रिक है, उनका दृष्टिकोण यांत्रिक है; वे हर चीज को यंत्र तक ले आना चाहते हैं—और इसमें वे सक्षम भी हैं। लेकिन कुछ ऐसी चीजें हैं जो यंत्रों की क्षमता के पार हैं। होश किसी भी यंत्र से पैदा नहीं किया जा सकता; वह किसी भी आधुनिक तकनीक

की संभावना के पार है। लेकिन टेक्नालॉजी जो तुम्हें दे सकती उसे निश्चित रूप से उपयोग किया जा सकता है। ध्यान में छलांग लेने के एक सुंदर माध्यम की भांति उसका उपयोग हो सकता है।

और एक बार तुम्हें होश का स्वाद लग जाए, शायद कुछ बार और यंत्र सहयोगी हो सकता है ताकि तुम्हारा होश अधिकाधिक स्पष्ट हो जाए, कि तुम्हारा होश यंत्र-निर्मित मौन से अधिकाधिक विच्छिन्न हो जाए। और फिर तुम्हें यह प्रयोग यंत्र के बिना शुरू करना चाहिए। एक बार तुमने यंत्र के बिना करना सीख लिया, तो यंत्र तुम्हारे लिए परम सहयोगी हुआ।²⁰

तुम अनुभव नहीं हो

तुम्हारे द्वारा ही नहीं सबके द्वारा स्मरण रखने योग्य एक अत्यंत मूलभूत सूत्र यह है कि तुम्हारी अंतर्यात्रा में जो कुछ भी मार्ग में आए, वह तुम नहीं हो।

तुम तो वह हो जो इन सबका साक्षी है—चाहे वह शून्य हो, कि आनंद हो, कि मौन हो। लेकिन एक बात स्मरण रखने की है—कि कैसे भी सुंदर और विस्मयकारी अनुभव से तुम गुजरो, तुम वह नहीं हो।

तुम तो वह हो जो उनका अनुभव कर रहा है, और यदि तुम बढ़ते चले जाओ, बढ़ते ही चले जाओ—तो यात्रा का परम बिंदु वह है जहां कोई अनुभव नहीं बचता—न तो मौन, न आनंद, न शून्य।

तुम्हारे लिए विषय जैसा कुछ भी नहीं बचता, बस तुम ही अपने चैतन्य में बच रहते हो।

दर्पण रिक्त हो गया। वह कुछ भी प्रतिबिम्बित नहीं कर रहा। यह तुम हो।

अंतर्जगत के बड़े-बड़े साधक भी सुंदर अनुभवों में अटक गए हैं। वे यह सोचकर उन अनुभवों से तादात्म्य बना लिए हैं, “कि मैंने स्वयं को पा लिया।” वे उस अंतिम अवस्था पर पहुंचने से पहले ही रुक गए जहां सब अनुभव समाप्त हो जाते हैं।

संबंधि कोई अनुभव नहीं है। यह तो वह अवस्था है जहां तुम नितांत अकेले रह जाते हो, कुछ भी जानने को नहीं रहता। कोई भी विषय—कैसा ही सुंदर क्यों न हो—नहीं बचता। उसी क्षण में तुम्हारी चेतना, किसी भी विषय से निर्बाध होकर, मुड़ती है और स्रोत की ओर लौट जाती है। वह आत्मानुभूति बन जाती है। वह बुद्धत्व बन जाती है।

मैं तुम्हें ‘विषय’—आब्जेक्ट—शब्द के बारे में बताऊं। हर विषय का अर्थ है अवरोध। इस शब्द ही का अर्थ है—अवरोध, बाधा।

तो विषय तुमसे बाहर, पदार्थ जगत में भी हो सकता है, और तुम्हारे भीतर तुम्हारे मानसिक जगत में भी हो सकता है; विषय तुम्हारे हृदय में, भावनाओं में, भावावेगों में, भावुकताओं में, भावदशाओं में भी हो सकता है। और विषय तुम्हारे आध्यात्मिक संसार में भी हो सकते हैं। और वे इतने आनंददायी होते हैं कि इससे अधिक कुछ

हो सकता है, व्यक्ति इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। और संसार के बहुत से संत आनंद पर रुक गए हैं। भले ही वह दशा सुन्दर हो, मनोरम हो, परंतु वे अभी घर नहीं पहुंचे।

जब तुम ऐसे बिंदु पर पहुंचते हो जब सारे अनुभव बिदा हो जाते हैं, कोई विषय नहीं रहता, तब चेतना निर्बाध हुई एक वर्तुल में गति करती है—अस्तित्व में हर चीज, यदि निर्बाध हो तो, वर्तुल में ही गति करती है—वह तुम्हारी स्व-सत्ता के स्रोत से आती है, और चारों ओर फैल जाती है। कोई बाधा न पाकर—न कोई अनुभव, न विषय—वह वापस लौट आती है। और चेतना स्वयं विषय हो जाती है। यही तो जे.कृष्णमूर्ति अपने जीवन भर कहते रहे: जब द्रष्टा ही दृश्य बन जाए तो जानना कि तुम पहुंच गए। उससे पहले मार्ग में हजारों चीजें आती हैं। शरीर अपने अनुभव देता है, जो कुंडलिनी के चक्रों के अनुभव की भांति जाने जाते हैं; सात केंद्र सात कमल बन जाते हैं। हर कमल पहले से विशाल और उच्चतर होता है, और उसकी सुरभि मादक होती है। मन तुम्हें गहन आयाम देता है—असीम और अनंत। लेकिन यह मूलभूत सूत्र याद रखना कि ‘घर’ अभी भी नहीं आया है।

यात्रा का आनंद लो और मार्ग में वृक्षों, पर्वतों, पुष्पों, सरिताओं, सूर्य, चंद्र और तारों के जो दृश्य आए उनका भी आनंद लो—लेकिन जब तक तुम्हारी चेतना ही अपना विषय न बन जाए, तब तक कहीं भी रुको मत। जब द्रष्टा ही दृश्य बन जाता

है, जब ज्ञाता ही ज्ञात हो जाता है, जब देखने वाला ही देखा गया बन जाता है, तो घर आ पहुंचा।

यही घर वह वास्तविक मंदिर है जिसकी हम जन्मों से खोज करते रहे हैं, पर हम भटक जाते हैं। हम सुंदर अनुभवों से संतुष्ट हो जाते हैं।

साहसी साधक को वे सभी सुंदर अनुभव पीछे छोड़ देने होंगे, और बढ़ते चले जाना होगा। जब सभी अनुभव समाप्त हो जाते हैं और वह अपने ही एकाकीपन में बच रहता है...तो कोई आनंद इससे बड़ा नहीं है, कोई आह्लाद इससे अधिक आह्लादमय नहीं है, कोई सत्य इससे अधिक सत्यतर नहीं है। तुम उसमें प्रवेश कर गए जिसे मैं भगवत्ता कहता हूं, तुम एक भगवान हो गए।

एक वृद्ध व्यक्ति अपने डॉक्टर के पास गया और बोला, “मुझे मल-मूत्र संबंधी तकलीफ है।”

“अच्छा, चलो देखते हैं। तुम्हारे मूत्र-त्याग की कैसी स्थिति है?”

“हर सुबह ठीक सात बजे आ जाता है, जैसे बच्चों को आना चाहिए।”

“बहुत अच्छा। और मल-त्याग कैसा है?”

“हर सुबह ठीक आठ बजे, बिलकुल जैसे घड़ी चलती है।”

“तो फिर तकलीफ क्या है?” डॉक्टर ने पूछा।

“मैं नौ बजे से पहले नहीं उठता।”

तुम सोए हो और समय है कि जाग जाओ।

ये सभी अनुभव प्रसुप्त मन के अनुभव हैं।

जाग्रत मन का कोई अनुभव नहीं होता।²¹

द्रष्टा साक्षी नहीं है

द्रष्टा और दृश्य साक्षी के दो पहलू हैं। जब वे एक-दूसरे में तिरोहित हो जाते हैं, जब वे एक-दूसरे में लीन हो जाते हैं, जब वे एक हो जाते हैं, तो पहली बार साक्षी का उसकी समग्रता में प्रादुर्भाव होता है।

परंतु एक प्रश्न कई लोगों को उठता है। इसका कारण है कि वे साक्षी को ही द्रष्टा समझते हैं। उनके मन में द्रष्टा और साक्षी पर्याय हैं। यह भ्रान्तिपूर्ण है; द्रष्टा साक्षी नहीं है, बल्कि उसका केवल एक अंश है। और जब भी अंश स्वयं को पूर्ण मानता है, गलती शुरू हो जाती है।

द्रष्टा का अर्थ है चेतनागत, और दृश्य का अर्थ है पदार्थगत, विषयगत। द्रष्टा का अर्थ है जो दृश्य के बाहर हो, और द्रष्टा का अर्थ है जो भीतर है। भीतर और बाहर को विभाजित नहीं किया जा सकता; वे युगपत् हैं, और युगपत् ही हो सकते हैं। जब इस युगपत्य का, या कहा जाए अद्वैत का अनुभव हो जाता है तो साक्षी का प्रादुर्भाव होता है।

साक्षी को तुम साध नहीं सकते। यदि तुम साक्षी को साधो, तो बस द्रष्टा को ही

साध पाओगे, और द्रष्टा साक्षी नहीं है।

फिर क्या करना है? पिघलना है, विलीन होना है। जब एक गुलाब के फूल को देखो, तो बिलकुल भूल जाओ कि एक विषय है जो देखा गया और एक चेतना है जो देखने वाली है। उस क्षण के सौंदर्य को, उस क्षण की धन्यता को तुम दोनों को अभिभूत कर लेने दो, ताकि तुम और गुलाब भिन्न न रहो, बल्कि एक लय, एक गीत, एक मस्ती बन जाओ।

प्रेम करते हुए, संगीत सुनते हुए, सूर्यास्त को देखते हुए, इसे बार-बार होने दो। यह जितना हो उतना ही अच्छा, क्योंकि यह कोई कला नहीं बल्कि एक कौशल है, एक गुर है। तुम्हें इसका सूत्र-संकेत ग्रहण कर लेना है; एक बार तुम इसे पा लो तो इसे कहीं भी, कभी भी शुरू कर सकते हो।

जब साक्षी का प्रादुर्भाव होता है, तो न तो कोई देखने वाला बचता है, न देखा जाने वाला। साक्षी एक निर्मल दर्पण है, जो कुछ भी प्रबिंबित नहीं करता। यह कहना भी उचित नहीं है कि वह एक दर्पण है; यह कहना बेहतर होगा कि वह एक दर्पणत्व है। वह तो पिघलने और विलीन होने की एक गत्यात्मक प्रक्रिया है; वह कोई जड़ घटना नहीं, एक प्रवाह है। तुम गुलाब तक पहुंच रहे हो, गुलाब तुममें पहुंच रहा है: यह अंतरात्मा का एक आदान-प्रदान है।

यह धारणा भूल जाओ कि साक्षी द्रष्टा है; वह द्रष्टा नहीं है। द्रष्टा को साधा जा सकता है, साक्षी सहज घटता है। द्रष्टा तो

एक प्रकार की एकाग्रता है, द्रष्टा तुम्हें अलग रखे रहता है। द्रष्टा तो तुम्हारे अहंकार में अभिवृद्धि करेगा, उसे सशक्त करेगा। जितने तुम द्रष्टा होते जाओगे उतना तुम्हें लगेगा जैसे एक द्वीप हो गए—विभाजित, एकाकी, सुदूर।

युगों से, संसार भर के साधक द्रष्टा को साधते रहे हैं। वे भले ही इसे साक्षी कहते रहे हों, पर यह साक्षी नहीं है। साक्षी तो बिलकुल भिन्न है, गुणात्मक रूप से भिन्न है। द्रष्टा को साधा जा सकता है, प्रयासपूर्वक विकसित किया जा सकता है; उसे साधकर तुम बेहतर द्रष्टा बन सकते हो।

वैज्ञानिक अवलोकन करता है, संत साक्षी रहता है। विज्ञान की पूरी प्रक्रिया ही अवलोकन की है: इतने तत्पर, सूक्ष्म और तीक्ष्ण ढंग से देखना होता है कि कुछ भी चूक न जाए। लेकिन वैज्ञानिक परमात्मा को नहीं जान पाता। यद्यपि उसका अवलोकन बहुत ही कुशल होता है, फिर भी वह परमात्मा से अनभिज्ञ रहता है। उसका कभी परमात्मा से मिलना नहीं होता; बल्कि वह परमात्मा के होने से इनकार करता है, क्योंकि जितना वह अवलोकन करता है—और यह पूरी प्रक्रिया अवलोकन की ही है—उतना ही वह अस्तित्व से अलग हो जाता है। सेतु टूट जाते हैं और दीवारें खड़ी हो जाती हैं; वह अपने ही अहंकार में कैद हो जाता है।

संभ साक्षी रहता है। लेकिन स्मरण रखना, साक्षित्व एक घटना है, एक उप-उत्पत्ति है—क्षण में, परिस्थिति में,

अनुभव में समग्र होने का परिणाम है। समग्रता ही कुंजी है: समग्रता से ही साक्षी की धन्यता का जन्म होता है।

अवलोकन के विषय में सब भूल जाओ; उससे तुम्हें अवलोकित विषय के संबंध में तो अधिक परिमार्जित सूचना मिल जाएगी, लेकिन तुम अपनी ही चेतना से बिलकुल अनभिज्ञ रह जाओगे।²²

ध्यान एक गुर है, एक 'नैक' है

ध्यान एक ऐसा रहस्य है जिसे बिना किसी विरोधाभास के एक विज्ञान, एक कला, एक गुर कहा जा सकता है।

एक ओर से यह एक विज्ञान है क्योंकि एक सुस्पष्ट विधि को करना होता है। उसमें कोई अपवाद नहीं होते, यह लगभग एक वैज्ञानिक नियम की भांति है।

परंतु एक भिन्न दृष्टिकोण से इसे एक कला भी कहा जा सकता है। विज्ञान मन का एक विस्तार है—वह गणित है, तर्कयुक्त है, तर्कसंगत है। ध्यान का संबंध हृदय से है, मन से नहीं—वह तर्क नहीं है, वह तो प्रेम के अधिक करीब है। वह अन्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसा नहीं, बल्कि संगीत, काव्य, चित्रकारी, नृत्य जैसा है; अतः, उसे एक कला कहा जा सकता है।

लेकिन ध्यान इतना बड़ा रहस्य है कि

उसे 'विज्ञान' और 'कला' कहने से उसका समापन नहीं होता। वह तो एक गुर है—या तुम उसे पा लेते हो, या नहीं पाते। गुर कोई विज्ञान नहीं है, वह सिखाया नहीं जा सकता। गुर कोई कला भी नहीं है। गुर मानवीय समझ की एक सर्वाधिक रहस्यपूर्ण घटना है।²³

बचपन में मुझे एक पारंगत तैराक के पास भेजा गया। वह नगर का सर्वश्रेष्ठ तैराक था, और मुझे कभी कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला जो पानी से ऐसे अपूर्व प्रेम में हो। पानी उसके लिए परमात्मा था, वह उसकी पूजा करता था, और नदी उसका घर थी। बिलकुल सुबह-सुबह तीन बजे तुम उसे नदी पर पाते। शाम तुम उसे नदी पर पाते और रात नदी के किनारे उसे ध्यान करता पाते। उसका सारा जीवन ही नदी के आस-पास सीमित था।

जब मुझे उसके पास ले जाया गया—मैं तैरना सीखना चाहता था—उसने मेरी ओर देखा, कुछ महसूस किया। वह बोला, “लेकिन तैरना सीखने का कोई उपाय नहीं है; मैं तो बस तुम्हें पानी में फेंक सकता हूँ और फिर तैरना अपने आप से आ जाता है। उसे सीखने का कोई उपाय नहीं, न ही उसे सिखाया जा सकता है। वह तो एक गुर है, कोई जानकारी नहीं।”

और यही उसने किया—मुझे पानी में फेंक दिया और स्वयं किनारे पर खड़ा रहा। दो-तीन बार मैंने गोता खाया और मुझे लगा कि मैं बस डूब रहा हूँ। वह वहीं

खड़ा रहा, मुझे बचाने का कोई प्रयास ही नहीं किया! स्वभावतः जब तुम्हारा जीवन दांव पर लगा होता है, तब तुम जो कर सकते हो करते हो। तो मैंने अपने हाथ-पांव मारने शुरू कर दिए—ऊलजलूल, उलटे-सीधे—पर गुर हाथ लग गया। जब जीवन ही दांव पर लग जाए तो तुम जो कर सकते हो करते हो...और जब भी तुम जो कर सकते हो उसे समग्रता से करते हो, तो चीजें घटित होती हैं।

मैं तैर सका! मैं रोमांचित था। “दूसरी बार”, मैंने कहा, “आपको मुझे धक्का देने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं खुद ही कूद पड़ूंगा। अब मैं जानता हूँ कि शरीर की अपनी एक उत्प्लावकता है। यह तैरने का प्रश्न नहीं है, यह प्रश्न है जल-तत्त्व के साथ सामंजस्य बैठ जाने का। एक बार तुम्हारा जल-तत्त्व के साथ सामंजस्य बैठ जाए तो वह तुम्हारी रक्षा करेगा।”

और तब से मैं कितने ही लोगों को इस जीवन की नदी में धकेलता रहा हूँ। और मैं बस मौजूद रहता हूँ...यदि व्यक्ति छलांग ले ले तो अधिकांशतः कभी कोई असफल नहीं होता। वह सीख ही जाएगा।²⁴

हो सकता है गुर पाने में तुम्हें कुछ दिन लग जाएं। ध्यान एक गुर है, कोई कला नहीं! यदि ध्यान कोई कला होती, तो उसे सिखाना सरल होता। चूंकि वह एक गुर है, इसलिए तुम्हें प्रयास करना पड़ता है; धीरे-धीरे तुम उसे पा लेते हो। मनोविज्ञान का एक जापानी प्रोफेसर

छोटे, छः महीने के बच्चों को तैरना सिखाने का प्रयास कर रहा है, और वह सफल हुआ है। फिर उसने तीन महीने के बच्चों के साथ प्रयास किया—और वह सफल हुआ है। और वह बिलकुल नवजात शिशुओं के साथ प्रयोग कर रहा है, और मैं आशा करता हूँ कि वह सफल

होगा। हर संभावना है—क्योंकि यह एक गुरु है। इसके लिए किसी और प्रकार का अनुभव नहीं चाहिए: जैसे आयु, शिक्षा...यह तो बस एक गुरु है। और यदि छः या तीन महीने का कोई बच्चा तैर सकता है तो इसका अर्थ हुआ कि “कैसे तैरना है”, यह खयाल हमें

स्वाभाविक रूप से उपहार में मिला है... हमें बस उसका आविष्कार करना है। जरा-सा प्रयास और तुम उसे खोज लोगे। ध्यान के संबंध में भी यही सत्य है—तैरने के संबंध से भी अधिक सत्य है। तुम्हें बस थोड़ा-सा प्रयास करना है।²⁵

ध्यान की विधियां

ध्यान की विधियाँ

जागरण की दो शक्तिशाली विधियां

ये वास्तव में ध्यान नहीं हैं। तुम बस लय बिठा रहे हो। यह ऐसे ही है... यदि तुमने भारत के शास्त्रीय संगीतज्ञों को वाद्य छेड़ते देखा हो... आधे घंटे तक, और कई बार तो उससे भी अधिक, वे अपने वाद्य बिठाने में लगे रहते हैं। कभी वे कुछ जोड़ों को बदलेंगे, कभी तारों को कसेंगे या ढीला करेंगे, और तबला वादक अपने तबले को जांचता रहेगा—कि वह बिल्कुल ठीक है या नहीं। आधे घंटे तक वे यही सब करते रहते हैं। यह संगीत नहीं है, बस तैयारी है।

कुंडलिनी विधि वास्तव में ध्यान नहीं है। यह तो तैयारी मात्र है। तुम अपना वाद्य बिठा रहे हो। जब वह तैयार हो जाए, तो फिर तुम मौन में थिर हो जाओ, फिर ध्यान शुरू होता है। फिर तुम पूर्णतया वहीं होते हो। उछल-कूद कर, नाचकर, श्वास-प्रश्वास से, चिल्लाने से तुमने स्वयं को जगा लिया—ये सब युक्तियां हैं कि जितने तुम साधारणतया सजग हो उससे थोड़े और ज्यादा सजग हो जाओ। एक बार तुम सजग हो जाओ, तो फिर प्रतीक्षा शुरू होती है। प्रतीक्षा करना ही ध्यान है—पूरे होश के साथ प्रतीक्षा करना। और फिर वह आता है, तुम पर अवतरित होता है, तुम्हें घेर लेता है, तुम्हारे चारों ओर उसकी क्रीड़ा चलती, उसका नृत्य चलता; वह तुम्हें स्वच्छ कर देता है, परिशुद्ध कर देता है, रूपांतरित कर देता है।

ध्यान की विधियाँ

ध्यान एक ऊर्जा की घटना है। सभी प्रकार की ऊर्जाओं के संबंध में एक आधारभूत बात समझ लेनी है, और यह समझने के लिए मूलभूत नियम है कि ऊर्जा दो विपरीत ध्रुवों में बहती है। केवल यही एक ढंग है उसके बहने का; और कोई दूसरा ढंग नहीं है उसके बहने का। वह द्वन्द्वात्मक ध्रुवों में बहती है।

किसी भी ऊर्जा को गतिमान होने के लिए विपरीत ध्रुव की जरूरत होती है। यह विद्युत की भांति है जो निगेटिव और

सक्रिय-ध्यान : रेचन और उत्सव

पॉजिटिव ध्रुवों के बीच बहती है। यदि केवल निगेटिव ध्रुव हो तो विद्युत का प्रवाह नहीं होगा; या यदि केवल पॉजिटिव ध्रुव हो तो भी विद्युत का प्रवाह नहीं होगा।

दोनों ही ध्रुव जरूरी हैं। और जब दोनों ध्रुव जुड़ते हैं, तब वे विद्युत धारा को बनाते हैं; तब विद्युत की ऊर्जा जन्मती है।

और ऐसा ही नियम है अन्य सभी ऊर्जा घटनाओं के लिए। जीवन सतत प्रवाहमान है—पुरुष और स्त्री के बीच, दो ध्रुवों में।

स्त्री जीवन-ऊर्जा का निगेटिव ध्रुव है और पुरुष पॉजिटिव ध्रुव है। वे विद्युत ऊर्जा हैं—इसीलिए उनके बीच इतना आकर्षण है। पुरुष अकेला हो तो जीवन विलीन हो जाएगा; अकेली स्त्री के साथ कोई जीवन घटित न हो सकेगा, केवल मृत्यु होगी। स्त्री और पुरुष के बीच एक संतुलन होता है। स्त्री और पुरुष के बीच—इन दो ध्रुवों के दो किनारों के बीच जीवन की नदी बहती है।

जहां कहीं तुम देखोगे, तुम पाओगे कि यही ऊर्जा ध्रुवों में गतिमान है, अपने को संतुलित करती हुई।

ध्यान के लिए यह ध्रुवीयता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि मन तर्कसंगत है और जीवन द्वन्द्वात्मक है। जब मैं कहता हूँ कि जीवन द्वन्द्वात्मक है तो उसका अर्थ है कि जीवन विपरीत ध्रुवों के बीच गति करता है—एक सीधी रेखा में नहीं। ऊर्जा चक्कर लगाती है: निगेटिव से

पॉजिटिव, पॉजिटिव से निगेटिव। इस तरह ऊर्जा सर्किट में घूमती है—विपरीत ध्रुव का उपयोग करती हुई।

मन एक सीधी रेखा में, एक सीधी सरल रेखा में गति करता है। वह कभी एक साथ विपरीत में गति नहीं करता; यह विपरीत का इनकार करता है। मन एक में विश्वास करता है और जीवन का भरोसा दो में है।

मन जो भी निर्मित करता है, वह हमेशा एक का चुनाव करता है। मन जब मौन का चुनाव करता है—मन जब जीवन द्वारा निर्मित सारे शोरगुलों से ऊब चुका है और मौन होना चाहता है तब वह हिमालय में चला जाता है। तब वह मौन होना चाहता है; वह किसी प्रकार के शोरगुल से कुछ भी लेन-देन नहीं रखना चाहता। यहां तक कि पक्षियों के गीत भी उसे परेशान करेंगे; वृक्षों से गुजरती हुई हवा की आवाज भी उसे बाधा जान पड़ेगी। मन शांति चाहता है; उसने एक रेखा, एक ध्रुव को चुन लिया है। अब विपरीत का पूर्णतः नकार कर देना होगा।

अब यह व्यक्ति जो हिमालय में रहता है—शांति की खोज में, दूसरों से बचता हुआ, विपरीत से भागता हुआ—यह व्यक्ति मृतवत हो जाएगा; यह निश्चित ही मंद हो जाएगा। जितना वह मौन का चुनाव करेगा उतना ही वह जड़ होता जाएगा क्योंकि जीवन के लिए विपरीत चाहिए, विपरीत की चुनौती चाहिए।

एक भिन्न ही प्रकार का मौन है जो दो विरोधों के बीच होता है। पहला, उपरोक्त

मृत मौन है, कब्रिस्तान का मौन। मृत व्यक्ति मौन है, लेकिन तुम मृत होना नहीं चाहोगे। मृत व्यक्ति परम मौन में है! कोई उसे अशांत नहीं कर सकता, उसकी एकाग्रता परिपूर्ण है। उसके मन को विचलित करने के लिए तुम कुछ भी नहीं कर सकते। उसका मन पूर्णतः निष्क्रिय है। यहां तक कि यदि पूरी दुनिया उसके चारों ओर विक्षिप्त हो जाए तो भी वह अपनी एकाग्रता में थिर रहेगा। फिर भी तुम एक मृत व्यक्ति न बनना चाहोगे। मौन, एकाग्रता... या जो भी इसे कहा जाए—तुम मृत होना नहीं चाहोगे क्योंकि यदि मौन हो और मृत भी हो, तो यह मौन निरर्थक होगा।

मौन तो तब घटना चाहिए जब तुम पूर्णरूपेण जीवंत हो, प्राणवान हो, जीवन और ऊर्जा से आपूरित हो। तब मौन अर्थपूर्ण है। तब मौन की अलग ही गुणवत्ता, सर्वथा अलग ही गुणवत्ता होगी। मौन बुझा-बुझा न होगा। वह जीवंत होगा। वह दो विपरीत ध्रुवों के बीच एक सूक्ष्म संतुलन होगा।

वह व्यक्ति जो एक जीवंत संतुलन, एक जीवंत मौन खोज रहा है, वह हिमालय और बाजार दोनों के बीच गति करना चाहेगा। वह बाजार जाना चाहेगा—वहां की आवाजों का मजा लेने के लिए; और वह हिमालय जाना चाहेगा—वहां के सन्नाटे का आनंद लेने के लिए। वह इन दो विपरीत ध्रुवों के बीच संतुलन बनाएगा और वह उस संतुलन में थिर रहेगा। एक सीधी एकांगी रेखा में

चलकर यह संतुलन उपलब्ध नहीं किया जा सकता।

यही है अर्थ ज्ञेन के प्रयासरहित प्रयास का। वह विरोधाभासी शब्दों का उपयोग करता है जैसे—प्रयासरहित प्रयास, द्वारहीनद्वार या मार्गशून्य मार्ग।

ज्ञेन हमेशा विरोधाभासी शब्द का तुरंत उपयोग करता है, तुम्हें एक संकेत देने के लिए कि ध्यान की प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक होने वाली है, एकाकी सीधी रेखा की भांति नहीं। विपरीत का इनकार नहीं बरन उसे अवशोषित कर लेना है। विपरीत को अलग नहीं हटा रखना है बरन उसका उपयोग कर लेना है। अलग हटा रखने पर वह हमेशा तुम पर एक बोझ बना रहेगा। अलग कर देने पर वह तुम्हारे आसपास लटका रहेगा। उसका उपयोग न करके तुम बहुत कुछ चूक जाओगे।

ऊर्जा रूपांतरित करके उपयोग की जा सकती है। और तब, उसका उपयोग करके तुम अधिक ऊर्जावान और अधिक जीवंत बन जाओगे। विपरीत को आत्मसात कर लेना है, तब प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक हो जाती है।

प्रयासशून्यता का अर्थ है: कुछ न करते, अक्रिया—अकर्म। प्रयास का अर्थ है: बहुत करना, क्रियाएं, कर्म। ध्यान में दोनों का होना जरूरी है। बहुत प्रयास करो, लेकिन कर्ता मन बनो—तब तुम दोनों को उपलब्ध हुए। संसार से गुजरो लेकिन संसार के हिस्से मत बनो। संसार में जीओ, लेकिन संसार को अपने भीतर मत सक्रिय होने दो।

तब विरोधाभास को आत्मसात कर लिया गया।...

और यही है जो मैं कह रहा हूँ।

‘सक्रिय-ध्यान’ एक विरोधाभास है। ‘सक्रिय’ का अर्थ है: प्रयास, बहुत प्रयास, पूर्ण प्रयास। और ध्यान का अर्थ है: मौन, प्रयासशून्यता, अक्रिया। तुम इस ध्यान-विधि को द्वन्द्वात्मक-विधि कह सकते हो।²

सक्रिय-ध्यान (डाइनैमिक मेडिटेशन) के लिए निर्देश

प्रथम चरण: दस मिनट

ना क से तेजी से श्वास भीतर लें और बाहर छोड़ें। श्वास भीतर लेने और बाहर छोड़ने—दोनों पर जोर लगाएं और उन्हें अराजक बना रहने दें। श्वास फेफड़ों में गहराई से जानी चाहिए। श्वास लेने और छोड़ने में तेजी लाएं, लेकिन निश्चित रहे कि श्वास गहरी बनी रहे। इसे यथाशक्ति अपनी अधिकतम समग्रता से करें—बिना अपने शरीर को तनावपूर्ण बनाये और पक्का कर लें कि तुम्हारे कंधे और तुम्हारा गला शिथिल अवस्था में हैं। श्वास जारी रखें जब तक आप श्वास ही श्वास न हो जाएं; श्वास को अराजक और अस्तव्यस्त बना रहने दें। अर्थात् श्वास न लयबद्ध हो और न ही किसी पूर्वनिर्धारित नियम पर

आधारित हो। एक बार तुम्हारी ऊर्जा प्रवाहमान हो जाए फिर वह शरीर को भी एक गति देने लगेगी। इन शारीरिक गतियों को होने दें, इन्हें और अधिक ऊर्जा निर्मित करने में सहायक होने दें। अपने हाथों और शरीर को प्राकृतिक रूप से गति करने दें ताकि वे ऊर्जा के उठने में सहयोगी बन सकें। ऊर्जा को बढ़ता हुआ अनुभव करें। पहले चरण में अपने को ढीला मत छोड़ें और अभ्यास को जरा भी धीमा मत होने दें।

दूसरा चरण: दस मिनट

अपने शरीर का अनुगमन करें। अपने शरीर को स्वतंत्रता दें ताकि वह जो कुछ चाहे अभिव्यक्त कर सके... विस्फोट हो जाए... अपने शरीर को आविष्ट हो जाने दें। जो कुछ भी भीतर से बाहर फेंकना हो उसके प्रति शिथिल हो जाएं। पूरी तरह से पागल हो जाएं... गाएं, चीखें, हंसें, चिल्लाएं, रोएं, कूदें, कपें, नाचें, हाथ-पैर चलाएं और शरीर को सब दिशाओं में गति करने दें। शुरू में थोड़ा-सा अभिनय प्रक्रियाओं को प्रवाह देने में सहायक होता है। जो घटित हो रहा है उसमें अपने मन को दखल डालने न दें। स्मरण रखें कि आप अपने शरीर के साथ समग्रता से गतिमय हैं।

तीसरा चरण: दस मिनट

कंधे और गले को ढीला रखते हुए

अपने दोनों हाथ पूरी तरह से तान कर ऊपर उठाएं, कोहनियां लचीली बनी रहें। दोनों हाथ ऊपर उठाए हुए हूँ!...हूँ!...हूँ! मंत्र का जोरों से उच्चार करते हुए बारबार ऊपर उछलें, नीचे आएँ। ‘हूँ’ का उच्चार अधिकतम गहरा हो और वह आपके नाभि से उठना चाहिए। हर बार जब आप नीचे आते हैं तब पैर के तलवे और एड़ी को धीमे से जमीन को छूने दें और उसी समय ‘हूँ’ की तीव्र ध्वनि को काम-केंद्र पर गहराई से चोट करने दें। इस चरण में अपनी पूरी शक्ति लगाएं; कोई शक्ति पीछे शेष न बचने दें।

चौथा चरण: पंद्रह मिनट

रुक जाएं। जहां भी हैं, जैसे भी हैं बिलकुल जम जाएं। शरीर को जरा भी व्यवस्थित न करें। जरा-सी खांसी, एक भी गति, कोई भी हलन-चलन ऊर्जा को क्षीण करेगी और अब तक की मेहनत को खराब करेगी। तुम्हें जो भी घटित हो रहा है उसके साक्षी बनीं।

पांचवां चरण: पंद्रह मिनट

उत्सव मनाएं। संगीत और नृत्य के साथ अपने अंतः के अहोभाव को बाहर अभिव्यक्त करें। फलित हुई जीवंतता को दिन भर की अपनी चर्चा में फैलने दें।³

स्वयं को नया जन्म देना

सहायक संकेत

सक्रिय ध्यान की मेरी पद्धति श्वास के प्रयोग से शुरू होती है, क्योंकि श्वास की गहरी जड़ें तुम्हारे अंतःकेंद्र में हैं। शायद तुमने इस बात पर ध्यान न दिया हो, लेकिन यदि तुम अपनी श्वास को बदलते हो, तो तुम कई चीजें भीतर बदल सकते हो। यदि तुम सावधानी से अपनी श्वास का निरीक्षण करो तो तुम पाओगे कि जब तुम क्रोधित हो तब तुम्हारे श्वास की एक खास लय है। जब तुम प्रेम में होते हो तब एक बिल्कुल ही भिन्न लय तुम्हारे श्वास की होती है। जब तुम विश्राम में होते हो तब भिन्न ढंग से श्वास लेते हो; जब तुम तनाव में होते हो तब भिन्न ढंग से श्वास लेते हो। विश्राम की अवस्था में चलने वाली श्वास की लय के साथ-साथ तुम क्रोधित नहीं हो सकते। यह असंभव है।

जब तुम कामोन्माद से भर उठते हो तब तुम्हारी श्वास बदल जाती है। यदि तुम श्वास को बदलने न दो तो तुम्हारी कामोत्तेजना स्वतः ही शांत हो जाएगी। इसका अर्थ है कि तुम्हारे मन की अवस्था के साथ श्वास की लय का गहरा संबंध है। यदि तुम अपनी श्वास बदल लो तो तुम अपने मन की अवस्था को भी बदल सकते हो। या यदि तुम अपने मन की अवस्था को बदल लो तो श्वास अपने से

बदल जाएगी।

इसलिए मैं श्वास से शुरू करता हूँ और इस ध्यान विधि के पहले चरण में दस मिनट के अराजक श्वास-प्रश्वास के लिए कहता हूँ। अराजक श्वास से मेरा मतलब है—गहरी, तेज और प्रबल श्वास-प्रश्वास—बिना किसी लयबद्धता के—बस श्वास भीतर खींचना और बाहर फेंकना, भीतर खींचना और बाहर फेंकना—अधिक से अधिक गहरी, प्रबल और सप्राण। भीतर खींचें—बाहर फेंकें।

यह अस्तव्यस्त श्वास-प्रश्वास तुम्हारे भीतर की दमन की व्यवस्था में उथल-पुथल पैदा करने के लिए है। जो भी तुम हो वह तुम एक खास प्रकार के श्वसन के ढाँचे के कारण हो। एक बच्चा खास ढंग से श्वास लेता है। यदि तुम काम-वासना से भयभीत हो तो तुम एक खास ढंग से श्वास लोगे। तब तुम गहराई से श्वास नहीं ले सकते क्योंकि प्रत्येक गहरी श्वास तुम्हारे काम-केंद्र पर चोट करती है। यदि तुम भयभीत हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते। भय में श्वास उथली हो जाती है।

यह अराजक श्वास-प्रश्वास तुम्हारे अतीत के समस्त ढाँचों को तोड़ने के लिए है। तुमने अपने आप को जैसा निर्मित किया है, उसे यह अराजक श्वास नष्ट कर देने वाली है। यह अस्तव्यस्त श्वास-प्रश्वास तुम्हारे भीतर अराजकता पैदा करती है क्योंकि बिना अराजकता पैदा हुए तुम अपने दमित मनोवर्गों और

भाववर्गों को विसर्जित नहीं कर सकते। और वे भावावेग अब तो शरीर तक में फैल गए हैं।

तुम शरीर और मन—ऐसे दो नहीं हो; तुम देह-मन, मनो-शारीरिक हो। तुम एक साथ दोनों हो। इसलिए जो भी तुम्हारे शरीर के साथ किया जाता है वह तुम्हारे मन तक पहुँच जाता है और मन के साथ जो कुछ किया जाता है वह शरीर तक पहुँच जाता है। शरीर और मन एक ही सत्ता के दो छोर हैं।

दस मिनट के लिए किया गया अराजक श्वसन विस्मयकारी है। लेकिन उसे अराजक होना चाहिए। यह कोई प्राणायाम, योग की कोई श्वसन प्रक्रिया नहीं है। यह श्वास-प्रश्वास के माध्यम से मात्र एक अराजकता पैदा करना है। और अनेक कारणों से यह श्वसन अराजकता पैदा करती है।

गहरी और तेज श्वास तुम्हें और अधिक ऑक्सीजन देती है। शरीर में अधिक ऑक्सीजन आने से तुम अधिक जीवंत और आदिम, पशुवत सरल हो जाते हो। पशु जीवंत होते हैं और मनुष्य आधा-मृत आधा-जीवित है। तुम्हें पुनः पशुवत जीवंत और सरल बना देना होगा। केवल तभी कोई उच्चतर आयाम तुममें विकसित हो सकता है।

यदि तुम केवल आधे ज़िंदा हो, तब तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। तो यह अराजक श्वास-प्रश्वास तुम्हें पुनः पशुवत बना देगी: जीवंत, स्पंदित, प्राणवान—खून में ज्यादा

ऑक्सीजन, जीव कोशाणुओं में ज्यादा ऊर्जा। तुम्हारे देह कोशाणु ज्यादा जीवंत हो उठेंगे। यह अधिक ऑक्सीजनेशन देह-विद्युत के निर्माण में सहायक है—या तुम इसे जैविक-ऊर्जा कह सकते हो। जब शरीर में अधिक देह-विद्युत है तब तुम भीतर गहराई में उतर सकते हो, स्वयं के पार जा सकते हो। यह ऊर्जा तुम्हारे भीतर कार्य करेगी।

शरीर के अपने विद्युत स्रोत हैं। यदि तुम उन पर अधिक श्वास-प्रश्वास और अधिक ऑक्सीजन से चोट करो तो ये ऊर्जा स्रोत बहने लगते हैं। और यदि तुम सच में ही जीवंत हो उठते हो तब तुम एक शरीर न रहे। तुम ज्यादा जीवंत होते हो तो तुम्हारे भीतर ज्यादा ऊर्जा बहती है उतना ही तुम स्वयं को कम शरीरिक अनुभव करते हो। तुम स्वयं को ज्यादा ऊर्जा और कम पदार्थ की तरह अनुभव करते हो।

और जब कभी यह घटता है कि तुम ज्यादा जीवंत होते हो, तो उन क्षणों में तुम कम देहाभिमुख होते हो। काम-क्रीड़ा का इतना आकर्षण है, उसका एक कारण यह भी है: कि यदि तुम काम-क्रीड़ा में समग्ररूप से सक्रिय हो, गतिमान हो, समग्ररूप से प्राणवान हो तब तुम एक देह नहीं रह जाते—ऊर्जा मात्र हो जाते हो। इस ऊर्जा को अनुभव करना, इसके साथ जीना बहुत जरूरी है यदि तुम शरीर और मन के पार जाना चाहते हो।

मेरे सक्रिय-ध्यान की इस विधि में दूसरा चरण है रेचन का। मैं तुम्हें सचेतन रूप से पागल हो जाने के लिए कहता हूँ।

जो भी तुम्हारे मन में आता है—जो कुछ भी—उसे स्वयं अभिव्यक्त होने दो, इसमें सहयोग करो। कोई प्रतिरोध नहीं—आवेगों का एक सहज प्रवाह।

यदि तुम चीखना चाहो तो चीखो। उसके साथ सहयोग करो। एक गहरी चीख, एक परिपूर्ण चीख जिसमें तुम्हारा पूरा अस्तित्व आबद्ध हो जाता है—यह बहुत स्वास्थ्यप्रद है, यह गहनरूप से थेराप्यूटिक है। अनेक बातें, अनेक बीमारियाँ मात्र इस समग्र चीख के साथ विसर्जित हो जाएंगी। यदि चीख परिपूर्ण है तो तुम्हारा समग्र अस्तित्व उसमें संलग्न हो जाएगा।

तो दस मिनट तक चीखकर, चिल्लाकर, रोक, हंसकर, नाचकर उछल-कूद कर—सब प्रकार की सनकों से अपने आपको अभिव्यक्त करें। कुछ दिनों में आपको अनुभव में आ जाएगा कि यह क्या होता है।

शुरू-शुरू में यह बलपूर्वक, सप्रयास या अभिनय तक भी हो सकता है। हम इतने नकली हो गए हैं कि हम से कुछ भी प्रामाणिक या वास्तविक होना संभव नहीं है। हम हंसे नहीं हैं, हम रोए नहीं हैं, हम प्रामाणिकता से चीखे भी नहीं हैं। हमारा सब कुछ एक दिखावा, एक मुखौटा मात्र है। इसलिए जब तुम इस विधि का अभ्यास शुरू करते हो—तो पहले यह बलपूर्वक ही होगा। प्रयास की जरूरत पड़ सकती है; अभिनय भी हो सकता है। इसकी चिंता न करें। प्रयोग जारी रखें। शीघ्र ही तुम उन स्रोतों का स्पर्श करोगे,

जहां तुमने बहुत-सी बातें दमन करके रखी हुई हैं। तुम उन स्रोतों से सम्पर्क करोगे, और एक बार वे बाहर निकल जाएं तो तुम निर्भर अनुभव करोगे। एक नया जीवन तुममें आएगा; एक नया जन्म घटित होगा।

यह निर्भर होना आधारभूत है और इसके बिना, आदमी जैसा है, उसे ध्यान नहीं हो सकता। मैं अपवादों की बात नहीं कर रहा हूँ। वे असंगत हैं। इस दूसरे चरण के साथ, जब दमित आवेग बाहर फेंक दिए जाते हैं, तुम खाली हो जाते हो। और यही अर्थ होता है खाली होने का: समस्त दमनों से खाली हो जाना। इस खालीपन में कुछ किया जा सकता है। रूपांतरण घटित हो सकता है; ध्यान घटित हो सकता है।

फिर तीसरे चरण में मैं 'हू' के उच्चारण का उपयोग करता हूँ। अतीत में कई प्रकार की ध्वनियों का उपयोग किया गया है। प्रत्येक ध्वनि का एक विशेष प्रभाव है। उदाहरण के लिए हिंदू लोग 'ओम्' की ध्वनि का उपयोग करते रहे हैं। यह तुम्हारे लिए परिचित हो सकता है। लेकिन मैं 'ओम्' का सुझाव नहीं दूंगा। ओम् हृदय केंद्र पर चोट करता है, लेकिन अब मनुष्य हृदय में केंद्रित नहीं रह गया है। अब ओम् की चोट उस द्वार पर चोट होगी जिस घर के भीतर कोई नहीं रहता।

सूफियों ने 'हू' का उपयोग किया है, और यदि तुम जोर से 'हू' कहो, तो यह गहरे में तुम्हारे काम-केंद्र तक जाता है। इसलिए इस ध्वनि का उपयोग किया गया है तुम्हारे भीतर चोट करने के लिए। जब

तुम रिक्त और खाली हो गए हो, तब यह ध्वनि तुम्हारे भीतर गति कर सकती है।

इस ध्वनि का भीतर प्रवाहित होना तभी संभव है जब तुम खाली हो गए हो। यदि तुम दमित आवेगों से भरे हो, तो कुछ भी घटित न होगा। और कभी-कभी तो किसी मंत्र या ध्वनि का उच्चारण हानिप्रद भी हो सकता है, यदि तुम दमित आवेगों से भरे हुए हो। दमित आवेगों की प्रत्येक तरह इस ध्वनि के मार्ग को बदल देगी और अंतिम परिणाम कुछ ऐसा हो सकता है जिसकी तुमने कल्पना भी न की हो, कभी अपेक्षा भी न की हो, कभी चाहा भी न हो। एक खाली मन चाहिए, तभी तुम एक मंत्र का उपयोग कर सकते हो।

इसलिए व्यक्ति जैसा है, उसे मैं कभी किसी मंत्र का सुझाव नहीं देता। पहले रेचन की प्रक्रिया होनी चाहिए। पहले दो चरणों को पूरा किए बिना इस 'हूँ' मंत्र का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए। प्रथम दो के बिना इसे कभी नहीं करना चाहिए। केवल तीसरे चरण में (दस मिनट के लिए) इस 'हूँ' का उपयोग करना चाहिए—जितना संभव हो सके उतने ज्यादा जोर से, अपनी पूरी शक्ति को इसमें लगाते हुए। इस ध्वनि से अपनी ऊर्जा पर चोट करें। और जब तुम दूसरे चरण के इस रेचन द्वारा खाली हुए हो, तब यह 'हूँ' का उच्चारण तुम्हारी गहराई में जाता है और तुम्हारे काम-केंद्र पर चोट करता है।

काम-केंद्र पर दो तरह से चोट की जा सकती है। पहला तरीका प्राकृतिक है। जब कभी तुम विपरीत यौन के किसी व्यक्ति से

आकर्षित होते हो, तब काम-केंद्र पर बाहर से चोट पड़ती है। और वह चोट भी एक सूक्ष्म तरंग है। एक पुरुष किसी स्त्री के प्रति आकर्षित होता है, या कि एक स्त्री किसी पुरुष के प्रति आकर्षित होती है। क्यों? क्या है पुरुष के भीतर या क्या है स्त्री के भीतर जिससे कि यह आकर्षण घटित होता है? एक पॉजिटिव या एक निगेटिव विद्युत उन्हें चोट करती है, उसकी सूक्ष्म तरंगें। वास्तव में वह सूक्ष्म ध्वनि तरंग ही है। उदाहरण के लिए, तुमने शायद अवलोकन किया हो कि पक्षी काम-आमंत्रण के लिए कुछ ध्वनि का उपयोग करते हैं। उनके अनेक गीत यौनगत होते हैं। वे बारंबार एक दूसरे को कुछ विशिष्ट ध्वनियों द्वारा चोट कर रहे हैं। ये ध्वनियाँ विपरीत यौन के पक्षियों के काम-केंद्र पर चोट करती हैं।

विद्युत की सूक्ष्म तरंगें बाहर से तुम पर चोट कर रही हैं। जब बाहर से तुम्हारे काम-केंद्र पर चोट पड़ती है, तब तुम्हारी ऊर्जा बाहर की ओर बहना शुरू कर देती है—दूसरे व्यक्ति की ओर, तब फलित होगा प्रजनन, दूसरे का जन्म; कोई दूसरा व्यक्ति तुमसे जन्म पाएगा।

'हूँ' उसी काम-ऊर्जा के केंद्र पर चोट करता है, लेकिन भीतर से। और जब काम-केंद्र पर भीतर से चोट पड़ती है, तब ऊर्जा भीतर ही प्रवाहित होने लगती है। यह ऊर्जा का भीतरी प्रवाह तुम्हें पूरी तरह से बदल देता है। तुम रूपांतरित हो जाते हो: तुम स्वयं को नया जन्म देते हो। तुम केवल तभी रूपांतरित होते हो, जब तुम्हारी ऊर्जा

बिल्कुल विपरीत आयाम में प्रवाहित होने लगती है। अभी तो वह बाहर की ओर प्रवाहित हो रही है, तब वह भीतर प्रवाहित होने लगती है। अभी तो वह नीचे की ओर बह रही है, लेकिन तब वह ऊपर की ओर बहने लगती है। यह ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन ही कुंडलिनी के नाम से जाना जाता है। तुम इसे अपने मेरुदंड में वास्तव में बहता हुआ अनुभव करोगे, और जितने ज्यादा ऊंचे यह भीतर बहती है, उतने ही ज्यादा ऊंचे तुम भी साथ-साथ गति करते हो। जब यह ऊर्जा ब्रह्मरंध्र पर पहुंचती है—तुम्हारे अंतिम केंद्र पर: सिर के ऊपर स्थित सातवें केंद्र पर—तब तुम मनुष्य के संभावित परम शिखर पर हो।

तीसरे चरण में तुम्हारी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए मैं 'हूँ' का एक वाहन की तरह उपयोग करता हूँ।

ये प्रथम तीन चरण रेचनकारी हैं। वे ध्यान नहीं हैं, लेकिन ध्यान के लिए तैयारी हैं। वे छलांग के लिए 'तैयार होना' हैं, वे स्वयं छलांग नहीं हैं।

चौथा चरण छलांग है। चौथे चरण में मैं तुम्हें बिल्कुल रुक जाने के लिए कहूँगा। जब मैं कहूँ, "रुक जाओ", तब बिल्कुल थिर हो जाओ। बिल्कुल ही कुछ भी मत करना क्योंकि यदि तुम कुछ भी करते हो तो वह एक विक्षेप हो जायेगा और तुम असली बात ही चूक जाओगे। कुछ भी—एक जरा-सी खांसी या छींक—और तुम सारी बात चूक जाओगे क्योंकि मन विक्षेपित हो गया होगा। तब ऊर्ध्वगामी प्रवाह रुक

जाएगा क्योंकि तुम्हारा ध्यान अन्यत्र बिखर गया।

कुछ भी मत करो। तुम मर न जाओगे। यदि छींक भी आ रही है और तुम दस मिनट के लिए न छींको, तो तुम मरोगे नहीं। यदि तुम खांसने जैसा अनुभव करते हो, यदि तुम गले में कोई खरास अनुभव करते हो और तुम कुछ भी नहीं करते, तो तुम मर जाने वाले नहीं हो। अपने शरीर को मृतवत बना रहने दो ताकि ऊर्जा ऊर्ध्वगमन कर सके।

ऊर्जा जब ऊर्ध्वगमन करती है, तब तुम ज्यादा और ज्यादा शांत और मौन होने लगते हो। मौन है ऊर्जा के ऊर्ध्वगमन की उप-उत्पत्ति और तनाव है ऊर्जा के अधोगमन की उप-उत्पत्ति। अब तुम्हारा पूरा शरीर इतना शांत और मौन हो जाएगा, मानो कि वह विलीन ही हो गया हो। तुम उसे अनुभव भी न कर पाओगे। तुम देहरहित हो गए हो। और जब तुम शांत और मौन होते हो, तब पूरा अस्तित्व मौन है क्योंकि अस्तित्व और कुछ नहीं वरन एक दर्पण है। वह तुम्हें प्रतिफलित करता है। हजारों हजार दर्पणों में वह तुम्हें प्रतिफलित करता है। जब तुम मौन हो तब सारा अस्तित्व मौन

हो गया है।

तुम्हारे मौन में मैं तुम्हें एक साक्षी मात्र हो जाने के लिए कहूँगा—एक सतत जागरूकता: कुछ न करते हुए—बस एक साक्षी बने रहना, बस अपने साथ बने रहना; कुछ भी न करते हुए—कोई गति नहीं, कोई कामना नहीं, कोई यात्रा नहीं—केवल अभी और यहाँ बने रहना, शांत और मौन, देखते हुए कि क्या हो रहा है।

यह केंद्र पर होना, स्व में होना संभव है—पहले तीन चरणों के कारण। जब तक ये प्रथम तीन चरण पूरे न हों, तुम स्व में थिर नहीं रह सकते। तुम इसके बारे में भले ही बातें किए चले जाओ, इसके बारे में सोचे चले जाओ, सपने देखते चले जाओ, परन्तु यह घटित न होगा क्योंकि तुम तैयार नहीं हो।

वर्तमान क्षण में थिर रहने के लिए ये पहले तीन चरण तुम्हें तैयार करेंगे। वे तुम्हें जागरूक बनाएंगे। यह ध्यान है। इस ध्यान में कुछ घटता है जो कि शब्दों के पार है। और एक बार यह घट जाए फिर तुम कभी भी पहले जैसा न हो पाओगे; यह असंभव है। यह एक अंतर्विकास है; यह एक अनुभव मात्र नहीं है। यह एक विकास है। 4

साक्षी बने रहो

यह एक ऐसा ध्यान है जिसमें तुम्हें सतत सचेत, जागरूक और बोधपूर्ण रहना है। चाहे जो भी तुम करो, साक्षी बने रहो। मूर्च्छा में खो मत जाओ।

सरल है मूर्च्छा में खो जाना। श्वास लेते हुए तुम साक्षी को भूल सकते हो। तुम श्वास लेने से इतना तादात्म्य कर लो कि तुम साक्षी को भूल ही जाओ। लेकिन तब तुम सार बात चूक ही जाओगे। अधिक से अधिक तेज और गहरी श्वास लो; अपनी पूरी ऊर्जा इसमें लगा दो, लेकिन फिर भी भीतर एक साक्षी बने रहो।

जो हो रहा है उसका अवलोकन करो जैसे कि तुम एक दर्शक मात्र हो—मानो कि सब कुछ किसी दूसरे व्यक्ति को घटित हो रहा हो, जैसे कि सारी घटनाएं शरीर को हो रही हैं और चैतन्य स्वयं में केंद्रित है—बस देखता हुआ।

यह साक्षी प्रथम तीन चरणों में सतत बना रहना चाहिए। और जब सब कुछ रुक जाता है और चौथे चरण में जब तुम पूर्णतः निष्क्रिय हो गए हो—जम गए—तब यह जागरूकता अपने चरम शिखर पर होगी। 5

यह सक्रिय-ध्यान का अति प्रिय सहयोगी ध्यान है। इसमें पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं।

प्रथम चरण : पंद्रह मिनट

शरीर को ढीला छोड़ दें और पूरे शरीर को कंपने दें। अनुभव करें कि ऊर्जा पांव से उठकर ऊपर की ओर बढ़ रही है। सब ओर से नियंत्रण छोड़ दें और कंपना ही हो जाएं। आपकी आंखें खुली भी रह सकती हैं और बंद भी।

कुंडलिनी ध्यान

दूसरा चरण : पंद्रह मिनट

नाचें—जैसा आपको भाये, और शरीर को, जैसा वह चाहे, गति करने दें।

तीसरा चरण : पंद्रह मिनट

आंखें बंद कर लें और निश्चल बैठ जाएं या खड़े रहें... भीतर या बाहर जो भी हो, उसके साक्षी बने रहें।

चौथा चरण : पंद्रह मिनट

आंखें बंद रखे हुए ही, लेट जाएं और निश्चल हो रहें।

जब तुम कुंडलिनी ध्यान करो, तो कंपन को होने दो, उसे करो मत। शांत खड़े हो जाओ, कंपन को उठता महसूस करो और जब तुम्हारा शरीर थोड़ा कंपने लगे, तो उसको सहयोग करो, परंतु उसे स्वयं से मत करो। उसका आनंद लो, उससे आह्लादित होओ, उसे आने दो, उसे ग्रहण करो, उसका स्वागत करो, परंतु उसकी इच्छा मत करो।

यदि तुम इसे आरोपित करोगे तो यह एक व्यायाम बन जाएगा, एक शारीरिक व्यायाम बन जाएगा। फिर कंपन तो होगा लेकिन बस ऊपर-ऊपर, वह तुम्हारे भीतर प्रवेश नहीं करेगा। भीतर तुम पाषाण की

भांति, चट्टान की भांति ठोस बने रहोगे: नियंत्रक और कर्ता तो तुम ही रहोगे, शरीर बस अनुसरण करेगा। प्रश्न शरीर का नहीं है—प्रश्न हो तुम।

जब मैं कहता हूँ, कंपो, तो मेरा अर्थ है तुम्हारे ठोसपन और तुम्हारे पाषाणवत प्राणों को जड़ों तक कंप जाना चाहिए ताकि वे जलवत, तरल होकर पिघल सकें, प्रवाहित हो सकें। और जब पाषाणवत प्राण तरल होंगे तो तुम्हारा शरीर अनुसरण करेगा। फिर कंपाना नहीं पड़ता, बस कंपन रह जाता है। फिर कोई उसे करने वाला नहीं है, वह बस हो रहा है। फिर कर्ता नहीं रहा। ६

ओशो ध्यान चिकित्सा-समूह

ध्या न की पुरानी सभी विधियां पूर्व में विकसित की गई थीं। उनमें पाश्चात्य मनुष्य को ध्यान में नहीं रखा गया है...। मैं ऐसी विधियां निर्मित कर रहा हूँ जो केवल पूर्वी मनुष्य के लिए ही नहीं, बल्कि हर मनुष्य के लिए हैं—वह चाहे पूर्वी हो और चाहे पाश्चात्य।

अपना शरीर छोड़ने से पहले, अंतिम 18 महीनों में ओशो ने “ध्यान चिकित्सा-समूहों” की एक नई शृंखला निर्मित की। अपूर्व रूप से सरल और प्रभावकारी इन चिकित्सा-समूहों में भाग लेने वाले साधकों का परस्पर संबंध तो न्यूनतम ही रहता है, लेकिन समूह की ऊर्जा हर साधक को अपनी-अपनी प्रक्रिया में गहरे जाने में सहयोग करती है।

मिस्टिक रोज़ का प्रतीक एक इंगित है कि यदि व्यक्ति उस बीज को संभाल कर रखे जिसे लेकर वह पैदा हुआ है, उसे सही भूमि और सही वातावरण दे, उसे सही ऊर्जा दे, और उस सही दिशा में चले जहां बीज अंकुरित हो सके—तो उसके परम विकास को “मिस्टिक रोज़” के, रहस्यदर्शी गुलाब के प्रतीक में अभिव्यक्त किया गया है—जब तुम्हारे प्राण अपनी सारी पंखुड़ियों को खोलकर खिल जाते हैं और अपनी सुवास बिखेर देते हैं।

“मिस्टिक रोज़” ध्यान

जो लोग गहरे जाना चाहते हैं, उनके लिए मैंने एक नई ध्यान विधि निर्मित की है। पहला चरण होगा हंसना—तीन घंटे तक लोग बिना किसी कारण के हंसें। और जब भी हंसी चुकने लगे वे फिर जोर से कहें “या-हू”। और हंसी लौट आएगी। तीन घंटे तक गहरे जाने के बाद तुम हैरान होओगे कि तुम्हारे प्राणों पर धूल की कितनी परतें जमी हुई हैं। यह हंसी तलवार की तरह उन्हें एक वार में

काट डालेगी। सात दिन तक लगातार, तीन घंटे रोज़...तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुम्हारे भीतर कितना रूपांतरण होगा।

और फिर दूसरा चरण आंसुओं का है। पहला चरण वह सब कुछ साफ कर डालता है जो तुम्हारी हंसी में बाधा देता है—पुरानी मनुष्यता के सब निषेध, सब दमन; पहला चरण इन सबको काट डालता है। तुम्हारे भीतर एक नई अवस्था

ले आता है। लेकिन अपने अंतस के मंदिर तक पहुंचने के लिए तुम्हें अभी भी कुछ कदम चलने होंगे, क्योंकि तुमने इतनी उदासी, इतनी निराशा, इतनी चिंताओं और इतने आंसुओं को दबाया है—वे सब मौजूद हैं, और तुम्हें घेरकर तुम्हारे सौंदर्य, तुम्हारे प्रसाद, तुम्हारे आनंद को नष्ट कर रहे हैं।

प्राचीन मंगोलिया में एक पुरानी धारणा थी कि हर जन्म में जिस भी पीड़ा को हम

दबाते हैं...और पीड़ा दबाई जाती है, क्योंकि पीड़ा कोई नहीं चाहता। तुम पीड़ित होना नहीं चाहते, इसलिए उसको दबा लेते हो, तुम बच जाते हो, तुम कहीं और देखने लगते हो। लेकिन पीड़ा बनी रहती है। और मंगोलियन धारणा थी—मैं भी उससे सहमत हूँ—कि जन्मों-जन्मों की पीड़ा तुममें इकट्ठी होती जाती है; और यह पीड़ा का लगभग एक कठोर कवच बन जाती है।

यदि तुम भीतर जाओ तो तुम्हें दोनों चीजें मिलेंगी, हंसी और आंसू। इसीलिए कई बार ऐसा होता है कि हंसने से, अचानक तुम्हारे आंसू भी साथ-साथ आने लगते हैं—अजीब बात है, क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं कि वे विपरीत हैं। जब तुम आंसुओं से भरे होते हो तो वह हंसने का समय नहीं है, या जब तुम हंस रहे हो तो वह आंसुओं के लिए ठीक मौसम नहीं है। लेकिन अस्तित्व धारणाओं और विचारधाराओं में विश्वास नहीं करता; अस्तित्व तुम्हारी सब धारणाओं का अतिक्रमण करता है, जो द्वैतवादी हैं, जो द्वैत पर आधारित हैं। दिन और रात, हंसी और आंसू, पीड़ा और आनंद सब एक साथ आते हैं।

जब कोई व्यक्ति अपनी अंतर्तम सत्ता में पहुंचता है तो वह पाएगा कि पहली तह हंसी की है और दूसरी तह पीड़ा की, आंसुओं की है।

तो सात दिन के लिए तुम्हें स्वयं को अकारण ही रोने और चीखने देना है—आंसू निकलने को तैयार ही बैठे हैं।

तुम उन्हें रोके हुए हो; बस उन्हें रोको मत। और जब भी तुम्हें लगे कि वे नहीं निकल रहे, तो कहो, “या-बू”!

ये शुद्ध ध्वनियाँ हैं, जिनका तुम्हारी सारी हंसी और तुम्हारे सारे आंसुओं को निकालकर और तुम्हें पूरी तरह स्वच्छ करने के लिए एक विधि की तरह उपयोग किया जाता है, ताकि तुम फिर से एक निर्दोष बच्चे बन सको।

अंततः, तीसरा चरण है साक्षित्व—शिखर पर बैठा द्रष्टा। अंततः, हंसी और आंसुओं के बाद केवल एक साक्षी मौन बचता है। साक्षी स्वतः अपने आप में निरोधक गुणवाला है। जब तुम रोने के साक्षी होते हो तो वह रुक जाता है, प्रसुप्त हो जाता है। यह ध्यान हंसी और आंसुओं से पहले ही मुक्ति दिलवा देता है, ताकि तुम्हारे साक्षित्व में निरोध के लिए कुछ शेष न रहे। फिर साक्षित्व एक शुद्ध आकाश को खोल देता है। तो सात दिनों तक बस एक स्पष्टता का अनुभव करो।

यह बिलकुल मेरा ध्यान है।

तुम हैरान होओगे कि कोई ध्यान तुम्हें इतना कुछ नहीं दे सकता जितना कि यह छोटी-सी विधि। कई ध्यान विधियों में मेरा यह अनुभव रहा है कि जो करना है वह यह कि तुम्हारे भीतर से दो परतें तोड़नी हैं। तुम्हारी हंसी को दबाया गया है; तुम्हें कहा गया है, “हंसो मत, यह बड़ी गंभीर बात है।” किसी चर्च में या किसी यूनिवर्सिटी की क्लास में तुम्हें हंसने की अनुमति नहीं है...।

तो पहली परत हंसी की है, लेकिन एक

बार तुम्हारी हंसी पूरी हो जाए तो अचानक तुम स्वयं को आंसुओं और पीड़ा से भरा हुआ पाओगे। लेकिन वह भी एक बड़ी निर्भर करने वाली घटना होगी। जन्मों-जन्मों के पीड़ा और संताप मिट जाएंगे। यदि तुम इन दो परतों से मुक्ति पा सको तो तुमने स्वयं को खोज लिया।

‘या-हू’ या ‘या-बू’ शब्दों में कोई अर्थ नहीं है। ये बस विधियाँ हैं, ध्वनियाँ जो अपनी अंततः-सत्ता में प्रवेश करने के एक विशेष उद्देश्य के लिए प्रयोग की जा सकती हैं।

मैंने कई ध्यान विधियाँ खोजी हैं, लेकिन शायद यह सबसे सारभूत और बुनियादी होगी। यह पूरे संसार को आच्छादित कर सकती है...।

हर समाज ने तुम्हारे सुखों और तुम्हारे आंसुओं को रोककर बहुत नुकसान पहुंचाया है। यदि कोई वृद्ध व्यक्ति रोने लगे तो तुम कहोगे, “क्या करते हो? तुम्हें शर्म आनी चाहिए; तुम कोई छोटे बच्चे नहीं हो कि किसी ने तुम्हारा केला छीन लिया और तुम रोने लगे। दूसरा केला ले लो, लेकिन रोओ मत।”

जरा करके देखो—सड़क पर खड़े होकर और रोना शुरू कर दो और तुम्हें सांत्वना देने के लिए एक भीड़ इकट्ठी हो जाएगी: “रोओ मत! जो भी हुआ हो, भूल जाओ कि वह हुआ।” कोई नहीं जानता क्या हुआ है, कोई तुम्हारी मदद नहीं कर सकता, लेकिन सभी कोशिश करेंगे—“रोओ मत!” और इसका कारण यह है कि यदि तुम रोते चले जाओ तो वे

भी रोने लगेंगे, क्योंकि वे भी आंसुओं से भरे हुए हैं। वे आंसू आंखों के बहुत करीब हैं।

और चीखना, रोना, हंसना स्वास्थ्यप्रद है। अब वैज्ञानिक भी यह पता लगा रहे हैं कि चीखना, रोना और हंसना केवल शारीरिक रूप से ही नहीं मानसिक रूप से भी स्वास्थ्यप्रद हैं। ये चीजें तुम्हें स्वस्थ-चित्त रखने में बहुत सक्षम हैं। पूरी की पूरी मनुष्यता मानसिक रूप से थोड़ी असंतुलित हो गई है क्योंकि कोई भी पूरी तरह से नहीं हंसता, क्योंकि चारों ओर के लोग कहेंगे, “क्या कर रहे हो? क्या तुम कोई बच्चे हो? इस उम्र में? तुम्हारे बच्चे क्या सोचेंगे? शांति रखो!”

यदि तुम बिना किसी कारण के, बस एक व्यायाम की तरह, एक ध्यान की तरह रोओ और चीखो...तो कोई विश्वास ही नहीं करेगा। आंसुओं को कभी भी ध्यान की तरह स्वीकार नहीं किया गया है। और मैं तुमसे कहता हूँ कि वे न केवल ध्यान हैं, वरन औषधि भी हैं। तुम्हारी आंखों की क्षमता भी बेहतर हो जाएगी और तुम्हें बेहतर अंतर्दृष्टि भी मिलेगी।

मैं तुम्हें एक बहुत बुनियादी विधि दे रहा हूँ, जो ताजी है और पहले कभी उसका उपयोग नहीं हुआ। और निस्संदेह, यह विश्वव्यापी होने वाली है क्योंकि इसके प्रभावों को कोई भी देख लेगा कि व्यक्ति अधिक युवा हो गया है, अधिक प्रेमपूर्ण हो गया है, अधिक प्रसादपूर्ण हो गया है; वह अधिक लोचपूर्ण और कम दुराग्रही हो गया है; वह अधिक आनंदित

और उत्सवपूर्ण हो गया है।

इस संसार को बड़ी जरूरत है कि अतीत के सारे निषेधों से हृदय की अच्छी तरह सफाई हो जाए। और हंसी व आंसू दोनों काम कर सकते हैं। आंसू तुम्हारे भीतर छिपी सारी पीड़ा को बाहर निकाल देंगे और हंसी उस सब को ले जाएगी जिसने तुम्हारे आनंद को रोका हुआ है। एक बार तुम्हें कला आ जाए तो तुम बहुत हैरान होओगे: अभी तक यह बात क्यों नहीं बताई गई? इसका एक कारण है: किसी ने कभी चाहा ही नहीं कि मनुष्यता को गुलाब के फूल जैसी ताजगी और सुवास और सौंदर्य मिले।

इस प्रवचनमाला को मैंने “मिस्टिक रोज” कहा है—रहस्यदर्शी गुलाब। “या-हू” मंत्र है तुम्हारे केंद्र में मिस्टिक रोज को ले आने के लिए, तुम्हारे केंद्र को खोलने और तुम्हारी सुवास को मुक्त करने के लिए। और मिस्टिक रोज तुम्हारी अंतः-सत्ता की परितृप्ति है।

निर्देश

तीन चरणों में यह इक्कीस दिवसीय ध्यान अकेले भी किया जा सकता है।

1. हंसी के लिए निर्देश

प्रामाणिक हास्य किसी विषय-वस्तु के प्रति नहीं होता। यह तुममें वैसे ही उठता है जैसे किसी वृक्ष में कोई फूल खिलता है।

न इसका कोई कारण होता है, न कोई तार्किक व्याख्या। यह रहस्यमय है, मिस्टीरियस है; इसीलिए “मिस्टिक रोज” का प्रतीक लिया गया है।

सात दिन तक “या-हू!” के उदघोष से प्रारंभ कर बिना किसी कारण के पैंतालीस मिनट तक हंसते रहें। आप बैठ सकते हैं या लेट सकते हैं। कुछ लोग पाते हैं कि पीठ के बल लेटना पेट की मांस-पेशियों को ढीला छोड़ने में सहायक होता है और ऊर्जा के बहाव को आसान करता है। कुछ लोग पाते हैं कि एक चादर ओढ़ लेने से, या पैरों को ऊपर हवा में उठा लेने से उनमें छिपा हंसता, खिलखिलाता बच्चा बाहर आ जाता है। जोर है अपने अंदर के हास्य को खोजने पर, ऐसा हास्य जो अकारण है, इसलिए सामान्यतः आपकी आंखें बंद रहती हैं। फिर भी, और हंसी को जन्म देने के लिए अपने मित्रों को एक नजर देख लेना भी ठीक है।

अपने शरीर को हल्के-फुल्के ढंग से, अपने अंदर छिपे बच्चे की निर्दोषता और सहजता में लोटने दें, लुड़कने दें। और अपनी पूरी समग्रता से हंसें।

कभी-कभी आप शायद कोई अवरोध महसूस कर सकते हैं, जोकि सदियों से वहां हैं, आपके हास्य को अवरुद्ध किए हुए हैं। जब ऐसा हो तो “या-हू!” का उदघोष करें या जिबरिश (अनर्गल ध्वनियां) करना शुरू कर दें जब तक कि हास्य पुनः प्रारंभ न हो जाए।

“लेट-गो”: हास्य चरण के अंत में कुछ मिनट के लिए आंखें बंद कर लें और स्थिर बैठ जाएं। शरीर स्थिर रखें जैसे कि कोई मूर्ति; सारी ऊर्जा को अंदर इकट्ठा होने दें। फिर अपने शरीर को पूरी तरह शिथिल छोड़ दें और बिना किसी नियंत्रण या प्रयास के इसे पीछे गिर जाने दें। थोड़ी देर बाद पुनः बैठ जायें और पंद्रह मिनट शांत, सजग बैठे रहें।

2. रुदन के लिए निर्देश

हास्य के चुक जाने के बाद तुम स्वयं को आंसू और संताप की बाढ़ से आपूरित होता हुआ पाओगे। लेकिन वह भी बहुत निर्भार करने वाली घटना होगी। जन्मों-जन्मों के दुख और दर्द विदा हो जायेंगे। यदि तुम इन दो परतों से छुटकारा पा लो तो तुमने स्वयं को पा लिया।

दूसरे सप्ताह, धीमे-धीमे “या-बू” कहने से शुरू करके 45 मिनट के लिए रोना प्रारंभ कर दें। आप चाहें तो अपने दुख में उतरने के लिए कमरे को थोड़ा अंधेरा कर ले सकते हैं। आप बैठ सकते हैं या लेट सकते हैं। अपनी आंखें बंद कर लें और उन भावों में गहनता से डूब जायें जो आपके रोने में सहायक हों।

अपनी पूरी गहराई और समग्रता से रोएं जिससे हृदय निर्मल और निर्भार हो जाए। अनुभव करें कि आपके छिपे हुए

घावों और पीड़ाओं का बांध अचानक टूट गया है—आंसुओं की बाढ़ आ जाने दें। यदि आपको कोई अवरोध महसूस हो या थोड़ी देर रोने के बाद नींद आने लगे तो ज़िबरिश शुरू कर दें, थोड़ा शरीर को आगे-पीछे हिलाएं-डुलाएं, या कुछ बार “या-बू” कहें। आंसू तो मौजूद ही हैं, बस उन्हें रोकें मत।

“लेट-गो”: प्रतिदिन रुदन के चरण के अंत में कुछ मिनट पूर्णतया स्थिर होकर बैठें और फिर विश्रांति में धीरे से पीछे गिर जाएं। रुदन के इस सप्ताह के दौरान उस हर परिस्थिति के लिए खुले रहें जिससे आंसू आते हों। अपने को पूरी तरह खुला और ग्रहणशील बनाए रखें।

3. ‘शिखर पर बैठे द्रष्टा’ के लिए निर्देश

तीसरे सप्ताह आपके लिए जितना समय सुविधाजनक हो शांत और मौन बैठें और फिर धीमे, मधुर संगीत के साथ नृत्य करें।

आप फर्श पर बैठ सकते हैं या कुर्सी का उपयोग कर सकते हैं। अपना सिर एवं रीढ़ सीधी रखें, आंखें बंद रखें और श्वास सामान्य रहने दें।

तनावरहित और सजग, पर्वत शिखर पर खड़े साक्षी हो जाएं, जो भी गुजरे

उसके प्रति साक्षी हो जाएं। देखने की यह विधि है, जो कि ध्यान है, आप क्या देख रहे हैं वह महत्वपूर्ण नहीं है। स्मरण रखें कि विचार, भाव, शारीरिक संवेग, निर्णय आदि जो भी आएँ उसमें खो नहीं जाना है या उनके साथ तादात्म्य नहीं जोड़ लेना है।

कुछ देर शांत, मौन बैठने के बाद अपनी पसंद का कोई हल्का संगीत बजायें और नृत्य करें। शरीर को स्वतः गति करने दें और अपना साक्षीभाव कायम रखें, संगीत में खो न जाएं।²

4. कुछ सहायक संकेत-बिंदु

• पूरे इक्कीस दिनों की अवधि के दौरान अन्य रेचक ध्यान जैसे सक्रिय ध्यान या कुंडलिनी ध्यान आदि न करना बेहतर है।

• यदि आप यह ध्यान अन्य मित्रों के साथ कर रहे हैं तो ध्यान के दौरान आपस में बातचीत न करें।

• हास्य या रुदन के चरणों के दौरान बहुत से लोग क्रोध की परत से गुजरते हैं। लेकिन वहां रुक जाने की ज़रूरत नहीं है। इसे ज़िबरिश या शारीरिक हलन-चलन द्वारा निकाल दें और फिर हास्य या रुदन पर लौट आएँ।

• अपनी हंसी का उत्सव मनाएं, अपने आंसुओं का उत्सव मनाएं, अपने मौन साक्षी का उत्सव मनाएं।

अ-मन का अर्थ है—निर्विचार चैतन्य। और मन का अर्थ है—निर्विचार चैतन्य नहीं, वरन जिबरिश (अनर्गल प्रलाप)। और जब मैं तुमसे जिबरिश करने को कहता हूँ, तो मैं इतना ही कह रहा हूँ कि मन और उसके सब उपद्रवों को बाहर निकाल फेंको, ताकि पीछे तुम बच रहो—विशुद्ध, निर्मल, पारदर्शी, द्रष्टा।

नो-माइंड मेडिटेशन

मेरे प्रिय आत्मन, मैं तुम्हें एक नया ध्यान दे रहा हूँ। इसमें तीन चरण हैं।

पहला चरण है: जिबरिश। 'जिबरिश' शब्द, एक सूफी संत जब्बार के नाम से आता है। जब्बार कभी किसी भाषा का उपयोग नहीं करता था। वह सिर्फ अनर्गल और अंट-शंट ही बोलता था। फिर भी उसके हजारों शिष्य थे। वह कहता था कि तुम्हारा मन कुछ और नहीं, बस ऐसा ही

है—जिबरिश। इसे हटाकर एक तरफ रख दो, तो तुम्हें अपनी आत्मा का स्वाद मिल जाए।

जिबरिश का प्रयोग करो, होशपूर्वक पागल हो जाओ। परिपूर्ण सजगता के साथ, पूरी तरह विक्षिप्त हो जाओ, ताकि यह जो तूफान खड़ा हो गया है, तुम इस बवंडर के, इस चक्रवात के केंद्र बन जाओ। जो भी आता है, उसे आने दो; बिना यह फिक्र किए कि वह तर्कसंगत है या असंगत, सार्थक है या व्यर्थ। मन का सारा

कचरा उलीच डालो, और वह अंतर्आकाश निर्मित करो, जिसमें बुद्ध प्रगट होते हैं।

दूसरे चरण में: तूफान जा चुका, चक्रवात गया, और तुम्हें भी अपने साथ बहा ले गया। उसका स्थान, नितांत मौन और थिरता में, बुद्ध ने ले लिया। अब तुम केवल साक्षी हो—शरीर के, मन के, और जो भी घट रहा है उस सबके द्रष्टा मात्र हो।

तीसरे चरण में: मैं कहूँगा—“लेट गो”। तब तुम अपनी देह को शिथिल छोड़ देना, और उसे बिना किसी प्रयास के गिर

जाने देना। तुम्हारा मन उसमें हस्तक्षेप न करे, नियंत्रक न बने। जैसे एक अनाज से भरी थैली लुड़क जाती है, ठीक वैसे ही लुड़क जाओ।

प्रत्येक चरण ढोल की थाप के साथ प्रारंभ होगा।³

निर्देश

इस विधि को पहले सात दिन के लिए करें, इतना समय इसके प्रभावों को महसूस करने के लिए पर्याप्त होगा। लगभग चालीस मिनट जिबरिश को दें, फिर चालीस मिनट बस देखें और फिर लेट-गो, लेकिन आप चाहें तो दोनों चरणों को बीस-बीस मिनट के लिए और बढ़ा सकते हैं।

पहला चरण: जिबरिश अथवा सजग विक्षिप्तता

बैठ जाएं या खड़े हो जाएं, अपनी आंखें बंद कर लें और अनर्गल शब्दोच्चार—जिबरिश करना शुरू कर दें। जैसी चाहें ध्वनियां निकालें, लेकिन उस भाषा का और उन शब्दों का उपयोग न करें जो आप जानते हैं। आपके भीतर, जिस चीज को भी अभिव्यक्ति की जरूरत हो उसे अभिव्यक्त हो जाने दें। हर चीज बाहर निकाल दें, पूरी तरह पागल हो जाएं। होशपूर्वक पागल हो जाएं। मन

शब्दों की भाषा में सोचता है। जिबरिश इस सतत शब्दप्रवाह के ढाँचे को तोड़ने में मदद करती है। बिना अपने विचारों का दमन किए, जिबरिश के माध्यम से आप उन्हें बाहर फेंक सकते हैं।

प्रत्येक चीज की अनुमति है: गाएं, रोएं, चीखें, चिल्लाएं, गुनगुनाएं, बड़बड़ाएं। आपका शरीर जो करना चाहे उसे करने दें: उछलें, कूदें, उठें-बैठें, हाथ-पैर फेंकें, कुछ भी करें। बीच में अंतराल न आने दें। यदि आपको बोलने के लिए ध्वनियां न मिलें, तो सिर्फ ला-ला-ला-ला कहें, लेकिन चुप न रहें।

यदि आप यह ध्यान अन्य लोगों के साथ कर रहे हैं, तो न उनसे किसी प्रकार का संबंध रखें, न ही उन्हें बाधा दें। जो आपको हो रहा है उसी को जीएं, और दूसरे क्या कर रहे हैं, इसकी फिक्र न करें।

दूसरा चरण: साक्षी (विटनेसिंग)

जिबरिश के बाद, पूरी तरह शांत और मौन और शिथिल बैठ जाएं, अपनी ऊर्जा को अंदर इकट्ठी करें, विचारों को दूर और दूर होते जाने दें, स्वयं को अपने केंद्र पर गहन मौन और शांति में उतर जाने दें। आप जमीन पर बैठ सकते हैं या चाहें तो कुर्सी पर भी, परंतु सिर और रीढ़ सीधी होनी चाहिए, शरीर शिथिल हो, आंखें बंद हों और श्वास सहज व सामान्य हो।

सजग रहें, और समग्ररूपेण वर्तमान क्षण में जीएं। शिखर पर बैठे द्रष्टा की

भांति हो रहें; जो भी गुजरे उसके द्रष्टा मात्र रहें। विचार तो भविष्य या अतीत में जाने की कोशिश करेंगे। बस उन्हें थोड़ी दूरी से देखते रहें—कोई निर्णय न लें; विचारों में उलझना नहीं है। बस वर्तमान में स्थिर होना है, साक्षी बने हुए। साक्षी की प्रक्रिया ही ध्यान है, आप किसका अवलोकन कर रहे हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है। स्मरण रहे कि जो भी विचार, भावनाएं, स्मृतियां, शारीरिक संवेग या निर्णय आएँ उनमें खोना नहीं है, उनसे तादात्म्य नहीं बनाना है।

तीसरा चरण: लेट गो

जिबरिश है: सक्रिय-मन से मुक्ति के लिए; मौन है: निष्क्रिय मन से मुक्ति के लिए; और लेट-गो: समयातीत में प्रवेश के लिए है।

साक्षी के बाद, अपनी देह को बिना किसी प्रयत्न अथवा नियंत्रण के जमीन पर गिर जाने दें। लेटे हुए साक्षीभाव जारी रखें; सजग हों कि आप न तो देह हैं और न मन, कि आप दोनों से भिन्न कुछ और हैं। जैसे-जैसे आप गहरे और गहरे भीतर उतरते जाएंगे, धीरे-धीरे आप अपने केंद्र पर पहुंच जाएंगे।²

यह स्मरण रहे : अपना बचपन फिर से प्राप्त करो। बचपन को लौटा लाने की अभीप्सा सभी करते हैं, लेकिन उसे पाने के लिए करता कोई कुछ भी नहीं। अभीप्सा सभी करते हैं। लोग कहे चले जाते हैं कि बचपन तो स्वर्ग था, और कवि बचपन के सौंदर्य पर कविताएं लिखे चले जाते हैं। तो तुम्हें रोक कौन रहा है? पालो फिर से! बचपन को फिर से प्राप्त करने का यह अवसर मैं तुम्हें देता हूँ।

बॉर्न अगेन

आनंदपूर्ण हो रहो। आनंदित होना कठिन तो होगा, क्योंकि बहुत ज्यादा तुम ढांचे में ढले हुए हो। तुमने चारों ओर एक कवच ओढ़ा हुआ है, जिसे छोड़ना या उतार कर रखना मुश्किल है। न तुम नाच सकते हो, न गा सकते हो, न कूद सकते हो, न यूँ ही चीख सकते हो, न हंस और मुस्कुरा सकते हो। अगर तुम हंसना भी चाहो, तो पहले तुम चाहते हो कि कोई चीज हो जिस पर हंस सको। तुम यूँ ही नहीं हंस सकते। कोई कारण हो, तभी तुम हंस

सकते हो। कोई कारण हो, तभी तुम रो सकते हो।

ज्ञान को एक ओर रख दो, गंभीरता को परे कर दो। इन दिनों के लिए बिल्कुल हलके-फुलके हो जाओ। खोने को तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है! अगर कुछ न भी मिले तो भी खोओगे तो कुछ भी नहीं। आनंदित होने में तुम क्या खो सकते हो? लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ : तुम फिर वही नहीं रहोगे जो हो।

इसी कारण आनंदपूर्ण होने पर मेरा जोर

है। मैं तुम्हें वापस उस बिंदु पर फेंक देना चाहता हूँ जहाँ से तुमने विकसित होना बंद कर दिया था। तुम्हारे बचपन में एक ऐसा बिंदु आया था जब तुम्हारा विकास रुक गया और तुम नकली होना शुरू हो गए। हो सकता है तुम क्रोधित हुए होओ—छोटा सा बच्चा हट कर रहा है, क्रोध कर रहा है—और तुम्हारे पिता या तुम्हारी माँ ने तुमसे कहा, “क्रोध मत करो! यह अच्छा नहीं है।” तुम स्वाभाविक थे, लेकिन एक विभाजन निर्मित कर दिया गया और तुम्हारे

सामने यह चुनाव आ गया: यदि तुम स्वाभाविक होना चाहते हो तो फिर तुम्हें तुम्हारे माता-पिता का प्रेम नहीं मिलेगा।

इन आठ दिनों में मैं तुम्हें वापस उस बिंदु पर फेंक देना चाहता हूँ जहाँ तुम स्वाभाविक होने के विपरीत “अच्छे” होने शुरू हो गए। आनंदपूर्ण हो जाओ ताकि अपना बचपन फिर से पा सको। यह कठिन तो होगा, क्योंकि तुम्हें अपने मुखौटे, अपने चेहरे सब उतार कर रखने होंगे, तुम्हें अपने व्यक्तित्व को एक किनारे पर छोड़ना होगा। लेकिन याद रखो, मूल तत्व तभी स्वयं को प्रकट कर सकता है जब तुम्हारा व्यक्तित्व वहाँ न हो, क्योंकि तुम्हारा व्यक्तित्व एक कारागृह बन गया है। उसे एक ओर हटा दो! यह पीड़ादायी होगा, लेकिन यह पीड़ा झेलने जैसी है क्योंकि उससे तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। और कोई भी जन्म बिना

पीड़ा के नहीं होता। यदि सच में ही तुम पुनरुज्जीवित होना चाहते हो तो यह जोखिम उठा लो।

निर्देश

बॉर्न अगेन के लिए ओशो का मार्गदर्शन इस प्रकार है:

पहला चरण:

पहले एक घंटे के लिए बच्चे जैसा व्यवहार करो, अपने बचपन में प्रवेश कर जाओ। जो भी तुम करना चाहते थे, करो—नाचना, गाना, उछलना, चीखना, रोना—कुछ भी, किसी भी मुद्रा में। दूसरे लोगों को स्पर्श करने को छोड़कर और कुछ भी प्रतिबंधित नहीं है। ग्रुप में किसी

और को मत छुओ, कोई नुकसान न पहुंचाओ।

दूसरा चरण:

दूसरे एक घंटे के लिए बस मौन बैठ जाओ। तुम अधिक ताजे व अधिक सरल हो जाओगे, और ध्यान तुम्हारे लिए आसान हो जाएगा।²

सात दिन के लिए दो घंटे प्रतिदिन:

यह निर्णय कर लो कि इन दिनों तुम उतने ही अबोध रहोगे जितने तुम पैदा होते समय थे—बिल्कुल नवजात शिशु जैसे, जो न कुछ जानता है, न कुछ पूछता है, न कुछ चर्चा करता है न तर्क। यदि तुम छोटे बच्चे हो सको, तो बहुत कुछ संभव है। जो असंभव लगता है वह भी संभव है।⁴

नृत्य : एक ध्यान

नृत्य में खो जाओ

नर्तक को, अहंकार के केंद्र को भूल जाओ; नृत्य ही हो रहो। यही ध्यान है। इतनी गहनता से नाचो कि तुम यह बिलकुल भूल जाओ कि 'तुम' नाच रहे हो और यह महसूस होने लगे कि तुम नृत्य ही हो। यह दो का भेद मिट जाना जाना चाहिए; फिर वह ध्यान बन जाता है। यदि भेद बना रहे, तो फिर वह एक व्यायाम ही है: अच्छा है, स्वास्थ्यकर है, लेकिन उसे आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। वह बस एक साधारण नृत्य ही हुआ। नृत्य स्वयं में अच्छा है—जहां तक चलता है, अच्छा ही है। उसके बाद तुम ताजे और युवा महसूस करोगे। परंतु वह अभी ध्यान नहीं बना। नर्तक को बिदा देते रहना होगा, जब तक कि केवल नृत्य ही न बचे।

तो क्या करना है? नृत्य में समग्र होओ, क्योंकि नर्तक नृत्य भेद तभी तक रह सकता है जब तक तुम उसमें समग्र नहीं हो। यदि तुम एक ओर खड़े रहकर अपने नृत्य को देखते रहते हो, तो भेद बना रहेगा: तुम नर्तक हो और तुम नृत्य कर रहे हो। फिर नृत्य एक कृत्य मात्र होता है, जो तुम कर रहे हो; वह तुम्हारा प्राण नहीं है। तो पूर्णतया उसमें संलग्न हो जाओ, लीन हो जाओ। एक ओर न खड़े रहो, एक दर्शक मत बने रहो। सम्मिलित होओ।

नृत्य को अपने ढंग से बहने दो; उसे आरोपित मत करो। बल्कि उसका अनुसरण करो; उसे घटने दो। वह कोई कृत्य नहीं, एक घटना है। उत्सवपूर्ण भाव में रहो। तुम कोई बड़ा गंभीर काम नहीं कर रहे हो; बस खेल रहे हो। अपनी जीवन ऊर्जा से खेल रहे हो, अपनी जैविक-ऊर्जा से खेल रहे हो, उसे अपने ढंग से बहने दे रहे हो। बस ऐसे जैसे हवा बहती है और नदी प्रवाहित होती है—तुम भी प्रवाहित हो रहे हो, बह रहे हो। इसे

नटराज ध्यान

नटराज-नृत्य एक संपूर्ण ध्यान है। यह पैसठ मिनट का है और इसके तीन चरण हैं।

अनुभव करो।

और खेल के भाव में रहो। इस शब्द 'खेलपूर्ण भाव' का ध्यान रखो—मेरे साथ यह शब्द बहुत प्राथमिक है। इस देश में हम सृष्टि को परमात्मा की लीला, परमात्मा का खेल कहते हैं। परमात्मा ने संसार का सृजन नहीं किया है, यह उसका खेल है।।

पहला चरण : चालीस मिनट

आंखें बंद कर इस प्रकार नाचें जैसे आविष्ट हो गए हों। अपने पूरे चेतन को उभरकर नृत्य में प्रवेश करने दें। न तो नृत्य को नियंत्रित करें, और न ही जो हो रहा है उसके साक्षी बनें। बस नृत्य में पूरी तरह डूब जाएं।

दूसरा चरण : बीस मिनट

आंखें बंद रखे हुए ही, तत्क्षण लेट जाएं। शांत और निश्चल रहें।

तीसरा चरण : पांच मिनट

उत्सव भाव से नाचें; आनंदित हों और अहोभाव व्यक्त करें। २

सूफी दरवेश नृत्य प्राचीनतम और सबसे शक्तिशाली विधियों में से है। यह विधि इतनी गहन है कि एक अकेला अनुभव भी तुम्हें बिलकुल भिन्न कर दे सकता है। दोनों आंखें खुली रखकर एक स्थान पर गोल घूमो, जैसे छोटे बच्चे गोल घूमते हैं, जैसे कि तुम्हारे अंतर्प्राण एक केंद्र बन गए हों और तुम्हारा पूरा शरीर एक पहिया बन कर घूम रहा है, कुम्हार का चाक बन कर घूम रहा है। तुम केंद्र में हो, परंतु सारा शरीर घूम रहा है।

व्हिरलिंग ध्यान (सूफी दरवेश नृत्य)

यह उपयोगी होगा कि दरवेश नृत्य (व्हिरलिंग) शुरू करने से तीन घंटे पूर्व तक कोई आहार अथवा पेय नहीं लेना चाहिए। जूते-चप्पल न पहने हों और वस्त्र ढीले हों तो अच्छा है।

यह ध्यान दो चरणों में विभाजित है—गोल घूमना और विश्राम। घूमने के लिए कोई समय अवधि निश्चित नहीं है, वह घंटों तक भी चल सकता

है—लेकिन कम से कम एक घंटे तक घूमने का परामर्श दिया जाता है ताकि आप ऊर्जा के भंवर में पूरी तरह डूबने को अनुभव कर सकें।

व्हिरलिंग, गोल घूमने को एक ही स्थान पर घड़ी की चाल के विपरीत, एन्टिक्लॉकवाइज़ दिशा में—दाएं से बाएं—किया जाता है, दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर हथेली को आकाशोन्मुख

रखना है, और बाएं हाथ को नीचे झुकाकर उसकी हथेली को धरती की ओर उन्मुख रखना है। जिन लोगों को एन्टिक्लॉकवाइज़ घूमने में असुविधा हो वे घड़ी की चाल की दिशा में, क्लॉकवाइज़—बाएं से दाएं घूम सकते हैं। अपने शरीर को ढीला और आंखों को खुला रहने दें, आंखें कहीं केंद्रित न हों ताकि आकृतियाँ अस्पष्ट और

प्रवाहमान होती जाएं। मौन रहें।

पहले पन्द्रह मिनट के लिए मद्धिम गति से गोल घूमते रहें। फिर अगले तीस मिनट में गति को धीरे-धीरे तब तक तेज करते रहें जब तक कि गति आपको वशीभूत न कर ले, और आप ऊर्जा के एक भंवर न बन जाएं—परिधि पर गति का एक तूफान और केंद्र पर शांत व स्थिर साक्षी।

जब आप इतनी तेज गोल घूमने लगें कि खड़े न रह सकें, तो आपका शरीर स्वयं ही गिर जाएगा। न तो गिरने का

स्वयं निर्णय लें, न पहले से गिरने की व्यवस्था करें; यदि आपका शरीर ढीला होगा तो जमीन पर गिरना भी हलके से हो जाएगा और पृथ्वी आपकी ऊर्जा को पी लेगी।

एक बार आप गिर जाएं तो ध्यान का दूसरा चरण शुरू होता है। गिरते ही पेट के बल लेट जाएं ताकि आपकी खुली हुई नाभि का स्पर्श पृथ्वी से हो सके। यदि किसी को इस प्रकार लेटने में बहुत असुविधा हो तो वह अपनी पीठ के बल लेटे। अपने शरीर को पृथ्वी में पिघलने

और डूबने दें जैसे एक छोटा बच्चा मां के वक्ष से चिपका रहता है। आंखें बंद कर लें और निष्क्रिय तथा शांत होकर इस स्थिति में कम से कम पंद्रह मिनट पड़े रहें।

ध्यान के बाद जितना हो सके शांत व निष्क्रिय रहें।

कुछ लोगों को दरवेश ध्यान के समय मितली का जी हो सकता है, परंतु ऐसा दो-तीन दिन में ही समाप्त हो जाना चाहिए। उसके बाद भी ऐसा ही हो, तो यह ध्यान न करें।³

ध्यान की विधियाँ

कुछ भी ध्यान बन सकता है

यही राज है: अ-यंत्रवत होना। यदि हम अपने कृत्यों को अ-यंत्रवत कर सकें, तो पूरा जीवन एक ध्यान बन जाता है। फिर कोई भी छोटा-मोटा काम—नहाना, भोजन करना, मित्र से बात करना—ध्यान बन जाता है। ध्यान एक गुण है; उसे किसी भी चीज में लाया जा सकता है। वह कोई विशेष कृत्य नहीं है। लोग इसी प्रकार सोचते हैं, वे सोचते हैं ध्यान कोई विशेष कृत्य है—कि जब तुम पूर्व की ओर मुंह करके बैठो, कुछ मंत्र दोहराओ, थोड़ी धूपबत्ती जलाओ, कि किसी निश्चित समय पर, निश्चित तरह से, निश्चित मुद्रा में कुछ करो। ध्यान का उस सब से कुछ लेना-देना नहीं है। वे सब तुम्हें यंत्रवत करने के उपाय हैं और ध्यान यंत्रवत होने के विपरीत है।

तो यदि तुम सजग रह सको, तो कोई भी कृत्य ध्यान है; कोई भी कृत्य तुम्हें अपूर्व रूप से सहयोगी होगा।

जब तुम गति में होते हो तो सजग रह पाना स्वाभाविक और सरल होता है। जब तुम शांत बैठे होते हो तो स्वाभाविक है कि सो जाओ। जब तुम अपने बिस्तर पर लेटे होते हो तो सजग रह पाना बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि पूरी परिस्थिति तुम्हें सोने में मदद करती है। लेकिन सक्रियता में स्वभावतः तुम सो नहीं सकते, तुम अधिक सजग होकर कार्य करते हो। समस्या एक यही है कि कृत्य यांत्रिक बन सकता है।

अपने शरीर, मन और आत्मा को पिघला कर एक करना सीखो। ऐसे उपाय खोजो कि तुम एक इकाई की भांति कार्य कर सको। दौड़ने वालों के साथ कई बार

दौड़ना, जॉगिंग और तैरना

ऐसा होता है। शायद तुमने सोचा भी न हो कि दौड़ना भी ध्यान हो सकता है, लेकिन दौड़ने वालों को कई बार ध्यान के अपूर्व अनुभव हुए हैं। और वे चकित हुए, क्योंकि इसकी तो वे खोज भी नहीं कर रहे थे—कौन सोचता है कि कोई दौड़ने वाला परमात्मा का अनुभव कर लेगा? परंतु ऐसा हुआ है। और अब तो दौड़ना

अधिकाधिक एक नए प्रकार का ध्यान बनता जा रहा है। जब दौड़ रहे हों तो ऐसा हो सकता है।

यदि तुम कभी एक दौड़ाक रहे होओ, यदि तुमने सुबह-सुबह दौड़ने का आनंद लिया हो जब हवा ताजी और युवा हो और सारा विश्व नींद से लौटता हो, जागता हो—तुम दौड़ रहे होओ और तुम्हारा शरीर

सुंदर रूप से गति कर रहा हो; ताजी हवा, रात के अंधकार से गुजर कर जन्मा नया संसार—जैसे हर चीज गीत गाती हो—तुम बहुत जीवंत अनुभव करते हो... एक क्षण आता है जब दौड़ने वाला विलीन हो जाता है, और बस दौड़ना ही बचता है। शरीर, मन और आत्मा एक-साथ कार्य करने लगते हैं; अचानक

एक आंतरिक आनंदोन्माद का आविर्भाव होता है।

दौड़ाक कई बार संयोग से चौथे के, तुरीय के अनुभव से गुजर जाते हैं, यद्यपि वे उसे चूक जाएंगे—वे सोचेंगे कि शायद दौड़ने के कारण ही उन्होंने इस क्षण का आनंद लिया: कि प्यारा दिन था, शरीर स्वस्थ था और संसार सुंदर, और यह अनुभव एक भावदशा मात्र थी। वे उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देते—परंतु वे ध्यान दें, तो मेरी अपनी समझ है कि एक दौड़ाक किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सरलता से ध्यान के करीब आ सकता है।

‘जॉगिंग’ (लयबद्ध धीरे-धीरे दौड़ना) अपूर्व रूप से सहयोगी हो सकती है, तैरना बहुत सहयोगी हो सकता है। इन सब चीजों को ध्यान में रूपांतरित कर लेना है।

ध्यान की पुरानी धारणाओं को छोड़ दो—कि किसी वृक्ष के नीचे योग-मुद्रा में बैठना ही ध्यान है। वह तो बहुत से उपायों में से एक उपाय है, और हो सकता है वह कुछ लोगों के लिए उपयुक्त हो, लेकिन

सबके लिए उपयुक्त नहीं है। एक छोटे बच्चे के लिए यह ध्यान नहीं, उत्पीड़न है। एक युवा व्यक्ति जो जीवंत और स्पंदित है, उसके लिए यह दमन होगा, ध्यान नहीं।

सुबह सड़क पर दौड़ना शुरू करो। आधा मील से शुरू करो और फिर एक मील करो और अंततः कम से कम तीन मील तक आ जाओ। दौड़ते समय पूरे शरीर का उपयोग करो; ऐसे मत दौड़ो जैसे कसे कपड़े पहने हुए हों। छोटे बच्चे की तरह दौड़ो, पूरे शरीर का—हाथों और पैरों का—उपयोग करो और दौड़ो। पेट से गहरी श्वास लो। फिर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ, विश्राम करो, पसीना बहने दो और शीतल हवा लगने दो; शांत अनुभव करो। यह बहुत गहन रूप से सहयोगी होगा।

कभी-कभी बिना जूते-चप्पल पहने नंगे पांव जमीन पर खड़े हो जाओ और शीतलता को, कोमलता को, उष्मा को महसूस करो। उस क्षण में पृथ्वी जो कुछ

भी देने को तैयार है, उसे अनुभव करो और अपने में बहने दो। और अपनी ऊर्जा को पृथ्वी में बहने दो। पृथ्वी के साथ जुड़ जाओ।

यदि तुम पृथ्वी से जुड़ गए, तो जीवन से जुड़ गए। यदि तुम पृथ्वी से जुड़ गए, तो अपने शरीर से जुड़ गए। यदि तुम पृथ्वी से जुड़ गए, तो बहुत संवेदनशील और केंद्रस्थ हो जाओगे—और यही तो चाहिए।

दौड़ने में कभी भी विशेषज्ञ मत बनना; नौसिखिए ही बने रहना ताकि सजगता रखी जा सके। जब कभी तुम्हें लगे कि दौड़ना यंत्रवत हो गया है, तो उसे छोड़ दो; फिर तैर कर देखो। यदि वह भी यंत्रवत हो जाए, तो नृत्य को लो। यह बात याद रखने की है कि कृत्य मात्र एक परिस्थिति है कि जागरण पैदा हो सके। जब तक वह जागरण निर्मित करे तब तक ठीक है। जब वह जागरण पैदा करना बंद कर दे तो किसी काम का न रहा; किसी और कृत्य को पकड़ो जहां तुम्हें फिर से सजग होना पड़े। किसी भी कृत्य को यंत्रवत मत होने दो।²

हंसना कुछ ऊर्जा तुम्हारे अंतर्केंद्र से परिधि पर ले आती है। ऊर्जा हंसने के पीछे छाया की भांति बहने लगती है। तुमने कभी इस पर ध्यान दिया? जब तुम वास्तव में हंसते हो, तो उन थोड़े से क्षणों के लिए तुम एक गहन ध्यानपूर्ण अवस्था में होते हो। विचार प्रक्रिया रुक जाती है। हंसने के साथ-साथ विचार करना असंभव है। वे दोनों बातें बिल्कुल विपरीत हैं: या तो तुम हंस सकते हो, या विचार ही कर सकते हो। यदि तुम वास्तव में हंसो तो

हंसना ध्यान

विचार रुक जाता है। यदि तुम अभी भी विचार कर रहे हो तो तुम्हारा हंसना थोथा और कमज़ोर होगा। वह हंसी अपंग होगी।

जब तुम वास्तव में हंसते हो, तो अचानक मन विलीन हो जाता है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, नाचना और हंसना सर्वोत्तम, स्वाभाविक व सुगम द्वार हैं। यदि सच में ही तुम नाचो, तो सोच-विचार रुक जाता है। तुम नाचते जाते हो, घूमते

जाते हो, और एक भंवर बन जाते हो—सब सीमाएं, सब विभाजन समाप्त हो जाते हैं। तुम्हें इतना भी पता नहीं रहता कि कहां तुम्हारा शरीर समाप्त होता है और कहां अस्तित्व शुरू होता है। तुम अस्तित्व में पिघल जाते हो और अस्तित्व तुममें पिघल आता है; सीमाएं एक-दूसरे में प्रवाहित हो जाती हैं। और यदि तुम सच ही नाच रहे हो—उसे नियंत्रित नहीं कर रहे

बल्कि उसे स्वयं को नियंत्रित कर लेने दे रहे हो, स्वयं को वशीभूत कर लेने दे रहे हो—यदि तुम नृत्य से वशीभूत हो जाओ, तो सोच-विचार रुक जाता है।

हंसने के साथ भी ऐसा ही होता है। यदि तुम हंसी से आविष्ट और आच्छादित हो जाओ तो सोच-विचार रुक जाता है।

निर्विचार की दशा के लिए हंसना एक सुंदर भूमिका बन सकती है।³

हंसी ध्यान के लिए निर्देश

ह र सुबह जब जागें, तो अपनी आंखें खोलने से पहले, शरीर को बिल्ली की तरह तानें। तीन या चार मिनट बाद, आंखें बंद रखे हुए ही, हंसना शुरू करें। पांच मिनट के लिए बस हंसें ही। पहले-पहले तो आप इसे सप्रयास करेंगे, लेकिन शीघ्र ही आपके प्रयास से पैदा की गई ध्वनि प्रामाणिक हंसी को जगा देगी। स्वयं को हंसी में खो दें। शायद इस घटना को वास्तव में घटने में कई दिन लग जाएं, क्योंकि हम इससे बहुत अपरिचित हैं। परंतु शीघ्र ही यह सहज हो जाएगा और आपके पूरे दिन का गुण ही बदल जाएगा।⁴

हंसते हुए बुद्ध

जा पान में हंसते हुए बुद्ध, होतेई की एक कहानी है। उसकी पूरी देशना ही बस हंसना थी। वह एक स्थान से दूसरे स्थान, एक बाजार से दूसरे बाजार घूमता रहता। वह बाजार के बीचों-बीच खड़ा हो जाता और हंसने लगता—यही उसका प्रवचन था।

उसकी हंसी सम्मोहक थी, संक्रामक थी—एक वास्तविक हंसी, जिससे पूरा पेट स्पंदित हो जाता, तरंगायित हो जाता। वह हंसते-हंसते जमीन पर लोटने लगता। जो लोग जमा होते, वे भी हंसने लगते, और फिर तो हंसी फैल जाती, हंसी की तूफानी लहरें उठतीं, और पूरा गांव

हंसी से आप्लावित हो जाता।

लोग राह देखते कि कब होतेई उनके गांव में आए, क्योंकि वह अद्भुत आनंद और आशीष लेकर आता था। उसने कभी भी एक शब्द नहीं बोला—कभी भी नहीं। तुम बुद्ध के बारे में पूछो और वह हंसने लगता; तुम बुद्धत्व के बारे में पूछो और वह हंसने लगता; तुम सत्य के बारे में पूछते कि वह हंसने लगता। हंसना ही उसका एकमात्र संदेश था।⁵

एक व्यक्ति मेरे पास आया। तीस वर्ष से वह सतत धूम्रपान की लत से पीड़ित था। वह बीमार था, और डॉक्टर उसे कहते, “जब तक तुम धूम्रपान करना छोड़ोगे नहीं, कभी स्वस्थ नहीं हो पाओगे।” लेकिन वह तो बहुत समय से धूम्रपान से पूर्णतः ग्रसित था; वह उसकी बाबत कुछ कर नहीं सकता था। उसने प्रयास भी किया था—ऐसा नहीं कि उसने प्रयास नहीं किया था—उसने कठोर

धूम्रपान ध्यान

प्रयास किया था, और इस प्रयास करने में उसने बहुत कुछ झेला भी था, लेकिन एक या दो दिन ही बीतते कि फिर से ऐसी जोर की तलब उठती, कि उसे बहका ले जाती। वह फिर से उसी ढर्रे में लौट जाता।

इस धूम्रपान की वजह से ही उसका सारा आत्मविश्वास जाता रहा था: उसे पता था कि वह एक छोटा-सा काम भी नहीं कर सकता था; सिगरेट पीना नहीं छोड़ सकता था। वह अपनी ही दृष्टि में बिल्कुल अयोग्य हो गया था; वह स्वयं को संसार का सबसे बेकार व्यक्ति मानने

लगा था। उसे अपने लिए कोई सम्मान नहीं रह गया था। वह मेरे पास आया।

उसने पूछा, “मैं क्या कर सकता हूँ? मैं धूम्रपान कैसे छोड़ सकता हूँ?” मैंने कहा, “धूम्रपान कोई भी नहीं छोड़ सकता। यह तुम्हें समझ लेना है। धूम्रपान करना अब कोई तुम्हारे निर्णय का ही प्रश्न नहीं है। वह तुम्हारे व्यसनों के जगत में प्रवेश कर गया है; उसने जड़ें जमा ली हैं। तीस वर्ष एक लंबा समय है। उसने तुम्हारे शरीर में, तुम्हारे रसायन में जड़ें पकड़ ली हैं; वह सारे शरीर में फैल गया है। यह तुम्हारे

मस्तिष्क के निर्णय लेने का ही प्रश्न नहीं रह गया है; तुम्हारा मस्तिष्क कुछ भी नहीं कर सकता। मस्तिष्क नपुंसक है; वह चीजों को शुरू कर सकता है, लेकिन इतनी सरलता से उन्हें रोक नहीं सकता। एक बार तुम शुरू हो गए और एक बार तुमने इतना लंबा अभ्यास कर लिया, तुम तो बड़े योगी हो गए—तीस वर्ष से धूम्रपान का अभ्यास चलता है! अब तो यह स्वचलित ही हो गया है; तुम्हें उसे अ-यंत्रवत करना होगा।” वह बोला, “अ-यंत्रवत करने से आपका क्या

तात्पर्य है?"

और यही तो ध्यान का सारा उद्देश्य है—अ-यंत्रवत होना। मैंने कहा, "तुम एक काम करो: छोड़ने की बात भूल जाओ। उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। तीस वर्ष तक तुमने धूम्रपान किया और तुम उसे जी लिए; निश्चित ही तुम्हें उसमें कष्ट तो हुआ परंतु तुम उसके भी आदी हो गए हो। और इससे क्या फर्क पड़ता है यदि तुम उससे कुछ घंटे पहले मर जाओ जब तुम धूम्रपान न करने पर मरते? यहां तुम करोगे क्या? तुमने क्या कर लिया है? तो सार ही क्या है—तुम सोमवार को मरो या मंगल को मरो या रविवार को, इस वर्ष मरो कि उस वर्ष—इससे फर्क ही क्या पड़ता है?"

उसने कहा, "हां, यह सच है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।" तो मैंने कहा, "भूल जाओ इस बारे में। हम छोड़ने वाले नहीं हैं; बल्कि हम तो इसे समझेंगे। तो अगली बार, तुम इसे एक ध्यान बना लो।"

वह बोला, "धूम्रपान का ध्यान?"

मैंने कहा, "हां। जब झेन साधक चाय पीने को ध्यान बना सकते हैं और उसका उत्सव मना सकते हैं, तो क्यों नहीं धूम्रपान भी उतना ही सुंदर ध्यान हो सकता है।"

वह तो रोमांचित नजर आने लगा। वह बोला, "आप क्या कह रहे हैं?"

वह तो जैसे जी उठा। बोला, "ध्यान? मुझे बताएं—मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता।"

मैंने उसे ध्यान बताया। मैंने कहा, "एक काम करो। जब तुम सिगरेट का पैकेट

अपनी जेब से निकालो, तो धीरे-धीरे निकालो। उसका आनंद लो, कोई जल्दी नहीं है। सचेत, सजग, जागरूक रहो। उसे पूरे होश के साथ धीरे-धीरे निकालो। फिर पैकेट में से सिगरेट निकालो तो पूरे होश के साथ धीरे-धीरे—पहले की तरह जल्दबाजी से, बेहोशी में, यंत्रवत होकर नहीं। फिर सिगरेट को पैकेट पर ठोंको—लेकिन बड़े होश के साथ। उसकी आवाज को सुनो, जैसे झेन साधक सुनते हैं जब समोवार गीत गाने लगता है और चाय उबलने लगती है...और उसकी सुवास! फिर सिगरेट को सूँघो और उसके सौंदर्य को..."

वह बोला, "आप क्या कह रहे हैं? सौंदर्य?"

"हां, उसमें सौंदर्य है। तंबाकू भी उतना ही दिव्य है जितनी कोई अन्य चीज। उसे सूँघो; वह परमात्मा की सुगंध है।"

वह थोड़ा हैरान हुआ। वह बोला, "क्या! आप मजाक कर रहे हैं?"

"नहीं, मैं मजाक नहीं कर रहा। जब मैं मजाक भी करता हूँ तो मजाक नहीं करता। मैं गंभीर हूँ।"

"फिर पूरे होश के साथ उसे अपने मुँह में रखो, पूरे होश के साथ उसे जलाओ। हर कृत्य का, हर छोटे-छोटे कृत्य का आनंद लो, और उसे जितने छोटे खंडों में हो सके बांट लो, ताकि तुम और-और सजग हो सको।"

"फिर पहला कश लो: जैसे धुएँ के रूप में परमात्मा हो। हिंदू कहते हैं, 'अन्नं ब्रह्म'—'अन्न ब्रह्म है'। तो फिर धुआँ क्यों

नहीं? सभी कुछ परमात्मा है। अपने फेफड़ों को पूरी तरह से भर लो—यह एक प्राणायाम है। मैं तुम्हें नए युग के लिए नया योग दे रहा हूँ। फिर धुएँ को छोड़ो, विश्राम करो, फिर दूसरा कश—और बहुत धीरे-धीरे पीओ।"

यदि तुम ऐसा कर पाओ तो तुम चकित होओगे; शीघ्र ही तुम्हें इसकी सारी मूढ़ता नजर आ जाएगी—इसलिए नहीं कि दूसरों ने इसे मूढ़तापूर्ण कहा है, इसलिए नहीं कि दूसरों ने इसे बुरा कहा है। तुम्हें इसका दर्शन होगा। और यह दर्शन मात्र बौद्धिक ही नहीं होगा। यह तुम्हारे पूरे प्राणों से आएगा; यह तुम्हारी समग्रता का बोध होगा। और फिर किसी दिन धूम्रपान छूट जाए, तो छूट जाए; और चलता रहे, तो चलता रहे। तुम्हें उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।"

तीन महीने बाद वह आया और बोला, "लेकिन मेरी सिगरेट तो छूट गई।"

"अब," मैंने कहा, "इसे दूसरी चीजों के साथ करके भी देखो।"

यही राज है: अयंत्रवत हो जाना।

चलते हुए, धीरे-धीरे, होशपूर्वक चलो। देखते हुए, होशपूर्वक देखो, और तुम पाओगे कि वृक्ष इतने ज्यादा हरे हो गए जितने हरे वे कभी न थे। और गुलाब इतने ज्यादा गुलाबी हो गए, जितने कि वे कभी न थे। सुनो! कोई बात कर रहा है, गप-शप कर रहा है: सुनो, सजग होकर सुनो। जब तुम बोल रहे हो, तो सजग होकर बोलो। जाग्रत अवस्था के अपने सभी कृत्यों को अयंत्रवत हो जाने दो। 6

श्वास : एक सेतु—ध्यान तक

यदि तुम श्वास के साथ कुछ प्रयोग कर सको तो अचानक वर्तमान में आ जाओगे।

यदि श्वास के साथ कुछ प्रयोग कर सको, तो तुम जीवन के स्रोत को उपलब्ध कर लोगे। यदि श्वास के साथ कुछ कर सको तो तुम समय और स्थान के पार जा सकते हो। यदि श्वास के साथ कुछ कर सको, तो तुम संसार में रहकर भी इसके पार रहोगे।।

विपस्सना वह ध्यान है जिसने संसार में किसी भी अन्य ध्यान की अपेक्षा सबसे अधिक लोगों को संबुद्ध किया है, क्योंकि यह सार मात्र ही है। अन्य ध्यान विधियों में भी वही सार है, परंतु भिन्न रूपों में; उनमें कुछ असार भी जुड़ गया है। लेकिन विपस्सना शुद्ध सार है। न तुम उसमें से कुछ निकाल सकते हो, न सुधार के लिए उसमें कुछ जोड़ सकते हो।

विपस्सना इतनी सरल है कि एक छोटा बच्चा भी कर सकता है। वास्तव में छोटा

विपस्सना

बच्चा तुमसे भी बेहतर कर सकता है, क्योंकि वह अभी मन के कचरे से नहीं भरा है; वह अभी निर्मल और निर्दोष है।

विपस्सना तीन प्रकार से की जा सकती है—तुम्हें कौन-सी विधि सबसे ठीक बैठती है, इसका तुम चुनाव कर सकते हो।

पहली विधि है: अपने कृत्यों, अपने शरीर, अपने मन, अपने हृदय के प्रति

सजगता। चलो, तो होश के साथ चलो। हाथ हिलाओ, तो होश से हिलाओ, यह जानते हुए कि तुम हाथ हिला रहे हो। तुम उसे बिना होश के, यंत्र की भांति भी हिला सकते हो... तुम सुबह सैर पर निकले हो; तुम अपने पैरों के प्रति सजग हुए बिना भी चल सकते हो।

अपने शरीर की गतिविधियों के प्रति सजग रहो। खाते समय, उन गतिविधियों

के प्रति सजग रहो जो खाने के लिए जरूरी होती हैं। नहाते समय जो शीतलता तुम्हें मिल रही है, जो पानी तुम पर गिर रहा है और जो अपूर्व आनंद उससे मिल रहा है उस सब के प्रति सजग रहो—बस सजग हो रहो। यह अजागरूकता की दशा में नहीं होना चाहिए।

और तुम्हारे मन के विषय में भी ऐसा ही है। तुम्हारे मन के परदे पर जो भी विचार

गुजरे बस उसके द्रष्टा बने रहो। तुम्हारे हृदय के परदे पर से जो भी भाव गुजरे, बस साक्षी बने रहो—उसमें उलझो मत, उससे तादात्म्य मत बनाओ, मूल्यांकन मत करो कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है; वह तुम्हारे ध्यान का अंग नहीं है।

दूसरी विधि है श्वास की; अपनी श्वास के प्रति सजग होना। जैसे ही श्वास भीतर जाती है, तुम्हारा पेट ऊपर उठने लगता है, और जब श्वास बाहर जाती है, तो पेट फिर से नीचे बैठने लगता है। तो दूसरी विधि है पेट के प्रति—उसके उठने और गिरने के प्रति—सजग हो जाना। पेट के उठने और गिरने का बोध हो...और पेट जीवन स्रोत के सबसे निकट है क्योंकि बच्चा नाभि के द्वारा माँ के जीवन से जुड़ा होता है। नाभि के पीछे उसके जीवन का स्रोत है। तो जब तुम्हारा पेट उठता है, तो यह वास्तव में जीवन ऊर्जा है, जीवन की धारा है जो हर श्वास के साथ ऊपर उठ रही है और नीचे गिर रही है। यह विधि कठिन नहीं है, शायद ज्यादा सरल है, क्योंकि यह एक सीधी विधि है।

पहली विधि में तुम्हें अपने शरीर के प्रति सजग होना है, अपने मन के प्रति सजग होना है, अपने भावों, भावदशाओं के प्रति सजग होना है। तो इसमें तीन चरण हैं। दूसरी विधि में एक ही चरण है: बस पेट ऊपर और नीचे जा रहा है। और परिणाम एक ही है। जैसे-जैसे तुम पेट के प्रति सजग होते जाते हो, मन शांत हो जाता है, हृदय शांत हो जाता है, भावदशाएं मिट जाती हैं।

और तीसरी विधि है, जब श्वास भीतर प्रवेश करने लगे, जब श्वास तुम्हारे नासापुटों से भीतर जाने लगे तभी उसके प्रति सजग हो जाना।

उस दूसरी अति पर उसे अनुभव करो—पेट से दूसरी अति पर—नासापुट पर श्वास का स्पर्श अनुभव करो। भीतर जाती हुई श्वास तुम्हारे नासापुटों को एक प्रकार की शीतलता देती है। फिर श्वास बाहर जाती है...श्वास भीतर आई, श्वास बाहर गई।

यह भी संभव है। यह स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों के लिए अधिक सरल है। स्त्री पेट के प्रति अधिक सजग है। अधिकांश पुरुष तो इतनी गहरी श्वास भी नहीं लेते कि वह पेट तक पहुँच जाए। उनकी छाती ही ऊपर और नीचे होती है, क्योंकि संसार भर में सुडौलता की एक गलत ढंग की धारणा प्रचलित है। जब तुम्हारी छाती ऊँची होती है और पेट लगभग न के बराबर होता है तो शरीर को निश्चित ही एक सुंदर आकृति मिलती है।

पुरुष ने छाती तक ही श्वास ले जाने का चुनाव किया है, इससे छाती तो बड़ी होती जाती है और पेट सिकुड़ जाता है। ऐसा शरीर उसे अधिक सुडौल लगता है।

जापान को छोड़कर, संसार भर में खिलाड़ी और खिलाड़ियों के शिक्षक फेफड़ों को भरके, छाती को फुलाकर, और पेट को भीतर खींच कर श्वास लेने पर जोर देते हैं। उनका आदर्श सिंह है जिसकी छाती बड़ी होती है और पेट बहुत छोटा होता है। तो सिंह की भांति हो

जाओ; तो जो खिलाड़ी और व्यायामशास्त्री हैं, और जो लोग शरीर पर कार्य करते रहे हैं, उनके लिए यह नियम—सा ही बन गया है।

जापान ही एकमात्र अपवाद है जहां वे इस बात की फिक्र नहीं लेते कि छाती चौड़ी होनी चाहिए और पेट भीतर खिंचा होना चाहिए। पेट को भीतर खिंचे रखने के लिए एक विशेष अनुशासन की जरूरत होती है; यह स्वाभाविक नहीं है। जापान ने स्वाभाविक मार्ग का चुनाव किया है, इसीलिए जब तुम बुद्ध की कोई जापानी मूर्ति देखोगे तो चकित होओगे। तुम तत्क्षण भेद कर सकते हो कि मूर्ति भारतीय है अथवा जापानी है। गौतम बुद्ध की भारतीय प्रतिमाओं की देह बड़ी सुडौल होती है; पेट बहुत छोटा और छाती चौड़ी होती है। लेकिन जापानी बुद्ध बिल्कुल भिन्न होते हैं; उनकी छाती तो लगभग शांत ही होती है, क्योंकि वे पेट से श्वास लेते हैं, लेकिन उनका पेट बड़ा होता है। यह बहुत अच्छा तो नहीं लगता—क्योंकि संसार में प्रचलित धारणा बहुत पुरानी है। लेकिन पेट से श्वास लेना अधिक स्वाभाविक है, अधिक विश्रामपूर्ण है।

रात जब तुम सोते हो तो ऐसा होता है; तुम छाती से श्वास नहीं लेते, पेट से श्वास लेते हो। इसीलिए तो रात ऐसा विश्रामपूर्ण अनुभव बन जाती है। सोने के बाद सुबह तुम इतने ताजा, इतने युवा महसूस करते हो, क्योंकि रात भर तुमने स्वाभाविक रूप से श्वास ली...तुम जापान में थे!

ये दो सूत्र हैं: यदि तुम्हें भय हो कि पेट से श्वास लेने और इसके उठने व गिरने के प्रति सजग होने से तुम्हारे शरीर की सुडौलता नष्ट होती है... पुरुषों का सुडौलता में अधिक रस हो सकता है। फिर उनके लिए यह सरल है कि वे नासापुटों के पास होश को ले जाएं जहां से श्वास भीतर प्रवेश करती है। भीतर जाती श्वास को देखो और जब श्वास बाहर जाए तो उसको देखो।

ये तीन ढंग हैं। कोई भी एक काम देगा। और यदि तुम दो विधियां एक साथ करना चाहो, तो दो विधियां एक साथ कर सकते हो; फिर प्रयास और सघन हो जाएगा। यदि तुम तीनों विधियों को एक साथ करना चाहो, तो तीनों विधियों को एक साथ कर सकते हो। फिर संभावनाएं तीव्रतर होंगी। लेकिन यह सब तुम पर निर्भर करता है—जो भी तुम्हें सरल लगे।

स्मरण रखो: जो सरल है वही सही है।

जैसे-जैसे ध्यान थिर और मन शांत होगा, अहंकार विलीन हो जाएगा। तुम तो रहोगे, परंतु कोई मैं-भाव नहीं रहेगा। फिर द्वार खुले हैं।

एक प्रेमपूर्ण अभीप्सा से भर कर, हृदय में स्वागत का भाव लिए बस प्रतीक्षा करो—उस महान क्षण की—किसी भी व्यक्ति के जीवन के महानतम क्षण की—बुद्धत्व की।

वह क्षण आता है... निश्चित ही आता है। वह कभी एक क्षण भी देर से नहीं आया है। एक बार तुम ठीक लय में आ जाओ, तो अचानक वह तुममें विस्फोटित होता है और तुम्हें रूपांतरित कर जाता है।

पुराना मनुष्य बिदा हुआ और नये मनुष्य का आगमन हुआ।²

बैठना

चालीस से साठ मिनट तक बैठने के लिए पर्याप्त रूप से विश्रामपूर्ण और सजग स्थिति खोज लें। पीठ और सिर सीधे, आंखें बंद तथा श्वास सामान्य होनी चाहिए। जितने स्थिर रह सकें रहें, स्थिति तभी बदले जब वह बहुत जरूरी हो।

बैठे हुए प्रमुख लक्ष्य है आती-जाती श्वास के कारण नाभि से थोड़ा ऊपर पेट के उठने व गिरने को देखना। यह कोई एकाग्रता की विधि नहीं है, अतः श्वास को देखते समय बहुत-सी अन्य बातें आपके होश को बहका ले जाएंगी। विपस्सना में कुछ भी अवरोध नहीं है, इसलिए जब कुछ और उठे, तो श्वास को देखना रोक दें, और जो भी हो रहा है उस पर तब तक ध्यान दें जब तक कि श्वास पर वापस लौटना संभव न हो। इसमें विचार, भावनाएं, निर्णय, शारीरिक संवेदनाएं और बाह्य जगत के प्रभाव

इत्यादि हो सकते हैं।

देखने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है, आप क्या देख रहे हैं यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है, तो स्मरण रखिए कि जो कुछ भी उठता हो उससे तादात्म्य नहीं बनाना है; प्रश्नों और समस्याओं को इस प्रकार देखा जा सकता है जैसे वे रहस्य हों जिनका आनंद लिया जा सके।

विपस्सना चक्रमण

पैरों द्वारा धरती को छूने के बोध पर आधारित यह एक मद्धिम व सामान्य पदगति है।

आप चाहें तो एक वर्तुल में चल सकते हैं अथवा दस से पंद्रह कदम आगे-पीछे सीधे चलते रह सकते हैं—कमरे के भीतर या कमरे के बाहर। आंखें इस प्रकार झुकी हों कि जमीन पर कुछ ही कदम आगे तक दिखाई दे। चलते समय पूरा ध्यान उस संपर्क पर रहना चाहिए जब दोनों पैर धरती को छूते हैं। यदि और चीजें उठती हैं, तो पैरों पर ध्यान देना बंद करें, उस चीज को देखें जिसने आपका ध्यान अवरुद्ध किया है और फिर पैरों पर लौट आएं।

यह विधि भी बैठने की विधि के समान ही है—परंतु देखने का विषय इसमें भिन्न है। आप बीस से तीस मिनट तक चल सकते हैं।³

शिव ने कहा: हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। श्वास के भीतर आने के पश्चात् और बाहर लौटने के पूर्व का अंतराल है—मंगल क्षण।

जब तुम्हारी श्वास भीतर आए, तो अवलोकन करो। फिर उसके ऊपर उठने के पहले, बाहर की ओर मुड़ने के पहले एक क्षण के लिए, या क्षण के

श्वासों के बीच के अंतराल को देखना

हजारवें अंश के लिए श्वास प्रक्रिया ठहर जाती है। एक श्वास भीतर आती है; फिर एक बिंदु है जहाँ श्वास ठहर जाती है। फिर श्वास बाहर जाती है। जब श्वास बाहर जा चुकती है तो फिर वहाँ एक क्षण के लिए, या क्षणांश के लिए ठहर जाती है। फिर श्वास भीतर आती है।

श्वास के भीतर या बाहर के लिए मुड़ने

के पहले एक क्षण है जब तुम श्वास नहीं लेते। उसी क्षण में ध्यान की घटना संभव है, क्योंकि जब तुम श्वास नहीं लेते तो संसार में नहीं होते। इसे समझो: जब तुम श्वास नहीं ले रहे तो मृत हो; तुम हो तो, लेकिन मृत। लेकिन यह क्षण इतना छोटा है कि तुम उसे कभी देख नहीं पाते।

भीतर आती श्वास एक नया जन्म है;

बाहर जाती श्वास मृत्यु है। बाहर जाती श्वास मृत्यु की पर्याय है; भीतर आती श्वास जीवन की। तो हर श्वास के साथ तुम मरते हो और पुनरुज्जीवित होते हो। दोनों के बीच का अंतराल बहुत छोटा है, परंतु तीक्ष्ण तथा निष्ठापूर्ण अवलोकन और सजगता से तुम उस अंतराल को अनुभव कर पाओगे। फिर कुछ और नहीं

चाहिए। तुम धन्य हुए। तुमने जान लिया; घटना घट गई।

तुम्हें श्वास को प्रशिक्षित नहीं करना है। उसे जैसी है वैसी छोड़ दो। इतनी सरल विधि क्यों? यह इतनी सरल लगती है। सत्य को जानने के लिए इतनी सरल विधि? सत्य को जानने का अर्थ है: उसको जान लेना जो न जन्मता है न मरता है, उस शाश्वत तत्व को जान लेना जो सदा है। तुम्हें बाहर जाती श्वास का बोध हो सकता है, तुम्हें भीतर आती श्वास का बोध हो सकता है, परंतु दोनों के बीच के अंतराल को तुम कभी नहीं जान पाते।

यह प्रयोग करो। अचानक सूत्र तुम्हारे हाथ लग जाएगा—और तुम उसे पा सकते हो: वह पहले से ही मौजूद है। तुममें या तुम्हारी संरचना में कुछ भी जोड़ना नहीं है: वह तो पहले से ही मौजूद है। बस एक होश को छोड़कर और सबकुछ है। तो कैसे इसे करें? पहले, भीतर आती श्वास के प्रति सजग हो जाओ। उसको देखो। बाकी सब भूल जाओ: बस भीतर आती श्वास

को—उसके मार्ग को देखो। जब श्वास तुम्हारे नासापुटों को छूए, उसे वहां महसूस करो। फिर श्वास को भीतर जाने दो। पूरी सजगता से उसके साथ बढ़ो। जब श्वास के साथ गहरे और नीचे उतरो, तो श्वास का साथ मत छोड़ो। न तो उससे आगे निकलो, न उससे पीछे पड़ो। उसके बिल्कुल साथ-साथ चलो। यह स्मरण रखो: न तो आगे निकलो; न छाया की भांति उसके पीछे चलो। उसके साथ युगपत होकर चलो।

श्वास और चेतना एक हो जाएं। श्वास भीतर जाती है, तुम भी भीतर जाओ। तभी उस बिंदु को पकड़ पाना संभव होगा जो दो श्वासों के मध्य में है। यह सरल नहीं होगा।

श्वास के साथ भीतर जाओ, फिर श्वास के साथ बाहर आओ: भीतर-बाहर, भीतर-बाहर। बुद्ध ने विशेषकर इस विधि का उपयोग किया, इसीलिए यह विधि एक बौद्ध विधि बन गई है। बुद्ध की भाषा में इसे 'अनापानसति योग' के नाम से जाना जाता है। और बुद्ध

की आत्मोपलब्धि इस विधि पर, इसी विधि पर ही आधारित थी।

यदि तुम श्वास के प्रति सजगता, श्वास के प्रति बोध का अभ्यास करते रहो, तो एक दिन गुप-चुप ही तुम अंतराल पर पहुंच जाओगे। जैसे-जैसे तुम्हारा बोध तीव्र, गहरा और सघन होगा, जैसे-जैसे तुम्हारा बोध स्पष्ट आकार लेगा—पूरा संसार बाहर छूट जाएगा; भीतर आती या बाहर जाती श्वास ही तुम्हारा संसार रह जाती है, तुम्हारी चेतना का इतना ही कार्यक्षेत्र रह जाता है—अचानक तुम उस अंतराल को अनुभव कर ही लोगे जिसमें कोई श्वास नहीं होती।

जब तुम सूक्ष्मता से श्वास के साथ गति कर रहे हो, जब कोई श्वास न बचे, तो तुम बोधरहित कैसे रह सकते हो? अचानक तुम सजग हो जाते हो कि श्वास नहीं है, और वह क्षण आएगा जब तुम महसूस करोगे कि न तो श्वास बाहर जा रही है न भीतर आ रही है। श्वास पूरी तरह ठहर गई है। उस ठहरने में ही मंगल-क्षण घटता है।⁴

शि व ने कहा: सांसारिक कामों में लगे हुए, होश को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से कुछ ही दिनों में नया जन्म हो जाएगा।

तुम जो भी करो, अपने होश को दो श्वासों के बीच के अंतराल पर रखो। लेकिन काम-काज में लगे हुए ही इसे साधना है।

हमने ऐसी ही एक अन्य विधि पर चर्चा की है। अब इसमें यह भेद है कि इसे सांसारिक काम-काज में लगे हुए ही साधना है। इसे एकांत में मत साधो। यह

बाजार में अंतराल को देखना

अभ्यास तभी करना है जब तुम कुछ कार्य कर रहे होओ। तुम खा रहे हो: खाते रहो, और अंतराल के प्रति सजग रहो। तुम चल रहे हो: चलते रहो, और अंतराल के प्रति सजग रहो। तुम सोने लगे हो: लेट जाओ, नींद को आने दो। लेकिन अंतराल के प्रति सजग बने रहो।

सक्रियता में ही क्यों? क्योंकि सक्रियता

मन को भटकाना चाहती है। सक्रियता फिर-फिर तुम्हारा ध्यान चाहती है। भटको मत। अंतराल पर स्थिर रहो, और कृत्य को मत रोको; कृत्य को चलने दो। तुम्हारे अस्तित्व के दो तल हो जाएंगे—करना और होना।

हमारे अस्तित्व के दो तल हैं: करने का जगत और होने का जगत, परिधि और

केंद्र। सतह पर, परिधि पर कार्य करते रहो; उसे रोको मत। लेकिन केंद्र पर भी सजगतापूर्वक कार्य करते रहो। उससे क्या होगा? तुम्हारा कृत्य एक अभिनय हो जाएगा जैसे कि तुम किसी नाटक के पात्र हो।

यदि इस विधि का अभ्यास किया जाए तो तुम्हारा पूरा जीवन एक लंबा नाटक बन

जाएगा। तुम अभिनय के एक पात्र बन कर अभिनय करते रहोगे, परंतु अंतराल में भी सतत केंद्रित रहोगे। यदि तुम अंतराल को भूल जाओ, तो तुम अभिनय नहीं कर रहे; तब तुम कर्ता हो गए। फिर यह एक नाटक न रहा। तुमने इसे गलती से जीवन समझ लिया। हमने यही किया है। हर व्यक्ति यही समझता है कि वह जीवन जी रहा है। यह जीवन नहीं है। यह तो बस एक अभिनय है जो समाज ने, घटनाओं ने, संस्कृति ने, परंपरा ने, देश ने, परिस्थिति

ने तुम्हें करने को दिया है। तुम्हें एक अभिनय दिया गया है, तुम उसे खेल रहे हो; तुमने उससे तादात्म्य बना लिया है। उस तादात्म्य को तोड़ने के लिए, इस विधि का उपयोग करो।

यह विधि इसीलिए है कि तुम स्वयं को एक मनोनाट्य बना लो—मात्र एक खेल बना लो। तुम दो श्वासों के बीच अंतराल पर केंद्रित रहो, और परिधि पर जीवन चलता रहे। यदि तुम्हारा पूरा होश केंद्र पर है तो फिर मुख्य होश परिधि पर नहीं

होगा; वहां होश का एक अंश मात्र होगा। संसार तुम्हारे होश के समीप ही कहीं घटता है। तुम उसे महसूस कर सकते हो, तुम्हें उसका बोध हो सकता है, लेकिन अब परिधि की घटना महत्वपूर्ण न रही। वह तो ऐसा है जैसे तुम्हारे साथ घटित ही न हो रहा। मैं इसे दोहराता हूँ: यदि तुम इस विधि को साधते हो तो तुम्हारा पूरा जीवन ऐसे हो जाएगा जैसे तुम्हारे साथ नहीं घट रहा हो—जैसे किसी और के साथ घट रहा हो।⁵

शि व ने कहा: ललाट के मध्य में अस्पृश्य श्वास को, प्राण को टिकाओ। जब निद्रा के क्षण में वह हृदय तक पहुंच जाएगा तब स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।

इस विधि को तीन हिस्सों में लो। पहले, तुम श्वास में प्राण को, उसके अस्पृश्य अंश को, अदृश्य अंश को, अभौतिक ऊर्जा को अनुभव करने में

स्वप्न पर स्वामित्व

सक्षम होओ। यह अनुभूति होती है जब तुम्हारा होश दोनों भौहों के मध्य स्थित होता है। फिर वह अनुभूति सरलता से हो जाती है। यदि तुम अंतराल के प्रति सजग होओ, तब भी वह अनुभूति होती है, लेकिन थोड़ी कम सरलता से। यदि तुम नाभिकेंद्र के प्रति सजग हो जाओ जहां आकर श्वास छूती है और बाहर लौट

जाती है, तब भी अनुभूति होगी, परंतु कम सरलता से। श्वास के अदृश्य अंश को जान लेने की सरलतम अवस्था है तृतीय नेत्र पर केंद्रित हो जाना। लेकिन तुम कहीं भी केंद्रित हो जाओ, तो वह अनुभूति होती है। तुम प्राण को भीतर की ओर बहता महसूस करने लगते हो।

भीतर आती श्वास और बाहर जाती

श्वास तो एक से ही वाहन हैं, परंतु भीतर आती श्वास प्राण से भरी होती है और बाहर जाती श्वास रिक्त होती है: तुमने प्राणों को पी लिया, और श्वास रिक्त हो गई।

यह सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण है: “ललाट के मध्य में अस्पृश्य श्वास को, प्राण को टिकाओ। जब निद्रा के क्षण में वह हृदय

तक पहुँच जाएगा तब स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।” जब तुम्हें नींद आने लगे तो उस विधि का अभ्यास करना है—केवल तभी करना है, किसी अन्य समय पर नहीं। जब तुम्हें नींद आने लगे, तभी। वही क्षण इस विधि के अभ्यास के लिए उचित है। तुम नींद में उतर रहे हो। धीरे-धीरे नींद तुम पर आविष्ट हो रही है। कुछ ही क्षणों में, तुम्हारी चेतना विलीन हो जाएगी; तुम जाग्रत न रह जाओगे। इससे पहले कि वह क्षण आए, सजग हो जाओ—श्वास और उसके अदृश्य अंश, प्राण, के प्रति सजग हो जाओ, और उसे हृदय तक आता हुआ महसूस करो।

यदि यह हो जाए—कि तुम अदृश्य श्वास को हृदय में आता महसूस कर रहे हो और नींद तुम पर आविष्ट हो जाए—तो तुम स्वप्न में भी सजग रहोगे। तुम्हें इसका बोध होगा कि तुम स्वप्न देख रहे हो। साधारणतया हम नहीं जानते कि हम स्वप्न देख रहे हैं। जब तुम स्वप्न देखते हो तब तुम सोचते हो कि यह यथार्थ है। वह भी तृतीय नेत्र के कारण ही होता है। तुमने किसी सोए हुए व्यक्ति को देखा? उसकी आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं और तृतीय नेत्र पर केंद्रित हो जाती हैं।

तृतीय नेत्र पर केंद्रित होने के कारण ही तुम स्वप्नों को यथार्थ मानने लगते हो; तुम यह महसूस ही नहीं कर सकते कि वे स्वप्न हैं। वे यथार्थ हो जाते हैं। सुबह जब तुम जागोगे तभी तुम्हें पता चलेगा कि “मैं स्वप्न देख रहा था।” लेकिन यह अनुभूति और निष्पत्ति बाद की है। स्वप्न में तुम नहीं जान सकते कि तुम स्वप्न देख रहे हो। यदि तुम यह जान लो, तो दो तल हो गए: स्वप्न तो चल रहा है, परंतु तुम जागे हुए हो, सजग हो। जो व्यक्ति स्वप्न में भी जाग जाता है उसके लिए यह सूत्र अदभुत है। यह कहता है, “तब स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।”

यदि तुम स्वप्नों के प्रति सजग हो सको, तो तुम स्वप्न निर्मित भी कर सकते हो। साधारणतया तुम स्वप्न निर्मित नहीं कर सकते। मनुष्य कितना नपुंसक है! तुम स्वप्न तक निर्मित नहीं कर सकते। तुम स्वप्न निर्मित ही नहीं कर सकते। यदि तुम किसी विशेष चीज का स्वप्न देखना चाहो, तो नहीं देख सकते; यह तुम्हारे हाथों में नहीं है। मनुष्य कितना शक्तिविहीन है! स्वप्न तक निर्मित नहीं किए जा सकते। तुम तो बस स्वप्नों के एक शिकार हो, उनके निर्माता नहीं। स्वप्न तुम पर घटता है; तुम कुछ भी नहीं कर सकते। न ही तुम

उसे रोक सकते हो, न ही निर्मित कर सकते हो।

परंतु यदि तुम इस स्मरण के साथ सोओ कि हृदय प्राण से भर रहा है, हर श्वास के साथ प्राण उसे छू जाते हैं, तो तुम अपने स्वप्नों के स्वामी हो जाओगे—और यह स्वामित्व अपूर्व है। फिर तुम जो स्वप्न चाहो देख सकते हो। बस सोते समय इतना खयाल रखो कि “मुझे यह स्वप्न देखना है,” और तुम्हें वही स्वप्न आएगा। सोते समय बस इतना ही कहो कि, “मुझे फलों का स्वप्न नहीं देखना है,” और वह स्वप्न तुम्हारे मन में प्रवेश नहीं कर सकता।

लेकिन स्वप्न-प्रक्रिया के स्वामी हो जाने का क्या उपयोग है? क्या यह व्यर्थ नहीं है? नहीं, यह व्यर्थ नहीं है। एक बार तुम अपने स्वप्नों के स्वामी हो जाओ तो फिर तुम्हें कभी कोई स्वप्न नहीं आएगा। वह व्यर्थ हो जाता है। जब तुम अपने स्वप्नों के स्वामी हो जाते हो तो स्वप्न-प्रक्रिया रुक जाती है। अब उसका कोई उपयोग न रहा। और जब स्वप्न-प्रक्रिया रुक जाती है तब तुम्हारी नींद का एक बिलकुल ही अलग गुणधर्म होता है, और उसका गुणधर्म वही हो जाता है जो मृत्यु का है।⁶

प तंजलि कहते हैं: बारी-बारी से श्वास बाहर निकालने और रोकने द्वारा भी मन शांत होता है।

जब कभी तुम अनुभव करते हो कि मन शांत नहीं, वह तनावपूर्ण है, चिंतित है, शोर से भरा है, निरंतर सपने देख रहा है, तो एक काम करना—पहले गहरी श्वास छोड़ना। सदा प्रारंभ करना श्वास छोड़ने द्वारा ही। जितना हो सके उतनी गहराई से

मनोदशाओं को बाहर फेंकना

श्वास छोड़ना; वायु बाहर फेंक देना। वायु बाहर फेंकने के साथ ही मनोदशा भी बाहर फेंक दी जाएगी, क्योंकि श्वसन ही सब कुछ है।

जितना संभव हो श्वास को बाहर निकाल देना। पेट को भीतर खींचना और उसी तरह बने रहना कुछ सैकेंड के लिए, श्वास मत लेना। फिर शरीर को श्वास लेने देना। गहराई से श्वास भीतर लेना,

जितना तुमसे हो सके। फिर दोबारा उठर जाना कुछ सैकेंड के लिए। यह अंतराल उतना ही होना चाहिए जितना श्वास छोड़ने के बाद तुम बनाए रखते हो। यदि तुम श्वास छोड़ने के बाद तीन सैकेंड के लिए रुकते हो, तो श्वास को भीतर लेकर भी तीन सैकेंड के लिए रुको। श्वास बाहर फेंको और रुके रहो तीन सैकेंड तक; श्वास भीतर लो और रुके रहो तीन सैकेंड

तक। लेकिन श्वास पूर्णतया बाहर फेंक देना होता है। समग्रता से श्वास छोड़ो और समग्रता से श्वास लो, और एक लय बना लो। श्वास खींचने के बाद रुके रहना; श्वास छोड़ने के बाद रुके रहना। तुरंत तुम अनुभव करोगे कि एक परिवर्तन तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व में उतर रहा है। वह मनोदशा जा चुकी होगी। एक नई आबोहवा तुममें प्रवेश कर चुकी होगी। 7

हृदय को खोलना

हृदय सत्य का द्वाररहित द्वार है। बुद्धि से हृदय पर लौट आओ। हम सब बुद्धि में अटके हुए हैं। यही हमारी समस्या है, एकमात्र यही समस्या है। और इसका एक ही समाधान है: बुद्धि से हृदय पर उतर आओ, और सभी समस्याएं समाप्त हो जाती हैं। वे बुद्धि से ही निर्मित होती हैं। और अचानक सब कुछ इतना स्पष्ट और इतना पारदर्शी हो उठता है कि व्यक्ति चकित रह जाता है कि कैसे वह लगातार समस्याएं आविष्कृत करता जा रहा था।

रहस्य तो बने रहते हैं परंतु समस्याएं विलीन हो जाती हैं। रहस्य तो भरपूर रहते हैं, परंतु समस्याएं वाष्पीभूत हो जाती हैं। और रहस्य सुंदर हैं। उन्हें सुलझाना नहीं है। उन्हें जीना है।।

ध्यान की विधियां

पहला सूत्र: सिरविहीन होने का प्रयास करो। स्वयं के सिरविहीन होने की कल्पना करो; सिरविहीन होकर ही चलो। सुनने में यह अजीब लगता है, परंतु यह बहुत ही महत्वपूर्ण साधनाओं में से एक है। इसका प्रयोग करो, तब तुम जानोगे। चलो, और यह अनुभव करो जैसे कि तुम्हारा कोई सिर नहीं है। प्रारंभ में तो यह 'जैसे कि' ही होगा। यह बहुत अटपटा लगेगा। जब तुम्हें यह महसूस

बुद्धि से हृदय की ओर

होगा कि तुम्हारा सिर ही नहीं है, तो बड़ा अटपटा और अजीब लगेगा। लेकिन धीरे-धीरे तुम हृदय में स्थित हो जाओगे।

एक नियम है। शायद तुमने देखा हो, जो व्यक्ति अंधा है उसके कान अधिक तत्पर, अधिक संगीतमय होते हैं। अंधे व्यक्ति अधिक संगीतमय होते हैं; संगीत के लिए उनकी अनुभूति गहनतर होती है। क्यों? जो ऊर्जा सामान्यतः आंखों से बहती है, अब उनसे तो बह नहीं सकती, तो वह

एक भिन्न मार्ग चुन लेती है—वह कानों से बहने लगती है।

अंधे लोगों में स्पर्श के प्रति ज्यादा गहरी संवेदनशीलता होती है। यदि कोई अंधा व्यक्ति तुम्हें छुए, तो तुम्हें अंतर पता चलेगा, क्योंकि सामान्यतः छूने का बहुत-सा कार्य हम आंखों से ही कर लेते हैं: हम एक-दूसरे को आंखों से छू रहे हैं। एक अंधा व्यक्ति आंखों से नहीं छू सकता, तो ऊर्जा उसके हाथों से होकर

बहती है। अंधा व्यक्ति आंखों वाले किसी भी व्यक्ति से अधिक संवेदनशील होता है। कभी-कभी हो सकता है कि ऐसा न भी हो, परंतु सामान्य रूप से ऐसा ही होता है। यदि एक केंद्र न हो तो ऊर्जा दूसरे केंद्र से बहने लगती है।

तो इस प्रयोग को—सिरविहीन होने के प्रयोग को—करके देखो जो मैं बता रहा हूँ, और अचानक तुम एक अदभुत बात अनुभव करोगे: ऐसा होगा जैसे पहली

बार तुम हृदय पर आए। सिरविहीन होकर चलो। ध्यान के लिए बैठो, अपनी आंखें बंद करो और बस यही अनुभव करो कि सिर नहीं है। महसूस करो, “मेरा सिर विलीन हो गया है।” प्रारंभ में तो यह ‘जैसे कि’ ही होगा, परंतु धीरे-धीरे तुम्हें लगेगा कि सिर सच में ही विलीन हो गया है। और जब तुम्हें लगेगा कि सिर विलीन हो गया है, तो तुम्हारा केंद्र हृदय पर आ जाएगा—तत्क्षण! तुम संसार को हृदय से देखोगे, बुद्धि से नहीं।

जब पहली बार पश्चिम के लोग जापान पहुंचे, तो वे विश्वास नहीं कर पाए कि जापानी लोग पारंपरिक रूप में सदियों से यह सोचते रहे हैं कि वे पेट से सोचते हैं। यदि तुम किसी जापानी बच्चे से पूछो—यदि वह पाश्चात्य ढंग से शिक्षित नहीं हुआ है—कि “तुम्हारा सोच-विचार कहाँ होता है?” तो वह अपने पेट की ओर इशारा करेगा।

सदियाँ और सदियाँ बीत गई हैं, और जापान सिर के बिना जीता रहा है। यह मात्र एक धारणा है। यदि मैं तुमसे पूछूँ, “तुम्हारा सोच-विचार कहाँ चल रहा है?” तो तुम सिर की ओर इशारा करोगे, लेकिन जापानी व्यक्ति पेट की ओर इशारा करेगा, सिर की ओर नहीं—यह भी एक कारण है कि जापानी मन इतना स्थिर, शांत और निश्चल है।

अब वह भी भंग हो गया है क्योंकि पश्चिम हर चीज पर फैल गया है। अब पूरब कहीं है ही नहीं! पूरब तो अब कुछ ही इक्का-दुक्का लोगों में बच रहा है जो

द्वीपों की तरह कहीं-कहीं मिल जाते हैं। भौगोलिक रूप से पूरब समाप्त हो गया है। अब तो पूरा विश्व ही पाश्चात्य है।

सिरविहीन होने का प्रयास करो। अपने स्नानगृह में दर्पण के सामने खड़े होकर ध्यान करो। अपनी आंखों में गहरे झांकी और महसूस करो कि तुम हृदय से देख रहे हो। धीरे-धीरे हृदय-केंद्र सक्रिय हो जाएगा। और जब हृदय सक्रिय हो जाता है, तो तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व, पूरी संरचना, पूरे तौर-तरीके को बदल डालता है, क्योंकि हृदय का अपना अलग मार्ग है।

तो पहली बात: सिरविहीन होने का प्रयास करो। दूसरे, अधिक प्रेमपूर्ण होओ, क्योंकि प्रेम बुद्धि से नहीं हो सकता। अधिक प्रेमपूर्ण हो जाओ! यही कारण है, जब कोई प्रेम में होता है, उसकी बुद्धि छूट जाती है। लोग कहते हैं कि वह पागल हो गया है। यदि तुम प्रेम में पड़ो और पागल न हो जाओ, तो तुम वास्तव में प्रेम में नहीं हो। बुद्धि तो खोनी ही होगी। यदि बुद्धि अप्रभावित रहे, और यथावत कार्य करती रहे, तो प्रेम संभव नहीं है, क्योंकि प्रेम के लिए तो हृदय के सक्रिय होने की जरूरत है—बुद्धि की नहीं। वह हृदय का कार्य है।

ऐसा होता है, जब कोई बहुत बौद्धिक व्यक्ति प्रेम में पड़ता है, तब वह बुद्ध हो जाता है। उसे स्वयं ही लगता है कि वह क्या बेवकूफी, क्या मूढ़ता कर रहा है। वह कर क्या रहा है! फिर वह अपने जीवन के दो हिस्से बना लेता है; वह एक विभाजन खड़ा कर लेता है। हृदय एक मौन और

अंतरंग प्रसंग बन जाता है। जब वह घर से बाहर निकलता है, तो अपने हृदय से भी बाहर निकल जाता है। संसार में वह बुद्धि से जीता है और हृदय पर तभी उतरता है जब प्रेम कर रहा होता है। लेकिन यह बहुत कठिन है। यह बहुत ही कठिन है, और साधारणतः ऐसा होता ही नहीं।

कलकत्ता में मैं एक मित्र के घर ठहरा हुआ था, और वह मित्र हाइकोर्ट के एक जज थे। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा, “बस एक ही समस्या मैं आपको कहना चाहती हूँ। क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?”

तो मैंने पूछा, “समस्या क्या है?”

वह बोली, “मेरे पति आपके मित्र हैं। वे आपको प्रेम करते हैं, और आपका आदर करते हैं, यदि आप उनसे कुछ कहें तो शायद कुछ लाभ हो।”

तो मैंने पूछा, “क्या कहना है? मुझे बताओ।”

वह बोली, “वे बिस्तर में भी हाइकोर्ट के जज बने रहते हैं। मुझे तो किसी प्रेमी, किसी मित्र, किसी पति का कभी अनुभव ही नहीं हुआ। वे दिन में चौबीस घंटे हाइकोर्ट के जज बने रहते हैं।

यह कठिन है: अपने ऊंचे स्थान से नीचे उतर आना कठिन है। वह एक जड़ दृष्टिकोण बन जाता है। यदि तुम एक व्यापारी हो, तो बिस्तर में भी व्यापारी ही बने रहोगे। भीतर दो व्यक्तियों को एक साथ रख पाना कठिन है, और यह सरल नहीं है कि अपने तौर-तरीके तुम जब चाहो, तत्क्षण पूरी तरह बदल डालो। यह कठिन है, लेकिन यदि तुम प्रेम में हो तो

हृदय की खोलना

बुद्धि से नीचे उतरना ही पड़ेगा।

तो इस ध्यान के लिए अधिकाधिक प्रेमपूर्ण होने का प्रयास करो। और जब मैं कहता हूँ अधिक प्रेमपूर्ण हो जाओ, तो मेरा अर्थ है—अपने संबंध की गुणवत्ता बदल डालो: उसे प्रेम पर आधारित होने दो। न केवल अपनी पत्नी के या बच्चे के या मित्र के प्रति वरन जीवन मात्र के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाओ। इसीलिए तो बुद्ध और महावीर अहिंसा पर बोले: जीवन के प्रति एक प्रेमपूर्ण दृष्टिकोण पैदा करने के लिए।

जब महावीर चलते हैं, कदम रखते हैं, तो इतने सजग रहते हैं कि एक चींटी भी न मर जाए। क्यों? वास्तव में, चींटी का प्रश्न नहीं है। महावीर बुद्धि से हृदय पर उतर रहे हैं, जीवन मात्र के प्रति प्रेमपूर्ण

दृष्टिकोण निर्मित कर रहे हैं। जितने ही तुम्हारे संबंध प्रेम पर आधारित होंगे, उतना ही तुम्हारा हृदय केंद्र सक्रिय होगा। वह कार्य करने लगेगा, तुम संसार को भिन्न आंखों से देखोगे: क्योंकि हृदय के पास संसार को देखने का अपना अलग ढंग है। मन उस प्रकार कभी भी नहीं देख सकता: मन के लिए यह असंभव ही है। मन तो केवल विश्लेषण कर सकता है। हृदय संश्लेषण करता है; मन केवल विभक्त और विभाजित कर सकता है। मन एक विभाजक है। केवल हृदय ही संयुक्त करता है।

जब तुम हृदय से देखते हो तो पूरा ब्रह्मांड एक संयुक्त इकाई की भांति दिखाई पड़ता है। जब तुम मन से देखते हो तो सारा संसार आणविक हो जाता है। कोई

ऐक्य नहीं: बस अणु और अणु और अणु। हृदय एकता का अनुभव देता है। वह जोड़ता जाता है और परम संश्लेषण होता है परमात्मा। यदि तुम हृदय से देख सको, तो पूरा ब्रह्मांड एक ही नजर आता है। वह एकता ही परमात्मा है।

यही कारण है कि विज्ञान कभी भी परमात्मा को नहीं खोज सकता। यह असंभव है, क्योंकि विज्ञान जिस विधि का उपयोग करता है वह परम ऐक्य तक नहीं पहुंच सकता। विज्ञान की विधि है तर्क, विश्लेषण, विभाजन। तो विज्ञान अणुओं, परमाणुओं और इलेक्ट्रॉन तक पहुंच जाता है, और वे भी विभाजित होते चले जाएंगे। वे कभी भी समग्रता की जीवंत इकाई तक नहीं पहुंच पाएंगे। समग्र को बुद्धि से देख पाना असंभव है।²

अच्छा हो कि यह प्रार्थना रात में करो। कमरे में अंधेरा कर लो और उसके तुरंत बाद सो जाओ। या सुबह भी इसे किया जा सकता है, परंतु उसके बाद पंद्रह मिनट का विश्राम जरूर करना चाहिए। वह विश्राम अनिवार्य है, अन्यथा तुम्हें लगेगा कि तुम नशे में हो, तंद्रा में हो।

ऊर्जा में यह निमज्जन ही प्रार्थना है। यह प्रार्थना तुम्हें बदल डालती है। और जब तुम बदलते हो, तो पूरा अस्तित्व भी बदल जाता है।

प्रार्थना ध्यान

दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा लो, हथेलियाँ खुली हुई हों और सिर सीधा उठा हुआ रहे। अनुभव करो कि अस्तित्व तुममें प्रवाहित हो रहा है।

जैसे ही ऊर्जा तुम्हारी बाहों से होकर नीचे बहेगी, तुम्हें हलके-हलके कंपन का अनुभव होगा—तुम हवा में कंपते हुए पत्ते की भांति हो जाओ। उस कंपन को होने दो, उसका सहयोग करो। फिर पूरे शरीर को ऊर्जा से स्पंदित हो जाने दो, और जो होता हो उसे होने दो।

अब पृथ्वी के साथ प्रवाहित होने का अनुभव करो। पृथ्वी और स्वर्ग, ऊपर और नीचे, यिन और यांग, पुरुष और स्त्री—तुम बहो, तुम घुलो, तुम स्वयं को पूरी तरह छोड़ दो। तुम नहीं हो। तुम एक हो जाओ, निमज्जित हो जाओ।

दो या तीन मिनट बाद, या जब भी तुम पूरी तरह भरे हुए अनुभव करो, तब तुम धरती की ओर झुक जाओ और हथेलियों और माथे से उसे स्पर्श करो। तुम तो बस वाहन बन जाओ कि दिव्य ऊर्जा का पृथ्वी

की ऊर्जा से मिलन हो सके।

इन दोनों चरणों को छह बार और दोहराओ ताकि सभी चक्र खुल सकें। इन्हें अधिक बार किया जा सकता है, लेकिन कम करोगे तो बेचैन अनुभव करोगे और सो नहीं पाओगे।

प्रार्थना की उस भावदशा में ही सोओ। बस सो जाओ और ऊर्जा बनी रहेगी। नींद में उतरते-उतरते भी तुम उस ऊर्जा के साथ बहते रहोगे। यह गहन रूप से सहयोगी होगा क्योंकि फिर ऊर्जा तुम्हें सारी रात घेरे

हृदय को खोलना

रहेगी और भीतर कार्य करती रहेगी। सुबह होते-होते तुम इतने ज्यादा ताजे, इतने ज्यादा प्राणवान अनुभव करोगे, जितना

तुमने पहले कभी भी अनुभव नहीं किया था। एक नई सजीवता, एक नया जीवन तुममें प्रवेश करने लगेगा, और पूरे दिन

तुम एक नई ऊर्जा से भरे अनुभव करोगे; एक नई तरंग होगी, हृदय में एक नया गीत और पैरों में एक नया नृत्य होगा।³

शि व ने कहा: किसी आरामदेह मुद्रा में दोनों कांखों के मध्यक्षेत्र (वक्षस्थल) में धीरे-धीरे परिव्याप्त हो जाओ—और फिर गहन शांति।

यह एक अत्यंत सरल विधि है परंतु चमत्कारिक ढंग से कार्य करती है—इसे करके देखो। और कोई भी इसे कर सकता है, इसमें कोई खतरा नहीं है। किसी आरामदेह स्थिति में: पहली बात यह है

शांत हृदय

कि किसी विश्रामपूर्ण मुद्रा में आ जाओ—सहज, जो भी तुम्हारे लिए सहज हो। तो किसी विशेष मुद्रा या आसन में बैठने का प्रयास मत करो। बुद्ध एक निश्चित मुद्रा में बैठते हैं। वह उनके लिए सहज है। वह तुम्हारे लिए भी सरल हो सकती है यदि कुछ समय तुम उसका अभ्यास कर लो, लेकिन शुरू में वह तुम्हारे लिए सरल न होगी। और उसका अभ्यास करने की कोई जरूरत नहीं है:

किसी भी ऐसी शारीरिक स्थिति से शुरू कर दो जो तुम्हारे लिए सरल हो। उसके लिए संघर्ष मत करो। तुम किसी आरामकुर्सी पर बैठकर विश्राम कर सकते हो। बस इतना ही हो कि तुम्हारा शरीर विश्रान्त अवस्था में रहे।

अब अपनी आंखें बंद कर लो और पूरे शरीर को अनुभव करो। पैरों से शुरू करो। महसूस करो कि कहीं उनमें कोई तनाव तो नहीं है। यदि तुम्हें लगे कि कहीं कोई तनाव

है तो एक काम करो: उसे और तनावयुक्त कर दो। यदि तुम्हें लगे कि पैर में, दाएं पैर में तनाव है तो तनाव को जितना हो सके ज्यादा सघन कर लो। उसे शिखर पर ले जाओ और फिर अचानक ढीला छोड़ दो ताकि तुम महसूस कर सको कि कैसे वहां विश्राम उतरता है। फिर पूरे शरीर में खोजो कि कहीं तनाव तो नहीं है। जहां भी तुम्हें लगे कि तनाव है, वहां और ज्यादा तनाव डालो, क्योंकि जब तनाव सघन होता है,

तब उसे शिथिल करना सरल होता है। बीच की अवस्था में विश्रांति होना बहुत कठिन होता है क्योंकि तुम उसे महसूस ही नहीं कर पाते।

एक अति से दूसरी अति पर जाना बहुत सरल होता है क्योंकि एक अति ही दूसरी अति पर जाने के लिए परिस्थिति पैदा करती है। तो यदि तुम्हें चेहरे में कोई तनाव महसूस हो तो चेहरे की मांसपेशियों को जितना खींच सको खींचो, तनाव पैदा करो और उसे एक शिखर पर ले आओ। उसे ऐसे बिंदु पर ले आओ जहां तुम्हें लगे कि अब और तनाव संभव ही नहीं है—फिर अचानक ढीला छोड़ दो। तो देख लो कि शरीर के सभी हिस्से, सभी अंग विश्रांति हो गए हैं।

चेहरे की मांसपेशियों पर विशेष ध्यान दो, क्योंकि वे तुम्हारे नब्बे प्रतिशत तनावों को ढोती हैं—बाकी शरीर में दस प्रतिशत तनाव ही हैं, क्योंकि सब तनाव तुम्हारे मस्तिष्क में ही हैं इसलिए तुम्हारा चेहरा उनका भंडारघर बन जाता है। तो अपने चेहरे को जितना हो सके खींचो, इसमें शरमाओ मत। उसे पूरी तरह संतापयुक्त, विषादग्रस्त कर लो—और फिर अचानक ढीला छोड़ दो। पांच मिनट यह करो ताकि तुम महसूस कर सको कि अब पूरा शरीर, प्रत्येक अंग विश्रांति हो गया है।

तुम इसे बिस्तर पर लेटे-लेटे भी कर सकते हो, और बैठ कर भी—जैसा भी तुम्हें लगे कि तुम्हारे लिए सरल है।

दूसरी बात: जब तुम्हें लगे कि शरीर किसी सहज मुद्रा में आ गया है, तो फिर

उस पर बहुत तूल मत दो। बस अनुभव करो कि शरीर शिथिल हो गया है, फिर शरीर को भूल जाओ। क्योंकि वास्तव में शरीर को स्मरण रखना भी एक प्रकार का तनाव है। इसीलिए मैं कहता हूं कि उसको बहुत तूल मत दो। शरीर को शिथिल करो और उसको भूल जाओ। उसको भूल जाना ही विश्राम है, क्योंकि जब भी तुम किसी अंग का बहुत स्मरण करते हो, तो वह स्मरण मात्र ही शरीर में तनाव ले आता है।

फिर अपनी आंखें बंद कर लो और दोनों कांखों के मध्य में, हृदय क्षेत्र को, वक्षस्थल को अनुभव करो। पहले उसे अनुभव करो: ठीक दोनों कांखों के मध्य में अपना पूरा होश, अपनी पूरी सजगता ले आओ। पूरे शरीर को भूल जाओ, बस दो कांखों के बीच हृदय क्षेत्र को अनुभव करो, और उसे अपार शांति से भरा हुआ महसूस करो।

जिस क्षण शरीर शिथिल होता है, शांति स्वतः ही तुम्हारे हृदय में घटित हो जाती है। हृदय शांत, शिथिल, लयबद्ध हो जाता है। और जब तुम पूरे शरीर को भूल कर अपना पूरा होश बस वक्षस्थल पर ही ले आते हो और उसे शांति से भरा हुआ महसूस करते हो तो तत्क्षण अपार शांति घटित होगी।

शरीर में दो क्षेत्र हैं, दो ऐसे निश्चित केंद्र हैं जहां सजग रूप से निश्चित भावदशाएं निर्मित की जा सकती हैं। दो कांखों के बीच में हृदय का केंद्र है, और हृदय का केंद्र उस सारी शांति का स्रोत है जो तुम्हें घटती है—जब भी घटे। जब भी तुम शांत होते हो, वह शांति हृदय से आ

रही है। हृदय शांति को विकीर्ण करता है। तभी तो संसार भर में सभी लोगों ने—चाहे वे किसी वंश, धर्म, देश के हों, सुसंस्कृत हों कि असंस्कृत हों, किसी जाति के हों—यही अनुभव किया है कि प्रेम कहीं हृदय के पास से उठता है। विज्ञान की ओर से इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

तो जब भी तुम प्रेम के विषय में सोचते हो, तुम्हें हृदय का खयाल आता है। वास्तव में, जब भी तुम प्रेम में होते हो तो तुम विश्रामपूर्ण होते हो, और क्योंकि तुम विश्रामपूर्ण होते हो इसलिए एक निश्चित शांति से भर जाते हो। और वह शांति हृदय से उठती है। इसीलिए शांति और प्रेम आपस में जुड़ गए हैं, संबद्ध हो गए हैं। जब भी तुम प्रेम में होते हो तो शांत होते हो; और जब प्रेम में नहीं होते तो अशांत होते हो। शांति के कारण हृदय प्रेम से संबद्ध हो गया है।

तो तुम दो काम कर सकते हो: या तो प्रेम की खोज करो, तब तुम कभी-कभी शांति का अनुभव करोगे। लेकिन मार्ग खतरनाक है, क्योंकि वह दूसरा व्यक्ति जिसे तुम प्रेम करते हो वह तुमसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया। दूसरा तो दूसरा ही है, और अब तुम एक प्रकार से आश्रित हो रहे हो। तो प्रेम तुम्हें कभी-कभी तो शांति देगा, परंतु हमेशा नहीं। बहुत से उपद्रव होंगे, दुख और विषाद के बहुत से क्षण होंगे, क्योंकि दूसरा प्रवेश कर गया और जहां भी दूसरा प्रवेश कर जाता है वहां कुछ उपद्रव तो होंगे ही क्योंकि दूसरे से तुम

परिधि पर ही मिल सकते हो, और परिधि अशांत ही होगी। कभी-कभार ही—बिना संघर्ष के जब तुम दोनों गहन प्रेम में होओगे—तो कभी-कभार ही तुम विश्रांत होओगे और हृदय शांति से दीप्तिमान होगा।

तो प्रेम तुम्हें शांति की कुछ झलकें ही दे सकता है लेकिन शांति में स्थापित नहीं कर सकता, जड़ें नहीं दे सकता। उससे कोई शाश्वत शांति संभव नहीं है, झलकें ही संभव हैं। और शांति की दो झलकों के बीच संघर्ष, हिंसा, घृणा और क्रोध की गहरी खाइयाँ होंगी।

दूसरा उपाय है प्रेम के माध्यम से शांति को खोजने की अपेक्षा शांति को सीधे ही खोजना। यदि तुम शांति को सीधे ही खोज सको—और उसी के लिए यह विधि है—तो तुम्हारा जीवन प्रेम से भर जाएगा। लेकिन अब प्रेम की गुणवत्ता भिन्न होगी। वह कब्जा नहीं जमाएगा; वह किसी एक व्यक्ति पर केंद्रित नहीं होगा। वह किसी पर आश्रित नहीं होगा, और न ही किसी को स्वयं पर आश्रित करेगा। तुम्हारा प्रेम बस एक प्रेमभाव, एक करुणा, एक गहन समानुभूति बन जाएगा।

और अब कोई भी, कोई प्रेमी भी तुम्हें अशांत नहीं कर सकता, क्योंकि तुम्हारी शांति जड़ें ले चुकी है और तुम्हारा प्रेम तुम्हारी अंतःशांति की छाया की भांति आएगा। पूरी बात उलट गई: बुद्ध भी प्रेम करते हैं लेकिन उनका प्रेम कोई व्यथा नहीं है। तुम यदि प्रेम करो तो दुख झेलोगे, प्रेम न करो तो दुख झेलोगे। तुम प्रेम न करो तो

उसकी अनुपस्थिति से पीड़ित होओगे; और प्रेम करो तो प्रेम की उपस्थिति से पीड़ित होओगे। तुम परिधि पर जी रहे हो और जो भी करोगे वह तुम्हें क्षणिक संतुष्टि ही दे सकता है, फिर अंधेरी खाइयाँ आ जाएंगी।

हृदय स्वाभाविक रूप से शांति का स्रोत है, तो वहां तुम कुछ निर्मित नहीं कर रहे हो। तुम तो ऐसे स्रोत पर पहुंच रहे हो जो सदा से ही मौजूद है। और यह कल्पना तुम्हारा यह बोध जगाने में ही सहायक होगी कि हृदय शांति से भरा हुआ है, ऐसा नहीं कि यह कल्पना ही शांति पैदा करेगी। तंत्र और पाश्चात्य सम्मोहन के दृष्टिकोण में यही भेद है: सम्मोहनविद सोचता है कि कल्पना से तुम कुछ पैदा कर रहे हो; तंत्र का मानना है कि तुम कुछ पैदा नहीं कर रहे हो—कल्पना के द्वारा तुम बस उससे जुड़ रहे हो जो पहले से ही मौजूद है। कल्पना से तुम जो भी पैदा कर सको वह स्थायी नहीं हो सकता। यदि वह वास्तविकता नहीं है तो झूठा हुआ, अवास्तविक हुआ—और तुम एक भ्रम पैदा कर रहे हो।

इसे करके देखो: जब भी तुम दोनों कांखों के बीच अपने हृदय केंद्र में शांति को परिव्याप्त होता महसूस कर पाओगे, तो संसार तुम्हें माया लगेगा। जब संसार माया लगे, तो यह संकेत है कि तुम ध्यान में प्रवेश कर गए। ऐसा सोचो मत कि जगत माया है; सोचने की कोई जरूरत नहीं है—तुम अनुभव करोगे। अचानक तुम्हारे मन में यह भाव उठेगा कि “संसार

को हो क्या गया है?” संसार अचानक स्वप्निल, स्वप्नवत हो गया। संसार है तो अभी भी, परंतु, बिना किसी सारतत्व के—जैसे परदे पर फिल्म चलती है। वह कितना वास्तविक लगता है! वह त्रि-आवामी भी हो सकता है—परंतु दिखता ऐसे है जैसे प्रक्षेपित हो। ऐसा नहीं कि जगत कोई प्रक्षेपित वस्तु है, ऐसा नहीं कि संसार अवास्तविक है—नहीं। संसार वास्तविक है परंतु तुम दूरी कर लेते हो, और दूरी बड़ी से बड़ी होती जाती है। और दूरी बढ़ रही है या नहीं, यह तुम इससे जान सकते हो कि जगत के प्रति अब तुम कैसा अनुभव करते हो। यही कसौटी है। यह सत्य नहीं है कि संसार अवास्तविक है—यह तो ध्यान की कसौटी है। यदि संसार अवास्तविक हो गया, तो तुम स्वसत्ता में केंद्रित हो गए हो। अब परिधि और तुम इतनी दूर-दूर हो गए हो कि तुम परिधि की ओर इस प्रकार देख सकते हो जैसे वह कोई भिन्न विषय हो, तुमसे अन्यथा हो। तुम उससे एकरूप नहीं हो।

यह विधि बहुत सरल है और तुम इसका अभ्यास करो तो बहुत समय नहीं लेगी। इस विधि के साथ तो कई बार ऐसा भी होता है कि पहले ही प्रयास में तुम्हें इसके सौंदर्य और चमत्कार की अनुभूति होगी। तो इसे करके देखो। लेकिन पहले ही प्रयास में यदि तुम कुछ अनुभव नहीं कर पा रहे तो हताश मत होओ। प्रतीक्षा करो, और प्रयोग जारी रखो। और यह उतना सरल है कि तुम किसी भी समय कर सकते हो। रात बिस्तर में लेटे-लेटे ही तुम

इसे कर सकते हो; सुबह जैसे ही तुम्हें लगे कि तुम जाग गए तो भी इसे कर सकते हो। पहले यह प्रयोग करो और फिर उठो, दस मिनट भी पर्याप्त होंगे—या रात सोने से पहले दस मिनट कर लो। संसार को अवास्तविक कर लो, और तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी—शायद इस प्रकार तुम पहले कभी सोए ही न होओ। यदि सोने से पहले संसार अवास्तविक हो जाए तो स्वप्न कम होंगे क्योंकि यदि संसार ही स्वप्न हो जाए, तो स्वप्न जारी नहीं रह सकते। और यदि संसार अवास्तविक हो, तो तुम बिल्कुल विश्रान्त हो जाते हो, अन्यथा संसार की वास्तविकता तुम पर आक्रमण करती रहती है, चोट करती रहती है।

जहां तक मैं जानता हूं—यह विधि मैंने ऐसे कई लोगों को सुझाई है जो अनिद्रा से पीड़ित हैं—और यह गहन रूप से कारगर है। यदि संसार अवास्तविक हो, तो तनाव तिरोहित हो जाते हैं। और यदि तुम परिधि से केंद्र की ओर बढ़ सको, तो तुम निद्रा की गहन अवस्था में प्रवेश कर जाओगे—इससे पहले कि नींद आए तुम

स्वयं ही उसमें गहरे चले जाओगे। और सुबह अत्यंत सुंदर अनुभव होता है क्योंकि तुम ताजे और युवा हो गए और केंद्र से परिधि पर लौटती हुई पूरी ऊर्जा स्पंदित हो रही है।

जिस क्षण तुम्हें बोध हो कि नींद समाप्त हो गई, पहले अपनी आंखें मत खोलो। पहले यह प्रयोग करो; पूरी रात सोने के बाद शरीर विश्रामपूर्ण हो गया है, ताजा और जीवंत अनुभव कर रहा है, तो दस मिनट के लिए यह प्रयोग करो, तभी अपनी आंखें खोलो। शिथिल हो जाओ। तुम पहले से ही शिथिल हो; इसमें बहुत समय नहीं लगेगा। बस शिथिल हो जाओ। अपनी चेतना को दोनों कांखों के बीच हृदय पर ले आओ: उसे गहन शांति से भरा अनुभव करो। दस मिनट के लिए उसी शांति में रहो, फिर अपनी आंखें खोलो। और संसार बिल्कुल भिन्न नजर आएगा क्योंकि वह शांति तुम्हारी आंखों से भी विकिरणित होगी। और सारे दिन तुम भिन्न ही अनुभव करोगे—न केवल भिन्न अनुभव करोगे, बल्कि तुम्हें लगेगा कि लोग भी अलग ढंग से व्यवहार कर रहे हैं।

हर संबंध में तुम कुछ योगदान देते हो। यदि तुम्हारा योगदान न हो, तो लोग अलग ढंग से व्यवहार करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि तुम एक भिन्न व्यक्ति हो। शायद उन्हें इसका बोध भी न हो। लेकिन जब तुम शांति से भर जाते हो तो सभी तुमसे अलग ढंग से व्यवहार करते हैं। वे अधिक प्रेमपूर्ण और सहृदय हो जाएंगे, कम प्रतिरोधी होंगे, अधिक खुल जाएंगे, करीब आ जाएंगे। तुममें चुंबक आ गया। शांति चुंबक है। जब तुम शांत होते हो तो लोग तुम्हारे करीब आ जाते हैं; जब तुम अशांत होते हो तो सभी विकर्षित होते हैं। यह घटना इतनी ठोस है कि तुम सरलता से इसे देख सकते हो। जब भी तुम शांत होते हो तो तुम्हें लगता है कि सब तुम्हारे समीप आना चाहते हैं क्योंकि वह शांति विकिरणित होती है, वह तुम्हारे इर्द-गिर्द की तरंग बन जाती है। शांति के वर्तुल तुम्हारे चारों ओर घूमते हैं और जो भी पास आता है वह तुम्हारे और करीब होना चाहता है—जैसे वृक्ष की छाया देखकर तुम्हें लगता है उसके नीचे जाकर विश्राम करें।⁴

शिव ने कहा: हे भगवती,
जब इंद्रियां हृदय में विलय
हो जाएं तब कमल के केंद्र पर पहुंचो।

तो इस विधि में करना क्या है? “जब
इंद्रियां हृदय में विलय हो जाएं...” प्रयोग
करके देखो! कई उपाय संभव हैं। तुम
किसी व्यक्ति को स्पर्श करो: यदि तुम

हृदय का केंद्रीकरण

हृदयोन्मुख व्यक्ति हो तो स्पर्श तत्क्षण
तुम्हारे हृदय पर पहुंच जाता है, और तुम
उसकी गुणवत्ता महसूस कर सकते हो।
यदि तुम किसी ऐसे व्यक्ति का हाथ अपने
हाथ में लो जो बुद्धि की ओर उन्मुख हो,
तो उसका हाथ ठंडा होगा—शारीरिक रूप
से ही नहीं, उसका आंतरिक गुण भी ठंडा
होगा। उसके हाथ में एक तरह का
मुरदापन होगा। यदि व्यक्ति हृदयोन्मुख
हो, तो उसके हाथ में एक उष्मा होती है।

तब उसका हाथ तुम्हारे साथ पिघलने
लगेगा। तुम्हें लगेगा उसके हाथ में से
तुम्हारी ओर कुछ बह रहा है, और एक
मिलन होगा, उष्मा का एक संवाद होगा।

यह उष्मा हृदय से आती है। वह कभी
मस्तिष्क से नहीं उठ सकती क्योंकि
मस्तिष्क सदा ठंडा और हिसाबी होता है।
हृदय उष्म होता है, गैर-हिसाबी होता है।
मस्तिष्क सदा यही सोचता है कि कैसे और
ज्यादा लिया जाए, और हृदय को लगता है

कि कैसे और ज्यादा दें। वह उष्मा तो बस
एक दान है—ऊर्जा का दान, अंतर्तर्गों
का दान, जीवन का दान। इसीलिए तुम
उसमें एक भिन्न गुणवत्ता का अनुभव करते
हो। यदि वह व्यक्ति तुम्हें सच ही
आलिङ्गन में ले तो तुम्हें उसके साथ
पिघलने का गहन अनुभव होगा।

स्पर्श करो! अपनी आंखें बंद कर लो;
कुछ भी छुओ। अपने प्रेमी या प्रेमिका को
छुओ, अपने बच्चे को या अपनी मां को

छुओ, या किसी मित्र को, या किसी वृक्ष, किसी फूल को छुओ, या धरती को ही छुओ। अपनी आंखें बंद कर लो और अपने हृदय और धरती के बीच, या प्रेमिका के बीच एक आदान-प्रदान अनुभव करो। बस यह अनुभव करो कि तुम्हारा हाथ पृथ्वी को छूने के लिए आगे बढ़ा हुआ तुम्हारा हृदय है। स्पर्श की अनुभूति को हृदय से संबद्ध हो जाने दो।

जब संगीत को सुनो, तो उसे सिर से मत सुनो। अपने सिर को भूल जाओ और महसूस करो कि तुम सिरविहीन हो। सिर है ही नहीं। यह अच्छा होगा कि तुम अपने शयनकक्ष में बिना सिर की अपनी कोई तस्वीर लगा लो। उसे एकाग्र होकर देखो : तुम बिना सिर के हो; सिर को वापस प्रवेश ही मत करने दो। संगीत सुनो, तो हृदय से सुनो। अनुभव करो कि संगीत तुम्हारे हृदय पर पहुंच रहा है; अपने हृदय को उससे स्पंदित होने दो। अपनी इंद्रियों को हृदय से जुड़ जाने दो, बुद्धि से नहीं। हर इंद्रिय के साथ यह प्रयोग करो, और यह अनुभव करो कि हर इंद्रिय हृदय पर पहुंच रही है और उसमें विलीन हो रही है।

“हे भगवती, जब इंद्रियां हृदय में

विलीन हो जाएं तब कमल के केंद्र पर पहुंचो।” हृदय ही कमल है। हर इंद्रिय कमल की पांखुरी मात्र है। पहले हर इंद्रिय को हृदय से जोड़ने का प्रयास करो। दूसरे, सदा यह सोचो कि हर इंद्रिय गहरे में जाकर हृदय में पहुंच जाती है और उसमें विलीन हो जाती है। जब ये दो बातें हो जाएं, केवल तभी तुम्हारी इंद्रियां तुम्हें सहयोग देना शुरू करेंगी : वे तुम्हें हृदय तक ले जाएंगी, और तुम्हारा हृदय एक कमल बन जाएगा।

यह हृदय-कमल तुम्हें एक केंद्रीकरण देगा। एक बार तुम हृदय के केंद्र को जान जाओ तो नाभि-केंद्र पर उतर आना बहुत सरल हो जाता है। फिर यह बहुत ही सरल है! वास्तव में, यह सूत्र इसका उल्लेख नहीं करता; उसकी जरूरत भी नहीं है। यदि तुम वास्तव में ही पूरी तरह हृदय में लीन हो जाओ, और बुद्धि कार्य करना बंद कर दे, तो तुम नीचे उतर आओगे। हृदय से नाभि की ओर जाने का द्वार खुल जाता है। बुद्धि से नाभि की ओर जा पाना ही कठिन है। या, यदि तुम बुद्धि और हृदय दोनों के बीच में हो, तो भी नाभि की ओर जाना कठिन है। एक बार तुम नाभि में

लीन हो जाओ तो अचानक तुम हृदय के पार चले जाते हो—तुम नाभि केंद्र पर उतर आए जो कि मूलभूत है—मौलिक है।

यदि तुम्हें लगे कि तुम हृदयोन्मुख व्यक्ति हो, तो यह विधि तुम्हारे लिए अत्यंत सहायक होगी। परंतु भली-भांति जान लो कि हर व्यक्ति अपने आपको यही धोखा देने का प्रयास कर रहा है कि वह हृदयोन्मुख है। हर कोई यही महसूस करना चाहता है कि वह बड़ा प्रेमपूर्ण और भावात्मक व्यक्ति है, क्योंकि प्रेम ऐसी बुनियादी जरूरत है कि जब किसी को लगे कि उसमें प्रेम नहीं है, उसका हृदय प्रेमपूर्ण नहीं है तो वह चैन से नहीं बैठ सकता। तो हर व्यक्ति सोचता और मानता चला जाता है, परंतु मान्यता काम नहीं देगी। बिल्कुल निरपेक्ष होकर देखो, जैसे किसी और को देख रहे हो, और तभी निर्णय लो—क्योंकि स्वयं को धोखा देने की कोई जरूरत नहीं है और उससे कोई लाभ भी न होगा। यदि तुम स्वयं को धोखा दे भी लो, तो विधि को धोखा नहीं दे सकते। तो जब तुम इस विधि को करोगे, तब महसूस करोगे कि कुछ भी नहीं हो रहा है। 5

अतीशा ने कहा: एक ही समय में जुड़ने, देने और ग्रहण करने में प्रशिक्षित होओ। श्वास पर आरुढ़ होकर ऐसा करो।

अतीशा कहते हैं: करुणावान होना शुरू करो। और उसकी विधि है, जब तुम श्वास लो—ध्यान से सुनो, यह महानतम विधियों में से है—जब श्वास लो तो सोचो कि तुम संसार के सभी लोगों के सभी दुख पी रहे हो, तो जितना भी

अतीशा की हृदय विधि

अंधकार है, जितने भी नकार हैं, जितने भी नर्क हैं, तुम उन सब को पी रहे हो। और इसे अपने हृदय में लीन हो जाने दो।

तुमने पश्चिम के विधायक चितकों के विषय में पढ़ा या सुना होगा। वे इससे बिल्कुल विपरीत बात कहते हैं—वे नहीं जानते वे क्या कह रहे हैं। वे कहते हैं, “जब तुम श्वास छोड़ो, तो उसके साथ अपने सभी दुख और नकार बाहर निकाल दो। और जब श्वास लो तो आनंद, विधायकता, सुख और प्रफुल्लता को

भीतर लो।”

अतीशा की विधि बिल्कुल विपरीत है: जब तुम श्वास लो तो संसार के अतीत, वर्तमान और भविष्य के सभी प्राणियों के दुख और पीड़ाएं पी लो।

और जब श्वास छोड़ो, तो अपने सारे सुख, अपने सारे आनंद, अपनी सारी धन्यता बाहर छोड़ो। श्वास छोड़ो तो स्वयं को अस्तित्व में उंडेल दो। यही करुणा की विधि है: सभी दुख पी लो और सभी आशीष उंडेल दो।

और इसे करो तो तुम चकित होओगे। जिस क्षण तुम संसार के सभी दुख भीतर ले लेते हो, वे दुख नहीं रहते। हृदय तत्क्षण ऊर्जा को रूपांतरित कर देता है। हृदय रूपांतरण की शक्ति है: दुख को पियो, और वह आनंद में रूपांतरित हो जाता है... फिर उसे बाहर उंडेल दो।

एक बार तुम जान जाओ कि तुम्हारा हृदय यह जादू, यह चमत्कार कर सकता है, तो तुम इसे फिर-फिर करना चाहोगे। इसे करके देखो। यह सबसे व्यावहारिक

विधियों में से है, सरल है और तात्कालिक परिणाम लाती है। इसे आज ही करो, और देखो। ६

स्वयं से शुरू करो

अतीशा कहते हैं: ग्रहण करने की क्षमता का विकास स्वयं से ही शुरू करो।

अतीशा कहते हैं: इससे पहले कि तुम यह प्रयोग पूरे अस्तित्व के साथ कर सको, तुम्हें पहले स्वयं से ही शुरू करना होगा। यह अंतर्विकास के बुनियादी रहस्यों में से एक है। दूसरों के साथ तुम वह कर ही नहीं सकते जो तुमने पहले स्वयं के साथ न कर लिया हो। तुम दूसरों को तभी पीड़ा दे सकते हो यदि स्वयं को पीड़ा देते हो, तुम दूसरों के लिए तभी एक 'सिरदर्द' बन सकते हो जब तुम स्वयं अपने लिए एक 'सिरदर्द' होओ, और दूसरों के लिए आशीष भी तुम तभी बन सकते हो यदि तुम स्वयं के लिए एक आशीष हो।

दूसरों के साथ तुम जो भी कर सकते हो, वह जरूर तुमने पहले अपने साथ किया होगा, क्योंकि वही तो तुम बांट सकते हो। तुम वही बांट सकते हो जो तुम्हारे पास है; जो तुम्हारे पास नहीं है वह तुम नहीं बांट सकते। अतीशा कहते हैं: "ग्रहण करने की क्षमता का विकास स्वयं से ही शुरू करो।"

संसार के सारे दुखों को लेकर अपने

हृदय में पीने की अपेक्षा अपने ही दुख से शुरू करो। गहरे सागर में इतनी जल्दी मत जाओ; पहले उथले पानी में तैरना सीखो। और यदि तुम एकदम से ही पूरे अस्तित्व के दुख लेने लगते हो तो वह मात्र काल्पनिक प्रयोग ही रह जाएगा। वह वास्तविक नहीं होगा, वह वास्तविक नहीं हो सकता। वह शाब्दिक ही होगा।

तुम स्वयं को कह सकते हो, "हां, मैं पूरे संसार के दुख ले रहा हूँ" —लेकिन पूरे संसार के दुखों के बारे में तुम जानते क्या हो? तुमने तो अभी अपने दुख का भी अनुभव नहीं किया है।

हम अपने दुख को ही टालते रहते हैं। तुम यदि दुखी होते हो तो रेडियो या टेलीविजन चला लेते हो और व्यस्त हो जाते हो। तुम अखबार पढ़ने लगते हो ताकि अपने दुख को भूल सको या तुम फिल्म देखने चले जाते हो, या अपनी प्रेमिका के पास, या अपने प्रेमी के पास चले जाते हो। तुम क्लब चले जाते हो, बाजार में खरीददारी करने चले जाते हो, ताकि बस किसी तरह अपने को अपने आप से ही दूर रख सको, ताकि तुम्हें घाव को देखना न पड़े, ताकि तुम्हें यह न देखना पड़े कि भीतर कितना दुखता है।

लोग अपने आप को ही टालते चले जाते हैं। दुख के बारे में तुम जानते क्या हो? तुम पूरे अस्तित्व के दुख की सोच भी कैसे सकते हो?

पहले तुम्हें स्वयं से ही शुरू करना होगा। यदि तुम दुखी हो रहे हो, तो इसे एक ध्यान बन जाने दो। मौन बैठ जाओ,

द्वार बंद कर लो। पहले दुख को जितनी सघनता से हो सके अनुभव करो। पीड़ा को महसूस करो। किसी ने तुम्हारा अपमान किया है; अब, पीड़ा से बचने का सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि तुम जाकर उसका अपमान करो, ताकि तुम उसके साथ व्यस्त हो जाओ। यह ध्यान नहीं है।

यदि किसी ने तुम्हारा अपमान किया है, तो उसके प्रति धन्यवाद से भरो कि उसने तुम्हें एक गहरे घाव को महसूस करने का अवसर दिया। उसने तुम्हारे एक गहरे घाव को खोल दिया। हो सकता है वह घाव तुम्हारे जीवन भर में झेले गए अपमानों से निर्मित हुआ हो। हो सकता है वह सारी पीड़ा का कारण न हो, वह बस एक प्रक्रिया शुरू होने के लिए निमित्त ही बना हो।

बस अपना कमरा बंद कर लो, मौन बैठ जाओ, उस व्यक्ति के प्रति क्रोध मत रखो बल्कि वह भाव जो तुममें उठ रहा है उसके प्रति सजग हो रहो—वह पीड़ा का भाव कि तुम्हें अस्वीकृत कर दिया गया, कि तुम्हें अपमानित कर दिया गया। और फिर तुम चकित होओगे कि अब एक वही व्यक्ति नहीं है वरन तुम्हारी स्मृति में वे सभी पुरुष और सभी स्त्रियाँ और वे सभी लोग आने लगेंगे जिन्होंने कभी भी तुम्हारा अपमान किया होगा।

तुम उन्हें न केवल स्मरण करने लगोगे वरन तुम उन्हें फिर से जीने लगोगे। तुम एक प्रकार के गहन ग्रंथि-विसर्जन (प्राइमल) में चले जाओगे।

दुख को अनुभव करो, पीड़ा को अनुभव करो, उससे बचो मत।

इसीलिए तो कई ध्यान-चिकित्साओं (थैरेपीज) में रोगी को कहा जाता है कि चिकित्सा शुरू होने से पहले वह कोई मादक द्रव्य न ले क्योंकि मादक द्रव्य आंतरिक दुख से भागने के उपाय हैं। वे तुम्हें तुम्हारे भावों को नहीं देखने देते, उन्हें दबा देते हैं। वे तुम्हें तुम्हारी पीड़ा में नहीं जाने देते और जब तक तुम अपनी पीड़ा में न जाओ, तुम उनके कारागृह से मुक्त नहीं हो सकते।

यह बिल्कुल वैज्ञानिक है कि समूह चिकित्सा से पहले सभी मादक द्रव्य छोड़ दिए जाएं—यदि संभव हो तो कॉफी, चाय और धूम्रपान इत्यादि भी छोड़ देने चाहिए, क्योंकि वे सभी बचने के उपाय हैं।

तुमने कभी देखा? जब भी तुम घबड़ाए होते हो तो तत्क्षण धूम्रपान शुरू कर देते हो। यह घबड़ाहट से बचने का एक उपाय है: तुम धूम्रपान में व्यस्त हो जाते हो। वास्तव में यह पीछे लौटना हो गया। धूम्रपान तुम्हें फिर से शिशुवत हो जाने की अनुभूति देता है—चिंतारहित, उत्तरदायित्व मुक्त—क्योंकि सिगरेट और कुछ नहीं बस प्रतीकात्मक स्तन है। भीतर जाता हुआ गरम धुआं तुम्हें उन दिनों में वापस ले जाता है जब तुम मां के स्तनों से पोषण ले रहे थे और उष्ण दूध तुममें भीतर जाता था: स्तनाग्र अब सिगरेट बन गया है। सिगरेट एक प्रतीकात्मक स्तन है।

पीछे लौटकर तुम वयस्क होने की जिम्मेदारियों और पीड़ाओं से बच जाते

हो। और अनेकानेक मादक द्रव्यों से यही होता रहता है। आधुनिक मनुष्य इतने मादक द्रव्य ले रहा है जितने कभी नहीं लिए गए, क्योंकि आधुनिक मनुष्य बड़ी पीड़ा में जी रहा है। मादक द्रव्यों के बिना इतनी पीड़ा में जी पाना असंभव ही हो जाएगा। वे मादक द्रव्य एक अवरोध खड़ा कर देते हैं, वे तुम्हें नशे में रखते हैं, वे तुम्हें इतना संवेदनशील नहीं रहने देते कि तुम अपनी पीड़ा को जान सको।

पहला काम तो यह करो कि अपने द्वार बंद कर लो और किसी भी प्रकार की व्यस्तता को हटा दो: चाहे टेलीविजन देखना हो, कि रेडियो सुनना हो, कि पुस्तक पढ़ना हो। सभी काम बंद कर दो क्योंकि वह भी एक प्रकार का सूक्ष्म नशा है। बस शांत हो रहो—नितांत अकेले। प्रार्थना भी मत करो, क्योंकि वह भी एक नशा है, तुम व्यस्त होने लगे—तुम परमात्मा से बात करने लगते हो, प्रार्थना करने लगते हो, स्वयं से बचकर भाग जाते हो।

अतीशा कह रहे हैं: बस स्वयं हो रहो। उसमें जो भी पीड़ा हो और जो भी विषाद हो, उसे होने दो। पहले इसे इसकी पूर्ण सघनता में अनुभव करो। यह कठिन होगा, हृदय-विदारक होगा: शायद तुम एक बच्चे की तरह रोने लगे, शायद तुम गहन पीड़ा में धरती पर लोटने लगे, तुम्हारा शरीर शायद विभिन्न आकृतियाँ लेने लगे। हो सकता है अचानक तुम सजग हो जाओ कि पीड़ा केवल हृदय में ही नहीं है, पूरे शरीर में है—कि पूरा शरीर

दुख रहा है, कि उसमें ऊपर से नीचे तक पीड़ा है, कि तुम्हारा पूरा शरीर ही पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यदि तुम उसका अनुभव कर सको—इसका बड़ा महत्व है—तब उसे अवशोषित करना शुरू करो। उसे बाहर मत फेंको। वह इतनी मूल्यवान ऊर्जा है, कि उसे फेंको मत। उसे पचाओ, उसे पीओ, उसे स्वीकार करो, उसका स्वागत करो, उसके प्रति अनुगृहीत होओ। और स्वयं को ही कहो, इस बार मैं इसे टालूंगा नहीं, इस बार मैं इसे अस्वीकृत नहीं करूंगा, इस बार मैं इसे दूर नहीं फेंकूंगा। इस बार तो मैं इसे पीऊंगा और एक अतिथि की भांति इसका स्वागत करूंगा। इस बार मैं इसे पचा लूंगा।”

हो सकता है इसमें कुछ दिन लग जाए कि तुम इसे पचा सको, लेकिन जिस दिन यह होता है, तुम ऐसे द्वार पर आ खड़े होते हो जो तुम्हें बहुत-बहुत दूर ले जाएगा। तुम्हारे जीवन में एक नई यात्रा शुरू हो गई, तुम एक नए प्रकार की सत्ता में प्रवेश कर रहे हो—क्योंकि जिस क्षण तुम पीड़ा को बिना किसी अस्वीकार के स्वीकृत कर लेते हो, तत्क्षण ही उसकी ऊर्जा और गुणवत्ता बदल जाती है। वह पीड़ा नहीं रहती।

वास्तव में व्यक्ति चकित रह जाता है, यह घटना इतनी अविश्वसनीय है कि विश्वास ही नहीं हो पाता। कोई विश्वास ही नहीं कर सकता कि विषाद को आनंद में बदला जा सकता है, कि पीड़ा को आह्लाद में बदला जा सकता है।⁷

आंतरिक केंद्रीकरण

केंद्र के बिना कोई भी नहीं रह सकता। उसका निर्माण नहीं करना है बस उसका पुनर्आविष्कार कर लेना है। वह परम सारतत्व जो तुम्हारा स्वभाव है, जो प्रभु-प्रदत्त है, वही केंद्र है। व्यक्तित्व परिधि है जिसे समाज ने प्रयासपूर्वक निर्मित किया है; वह प्रभु-प्रदत्त नहीं है। वह पोषण से आया है, स्वभाव से नहीं।

ध्यान की विधियां

एक सूफी फकीर जो अपने जीवन भर आनंदित रहा—किसी ने भी उसे कभी दुखी नहीं देखा—वह सदा हंसता रहता था। वह हंसी ही था, उसका पूरा होना ही उत्सव की सुवास थी। अपनी वृद्धावस्था में, मरते समय, मृत्यु-शैया पर वह मृत्यु का भी आनंद ले रहा था, मजे से हंस रहा था—एक शिष्य ने पूछा; “आप हमें हैरान करते हैं। अब आप मर रहे हैं, तो हंस क्यों

दुखी या सुखी होने का निर्णय

रहे हैं? इसमें हंसी की क्या बात है? हम तो इतने दुखी हैं! आपके जीवन में हम आपसे कई बार पूछना चाहते थे कि आप कभी दुखी क्यों नहीं होते। लेकिन अब, मृत्यु का सामना करते हुए तो व्यक्ति को दुखी होना चाहिए। आप अभी भी हंस रहे हैं! आप हंस कैसे पा रहे हैं?”

तो उस वृद्ध ने कहा, “यह एक छोटा-सा राज है। मैंने अपने गुरु से पूछा

था। जब युवा था तो मैं अपने गुरु के पास गया था; मैं सत्रह वर्ष का ही था, और दुखी हो चुका था। और मेरे गुरु वृद्ध थे, सत्तर वर्ष के थे, और वे एक वृक्ष के नीचे बैठे अकारण ही हंस रहे थे। कोई और वहां नहीं था, कुछ भी हुआ नहीं था, किसी ने कोई चुटकुला वगैरह नहीं सुनाया। और वे बस अपना पेट पकड़े हंसे जा रहे थे। तो मैंने उनसे पूछा, आपके

साथ क्या मामला है? आप पागल हैं या क्या हैं?”

“वे बोले, ‘एक दिन मैं भी तुम्हारे जितना ही दुखी था। फिर यह बात मुझे समझ आई कि यह मेरा ही चुनाव है, यह मेरा जीवन है।’

“उस दिन से, हर सुबह जब मैं उठता हूँ, पहला निर्णय मैं यह लेता हूँ कि अपनी आंखें खोलने से पहले मैं स्वयं से ही

पूछता हूँ, 'अब्दुल्लाह'—यह उसका नाम था—'तुम क्या चाहते हो? दुख? आनंद? आज तुम क्या चुनने वाले हो?' और ऐसा होता है कि मैं हमेशा ही आनंद को चुनता हूँ।"

यह एक चुनाव है। इसे करके देखो। सुबह सबसे पहले जब तुम्हें लगे कि नींद समाप्त हुई, अपने से पूछो, "अब्दुल्लाह, एक और दिन मिल रहा है! क्या विचार है तुम्हारा? दुख चुनते हो या आनंद?"

और दुख को कौन चुनता है? और भला क्यों? और दुख इतना अस्वाभाविक है—जब तक तुम दुख में ही आनंद न लेने लगे, लेकिन तब भी तुम आनंद ही चुन रहे हो, दुख नहीं।²

शि व ने कहा: बहुत समय के बाद किसी मित्र को मिलने पर जो हर्ष होता है उस हर्ष में लीन होओ।

जब तुम किसी मित्र से मिलो और अचानक तुम्हारे हृदय में हर्ष उठे तो उस हर्ष पर अपने को एकाग्र करो। उस हर्ष को महसूस करो और हर्ष ही हो जाओ।

वास्तविक स्रोत की खोज

और तब हर्ष से भर कर बोधपूर्ण रहते हुए अपने मित्र को मिलो। मित्र को बस परिधि पर रहने दो और तुम अपने सुखभाव में केंद्रित रहो।

अन्य कई स्थितियों में भी यह किया जा सकता है। सूरज उग रहा है, और अचानक तुम अपने भीतर भी कुछ उगते हुए अनुभव करते हो। तब सूरज को भूल जाओ, उसे परिधि पर ही रहने दो। तुम उठती हुई ऊर्जा के अपने भाव में केंद्रित हो जाओ। जब तुम उस पर अपना बोध

डालोगे, तब वह भाव फैलने लगेगा। वह तुम्हारा पूरा शरीर, पूरा अस्तित्व ही बन जाएगा। और बस उसे देखने वाले ही मत बने रहो; उसमें विलीन हो जाओ। कुछ क्षण होते हैं जब तुम हर्ष, सुख और आनंद का अनुभव करते हो, लेकिन तुम उन्हें चूकते रहते हो क्योंकि तुम विषय-केंद्रित हो जाते हो।

जब भी प्रसन्नता आती है, तुम समझते हो कि वह बाहर से आ रही है। तुम किसी मित्र से मिले—स्वभावतः, ऐसा लगता है

कि सुख तुम्हारे मित्र से आ रहा है, उसे देखने के कारण आ रहा है। यह वास्तविक तथ्य नहीं है। सुख सदा तुम्हारे भीतर है। मित्र तो केवल परिस्थिति बन गया है। मित्र ने हर्ष को बाहर आने में सहयोग दिया, तुम्हें हर्ष को देखने में सहयोग दिया। और ऐसा हर्ष के साथ ही नहीं, वरन् हर चीज के साथ है: क्रोध के साथ, उदासी के साथ, दुःख के साथ, सुख के साथ, हर चीज के साथ ऐसा ही है। दूसरे तो केवल परिस्थिति हैं जिनमें तुम्हारे भीतर छिपी चीजें

अभिव्यक्त हो जाती हैं। वे कारण नहीं हैं; वे तुम्हारे भीतर कुछ उत्पन्न नहीं कर रहे। जो भी हो रहा है, तुम्हें ही हो रहा है। वह तो सदा से ही भीतर मौजूद रहा है; बस इतना ही हुआ है कि उस मित्र का मिलना एक परिस्थिति बन गया जिसमें छिपा हुआ जो था, वह खुले में आ गया—छिपे हुए स्रोत से बाहर निकल आया—वह प्रकट हो गया, व्यक्त हो गया।

जब भी ऐसा हो आंतरिक अनुभूति में केंद्रित बने रहो, और तब जीवन में हर चीज के प्रति तुम्हारा भिन्न ही दृष्टिकोण होगा।

नकारात्मक भावदशाओं के साथ भी ऐसा ही करो। जब क्रोध उठे तो उस व्यक्ति पर केंद्रित मत हो जाना जिसने क्रोध को जगाया है। उसे परिधि पर ही बना रहने दो। तुम क्रोध ही बन जाओ।

क्रोध को उसकी पूर्णता में अनुभव करो; भीतर उसे उठने दो। उसकी व्याख्या मत करो; मत कहो कि उस व्यक्ति ने क्रोध दिलाया है। उस व्यक्ति की निंदा मत करो। वह तो केवल परिस्थिति बन गया है। और उसके प्रति अनुगृहीत होओ कि उसने छिपी हुई चीज को खुले में लाने में तुम्हारी मदद की। उसने कहीं तुम पर चोट की, और एक धाव वहां छिपा था। अब तुम उसे जानते हो, इसलिए धाव ही बन जाओ।

नकारात्मक या विधायक, किसी भी भावदशा में, यह प्रयोग करो और तुममें अपूर्व परिवर्तन होगा। यदि भावदशा नकारात्मक होगी तो इस बोध के कारण कि वह तुम्हारे भीतर ही है, तुम उससे मुक्त हो जाओगे। यदि भावदशा विधायक होगी तो तुम स्वयं भावदशा ही बन

जाओगे। यदि आनंद होगा तो तुम आनंद ही बन जाओगे। यदि क्रोध होगा, तो क्रोध तिरोहित हो जाएगा।

नकारात्मक तथा विधायक भावदशाओं में यही भेद है: यदि तुम किसी भावदशा के प्रति सजग हो जाओ और तुम्हारे सजग होने से वह तिरोहित हो जाए, तो वह नकारात्मक है। यदि किसी भावदशा के प्रति तुम्हारे सजग होने से तुम वह भावदशा ही बन जाओ, यदि फिर वह भावदशा फैल जाए और तुम्हारी अंतः-सत्ता ही बन जाए, तो वह विधायक है। सजगता दोनों में भिन्न रूप से कार्य करती है। यदि भावदशा विषाक्त हो तो सजगता के द्वारा तुम उससे मुक्त हो जाते हो। यदि वह शुभ हो, आनंदमय हो, आह्लादपूर्ण हो, तो तुम वही बन जाते हो। सजगता उसे गहन कर देती है। ३

शि व ने कहा: तीव्र कामना
की मनोदशा में अनुद्विग्न
रहो।

जब कामना तुम्हें पकड़ती है, तुम
उद्विग्न हो जाते हो। निश्चित ही, यह
स्वाभाविक है। कामना तुम्हें पकड़ती है तो
तुम्हारा मन डोलने लगता है और
सतह पर बहुत-सी लहरें दौड़ने लगती हैं।
कामना तुम्हें खींचकर कहीं भविष्य में ले

इंशावात का केंद्र

जाती है; अतीत तुम्हें कहीं भविष्य में ले
जाता है। तुम उद्विग्न हो जाते हो: तुम चैन
में न रहे। इसलिए कामना एक व्याधि है,
एक तनाव है।

यह सूत्र कहता है, “तीव्र कामना की
मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।” लेकिन
अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? कामना का अर्थ
ही उद्वेग है। फिर अनुद्विग्न कैसे रहा
जाए—और वह भी कामना के तीव्रतम

क्षणों में। तुम्हें कुछ प्रयोग करने होंगे; तभी
तुम्हें इसका अभिप्राय समझ आएगा। तुम
क्रोध में हो: क्रोध ने तुम्हें पकड़ लिया है।
तुम क्षणिक रूप से पागल हो गए,
आविष्ट हो गए: तुम होश में नहीं रहे।
अचानक स्मरण करो कि अनुद्विग्न रहना
है—जैसे कि तुम वस्त्र उतार रहे हो।
भीतर, नग्न हो जाओ—क्रोध को उतारकर
नग्न हो जाओ। क्रोध तो रहेगा, लेकिन

अब तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो उद्विग्न
नहीं है।

तुम्हें बोध रहेगा कि परिधि पर क्रोध है।
बुखार की तरह वह मौजूद है। परिधि कांप
रही है; परिधि अशांत है, लेकिन तुम
उसको देख सकते हो। यदि तुम उसको
देख सको, तो शांत हो जाओगे। उसके
साक्षी हो जाओ और तुम शांत हो जाओगे।
यह शांत बिंदु ही तुम्हारा ‘मौलिक मन’ है।

'मौलिक मन' उद्विग्न नहीं हो सकता; वह कभी उद्विग्न नहीं होता। लेकिन तुमने कभी उसकी ओर देखा ही नहीं। जब क्रोध होता है तब तुम क्रोध से तादात्म्य बना लेते हो। तुम भूल जाते हो कि क्रोध तुमसे अन्यथा है। तुम उसके साथ एक हो जाते हो, और तुम उससे ही नियंत्रित होने लगते हो, उसके कराए ही कुछ करने लगते हो।

दो काम किए जा सकते हैं। क्रोध में तुम किसी के प्रति, अपने क्रोध के विषय के प्रति हिंसात्मक हो जाओगे, तब तुम दूसरे की ओर गति कर गए। क्रोध ने तुम्हारे और दूसरे के बीच जगह ले ली। यहां मैं हूँ, फिर क्रोध है, और फिर तुम हो—मेरे क्रोध के विषय। क्रोध से मैं दो आयामों में यात्रा कर सकता हूँ। या तो मैं तुम्हारी ओर जा सकता हूँ: तब तुम मेरी चेतना के केंद्र बन जाते हो, मेरे क्रोध के विषय बन जाते हो। तब मेरा मन केंद्रित हो गया तुम पर—जिसने मेरा अपमान किया। यह एक ढंग हुआ क्रोध से यात्रा करने का।

फिर एक और ढंग है: तुम अपनी ओर यात्रा कर सकते हो। तुम उस व्यक्ति की ओर नहीं जाते जिसने क्रोध दिलाया है, तुम उस व्यक्ति की ओर जाते हो जो क्रोधित हुआ; तुम विषय-वस्तु की ओर न जाकर स्वयं की ओर गति कर जाते हो।

साधारणतः हम विषय की ओर गति करते रहते हैं। यदि तुम विषय की ओर गति करो, तो मन का धूल-भरा हिस्सा उद्विग्न हो जाता है, और तुम्हें लगेगा, "मैं उद्विग्न हो गया।" यदि तुम अपनी अंतः-सत्ता के केंद्र में चले जाओ तो तुम

मन के धूल-भरे हिस्से के साक्षी हो सकोगे: तुम देख सकोगे कि मन का धूल-भरा हिस्सा तो उद्विग्न है, परंतु "मैं उद्विग्न नहीं हूँ"। और इस प्रयोग को तुम किसी भी कामना, किसी भी उद्देश्य के साथ कर सकते हो।

तुम्हारे मन में कामवासना जागती है; तुम्हारा पूरा शरीर उसकी पकड़ में आ जाता है: तुम यौन के विषय की ओर, कामना के विषय की ओर जा सकते हो। विषय वहां हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता। तुम कल्पना में भी विषय की ओर जा सकते हो, लेकिन तब तुम और भी उद्विग्न हो जाओगे। जितने तुम अपने केंद्र से दूर जाओगे, उतने ही ज्यादा उद्विग्न हो जाओगे। वास्तव में, दूरी और उद्देश्य सदा ही समानुपात में रहते हैं। जितने तुम केंद्र से दूर होते हो उतने ही उद्विग्न होते हो; और केंद्र के जितने करीब होते हो उतने ही कम उद्विग्न होते हो। और यदि तुम केंद्र पर ही हो, तो कोई उद्देश्य नहीं होता।

झंझावात में एक केंद्र होता है जो अकंप रहता है—क्रोध के झंझावात में, काम-वासना के झंझावात में, कामना के झंझावात में। ठीक केंद्र पर कोई झंझावात नहीं होता, और एक शांत केंद्र के बिना झंझावात भी नहीं हो सकता। क्रोध भी तुम्हारे भीतर किसी ऐसी चीज के बिना नहीं बना रह सकता जो क्रोध के पार हो।

इसे स्मरण रखो: अपने विपरीत के बिना कुछ भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। विपरीत अनिवार्य है। उसके बिना किसी चीज के होने की संभावना नहीं है। यदि

तुम्हारे भीतर ऐसा कोई केंद्र न होता जो अविचल बना रहे, तो किसी गति की संभावना न रहती। यदि तुम्हारे भीतर ऐसा कोई केंद्र न होता जो अनुद्विग्न बना रहे, तो तुम्हें कोई उद्देश्य नहीं घट सकता था। इसका विश्लेषण करो और इसे देखो। यदि तुम्हारे भीतर कोई नितांत अनुद्विग्न केंद्र न होता तो तुम कैसे यह महसूस कर सकते थे कि तुम उद्विग्न हो? तुम्हें कोई तुलना तो चाहिए न! तुम्हें तुलना के लिए दो बिंदु चाहिए।

मानो कोई व्यक्ति बीमार है: उसे बीमारी महसूस ही इसलिए होती है कि उसके भीतर पूर्ण स्वास्थ्य का एक केंद्र विराजमान है। इसीलिए वह तुलना कर सकता है। तुम कहते हो कि तुम्हारा सिर दुख रहा है: तुम इस पीड़ा, इस सिरदर्द को किस प्रकार जान लेते हो? यदि तुम ही सिरदर्द होते तो उसको न जान पाते। तुम जरूर कोई और हो, कुछ और हो—द्रष्टा, साक्षी, जो कह सकता है, "मेरा सिर दुख रहा है।"

यह सूत्र कहता है, "तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।" तुम क्या कर सकते हो? यह विधि दमन की नहीं है। यह विधि यह नहीं कह रही कि जब क्रोध उठे तो उसे दबा लो और शांत बने रहो—नहीं! यदि तुम दमन करोगे तो और उद्देश्य पैदा कर लोगे। यदि क्रोध उठे और उसे दबाने का कोई प्रयास हो तो अशांति दुगुनी हो जाएगी। जब क्रोध उठे, तो अपने द्वार बंद कर लो, क्रोध पर ध्यान करो, क्रोध को उठने दो। तुम शांत रहो, और

क्रोध का दमन भी मत करो।

दमन करना सरल है; अभिव्यक्त करना भी सरल है। हम दोनों बातें कर सकते हैं, यदि परिस्थिति अनुमति दे। और यदि यह सुविधाजनक हो, और हमारे लिए खतरनाक न हो तो हम अभिव्यक्त कर देते हैं। यदि तुम दूसरे को नुकसान पहुंचा सको और दूसरा तुम्हें नुकसान न पहुंचा सके, तो तुम क्रोध को अभिव्यक्त कर दोगे। यदि यह खतरनाक हो, यदि दूसरा तुम्हें अधिक नुकसान पहुंचा सकता हो, यदि तुम्हारा बॉस या जिस पर भी तुम क्रोधित हो, वह ज्यादा मजबूत है, तो तुम क्रोध को दबा लोगे।

अभिव्यक्ति और दमन दोनों सरल हैं: साक्षित्व कठिन है। साक्षित्व दोनों ही नहीं है। वह न तो दमन है, न अभिव्यक्ति है। वह अभिव्यक्ति इसलिए नहीं है क्योंकि तुम क्रोध को क्रोध के विषय पर अभिव्यक्त नहीं कर रहे हो। और न ही उसे दबा रहे हो। तुम उसे अभिव्यक्त होने दे रहे हो—शून्य में अभिव्यक्त होने दे रहे हो। तुम उस पर ध्यान कर रहे हो।

दर्पण के सामने खड़े हो जाओ और अपने क्रोध को अभिव्यक्त करो—और उसके साक्षी हो रहो। तुम अकेले हो, तो उस पर ध्यान कर सकते हो। जो भी करना चाहते हो करो, लेकिन शून्य में। यदि तुम किसी को पीटना चाहते थे तो रिक्त आकाश को पीट लो। यदि क्रोधित होना चाहते हो, तो क्रोधित हो लो; यदि चीखना चाहते हो, तो चीख लो। लेकिन अकेले ही करो, और स्वयं को उस बिंदु की भांति

स्मरण में रखो जो यह सब, यह सारा नाटक देख रहा है। फिर यह एक मनोनाट्य बन जाता है, और तुम उस पर हंस सकते हो। और वह तुम्हारे लिए एक गहन रेचन बन जाएगा। बाद में तुम्हें लगेगा कि तुमने उससे छुटकारा पा लिया—और न केवल छुटकारा पा लिया वरन तुमने उससे कुछ पाया भी। तुम प्रौढ़ हो गए होओगे, तुम्हारा विकास हो गया होगा। और अब तुम्हें पता होगा कि जब तुम क्रोध में भी थे तो तुम्हारे भीतर एक केंद्र था जो शांत था। अब इस केंद्र को उछाड़ने का और-और प्रयास करो, और कामना में उसे उछाड़ लेना सरल है।

यह विधि बहुत उपयोगी हो सकती है, और तुम्हें इससे बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन यह कठिन होगा क्योंकि जब तुम उद्विग्न होते हो तो सबकुछ भूल जाते हो। शायद तुम भूल ही जाओ कि तुम्हें ध्यान करना है। फिर इस प्रकार करके देखो: उस क्षण की प्रतीक्षा मत करो जब क्रोध उठे। उस क्षण की प्रतीक्षा मत करो! बस अपने कमरे का द्वार बंद कर लो, और क्रोध के किसी पूर्व अनुभव के विषय में सोचो जब तुम पागल हो गए थे। उसे याद करो, उसे फिर से दोहराओ। वह तुम्हारे लिए सरल होगा। उसे फिर से दोहराओ, फिर से करो, फिर से जिओ। उसे केवल स्मरण ही मत करो: फिर से जिओ। स्मरण करो कि किसी ने तुम्हारा अपमान किया था, और उसने क्या कहा था, और कैसे तुमने प्रतिक्रिया की थी। फिर से प्रतिक्रिया करो; उसे फिर से दोहराओ।

अतीत की किसी घटना का इस प्रकार फिर से अभिनय करना बहुत काम का होगा।

हर किसी के मन में खरोचें हैं, अनभरे धाव हैं। यदि तुम उन्हें फिर से दोहरा कर अभिनीत कर लो तो निर्भर हो जाओगे। यदि तुम अपने अतीत में जाकर और ऐसा कुछ कर सको जो अधूरा रह गया था, तो तुम अपने अतीत से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा मन ज्यादा ताजा हो जाएगा; धूल झड़ जाएगी। अपने अतीत की ऐसी किसी चीज का स्मरण करो जो तुम्हें लगता है कि अधूरी रह गई थी। किसी को तुम मार डालना चाहते थे, किसी को तुम प्रेम करना चाहते थे, तुम 'यह' चाहते थे और 'वह' चाहते थे, और वह सब अधूरा ही रह गया। वह अधूरी चीज मन पर बादलों की तरह मंडराती रहती है।

“तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो”: गुरजिएफ ने इस विधि का बहुत उपयोग किया। वह परिस्थितियां निर्मित कर देता था, लेकिन परिस्थितियां निर्मित करने के लिए एक ध्यान-विद्यालय की जरूरत है। तुम अकेले यह काम नहीं कर सकते। फोन्टेनब्लियु में गुरजिएफ का एक छोटा-सा ध्यान-विद्यालय था, और वह एक कठोर सद्गुरु था। वह जानता था कि कैसे परिस्थितियां निर्मित करनी हैं। तुम किसी कमरे में प्रवेश करते जहां कुछ लोग बैठे हैं, और कुछ ऐसी बात कर दी जाती कि तुम क्रोधित हो जाते। और यह इतने स्वाभाविक रूप से किया जाता कि तुम कभी कल्पना भी न कर पाते कि तुम्हारे लिए एक परिस्थिति निर्मित की गई है।

लेकिन यह एक युक्ति थी। कोई कुछ कहकर तुम्हारा अपमान कर देता और तुम अशांत हो जाते। फिर हर कोई तुम्हारी अशांति में सहयोग देता और तुम पागल हो जाते। और जब तुम ठीक उस क्षण पर पहुँच जाते जहाँ तुममें विस्फोट हो सकता, तो गुरजिएफ चिल्लाता, “स्मरण रखो! अनुद्विग्न बने रहो!”

तुम भी मदद कर सकते हो। तुम्हारा परिवार एक विद्यालय बन सकता है; तुम एक-दूसरे की मदद कर सकते हो। मित्र मिलकर एक विद्यालय बना सकते हैं और एक-दूसरे की मदद कर सकते हैं। तुम अपने परिवार के साथ यह निर्णय ले सकते हो। पूरा परिवार यह निर्णय ले सकता है कि अब पिता के लिए, या माँ के लिए कोई परिस्थिति निर्मित करनी है, और तब पूरा परिवार परिस्थिति निर्मित करने में जुट जाए। जब पिता या माँ बिल्कुल पागल ही हो जाए तो सभी हंसने लगें और कहें, “बिल्कुल शांत बने रहो।” तुम एक-दूसरे की मदद कर सकते हो, और बड़ा अद्भुत अनुभव होता है। एक बार तुम किसी उत्तप्त परिस्थिति में एक शीतल केंद्र को जान जाओ, तो तुम उसे भूल नहीं सकते। और फिर किसी भी उत्तप्त परिस्थिति में तुम उसका स्मरण कर सकते हो, उसे फिर से जीवंत कर सकते हो, उसे फिर से प्राप्त कर सकते हो।

पश्चिम में अब एक विधि, एक मनोचिकित्सा विधि का उपयोग होता है। उसे कहते हैं “मनोनाट्य”। वह सहयोगी है, और इसी प्रकार की विधि पर आधारित

है। मनोनाट्य में तुम केवल अभिनय करते हो, बस एक खेल खेलते हो।

प्रारंभ में वह केवल एक खेल ही होता है, लेकिन देर-अबेर तुम आविष्ट हो जाते हो। और जब तुम आविष्ट हो जाते हो तो तुम्हारा मन सक्रिय होने लगता है, क्योंकि तुम्हारा मन और तुम्हारा शरीर दोनों स्वचालित हैं; वे अपने आप से चलते हैं।

तो यदि तुम मनोनाट्य में किसी अभिनेता को अभिनय करते देखो, जो क्रोध की किसी परिस्थिति में वास्तव में ही क्रोधित हो जाए, तो शायद तुम सोचो कि वह मात्र अभिनय ही कर रहा है, परंतु ऐसा नहीं है। हो सकता है वह वास्तव में ही क्रोधित हो गया हो; शायद अब यह बिल्कुल भी अभिनय न हो। वह कामना से, उद्वेग से, भाव से, भावदशा से आविष्ट हो गया हो, और यदि वह सच में ही आविष्ट हो जाए, केवल तभी उसका अभिनय वास्तविक लगता है।

तुम्हारा शरीर तो नहीं जानता कि तुम अभिनय कर रहे हो या वास्तव में ही क्रोध कर रहे हो। शायद तुमने अपने जीवन में कभी देखा हो कि तुम क्रोध का अभिनय कर रहे थे, और तुम्हें पता भी नहीं चला कि कब क्रोध वास्तविक हो गया। या, तुम बस अभिनय कर रहे थे और कामवासना की कोई अनुभूति नहीं हो रही थी: तुम अपनी पत्नी के साथ, या अपनी प्रेमिका के साथ, या अपने पति के साथ अभिनय कर रहे थे, और अचानक यह वास्तविक हो गया। शरीर ने बागडोर संभाल ली।

शरीर को तो छला जा सकता है। शरीर

तो वास्तविक और अवास्तविक के भेद को जान नहीं सकता, विशेषतः कामवासना में। यदि तुम उसकी कल्पना भी करो, तो शरीर समझता है कि यह वास्तविक है। एक बार तुम कुछ करना शुरू कर दो, तो शरीर उसे वास्तविक समझ लेता है और वास्तविक ढंग से ही व्यवहार करने लगता है।

मनोनाट्य इसी प्रकार की विधियों पर आधारित एक पद्धति है। तुम क्रोधित नहीं हो: केवल क्रोधित होने का अभिनय कर रहे हो—और फिर तुम उसमें प्रवेश कर जाते हो। लेकिन मनोनाट्य सुंदर है क्योंकि तुम जानते हो कि तुम केवल अभिनय कर रहे हो। और फिर परिधि पर क्रोध वास्तविक हो जाता है, और ठीक उसके पीछे छिपे तुम उसे देख रहे हो। अब तुम जानते हो कि तुम उद्विग्न नहीं हो, लेकिन क्रोध मौजूद है, उद्वेग मौजूद है। उद्वेग है, और फिर भी उद्वेग नहीं है।

दो शक्तियों के एकसाथ कार्य करने की यह अनुभूति तुम्हें एक अतिक्रमण दे देती है, तब फिर वास्तविक क्रोध में भी तुम उसका अनुभव कर सकते हो। एक बार तुम जान जाओ कि उसे कैसे अनुभव करना है, तो वास्तविक परिस्थितियों में भी तुम उसका अनुभव कर सकते हो। इस विधि का उपयोग करो। यह तुम्हारे जीवन को पूर्णतः बदल देगी। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे अनुद्विग्न रहना है, तो संसार तुम्हारे लिए दुख नहीं रहता। फिर वास्तव में ही कोई चीज तुम्हें किसी संशय में नहीं डाल सकती, कोई चीज तुम्हें चोट

नहीं पहुंचा सकती। अब तुम्हारे लिए कोई पीड़ा नहीं बचती, और एक बार तुम यह जान जाओ तो तुम एक दूसरा काम कर सकते हो।

एक बार तुम अपने केंद्र को परिधि से अलग कर सको, तो एक दूसरा काम कर सकते हो। एक बार केंद्र बिल्कुल अलग हो जाए, यदि तुम क्रोध में, कामना में अनुद्धिग्रह रह सको तो तुम कामनाओं के साथ, क्रोध के साथ, उद्वेगों के साथ खेल सकते हो।

यह विधि तुम्हारे भीतर दो अतियों का एक भाव पैदा करने के लिए है। वे मौजूद तो हैं ही: दो विरोधी ध्रुव मौजूद हैं। एक बार तुम्हें इस ध्रुवीयता का बोध हो जाए,

तो पहली बार तुम अपने मालिक हो जाते हो। वरना तो दूसरे तुम्हारे मालिक होते हैं; तुम तो बस एक गुलाम हो। तुम्हारी पत्नी जानती है, तुम्हारा बेटा जानता है, तुम्हारे पिता जानते हैं, तुम्हारे मित्र जानते हैं कि तुम्हें खींचा और धकेला जा सकता है। तुम्हें उद्धिग्रह किया जा सकता है, तुम्हें सुखी और दुखी किया जा सकता है। यदि कोई अन्य तुम्हें सुखी और दुखी कर सकता है तो तुम मालिक नहीं हुए। दूसरे का आधिपत्य हो गया। एक इशारे से वह तुम्हें दुखी कर सकता है; एक छोटी-सी मुस्कान से वह तुम्हें सुखी कर सकता है। तो तुम किसी और की दया पर हो; दूसरा तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकता है। और

यदि यह स्थिति है तो तुम्हारे सभी कर्म प्रतिक्रियाएं हैं, क्रियाएं नहीं।

केंद्र का यह बोध और केंद्र में यह थिरता तुम्हें एक मालिक बना देती है। वरना तो तुम एक गुलाम हो, और इतनों के गुलाम हो—एक ही मालिक के नहीं, वरन कई-कई मालिकों के। हर चीज मालिक है और तुम पूरे जगत के गुलाम हो। स्वभावतः तुम झंझट में पड़ोगे ही। इतने मालिक तुम्हें इतनी दिशाओं और आयामों में खींच रहे हैं कि तुम कभी एक नहीं हो पाते, तुम एक इकाई नहीं हो। और इतनी दिशाओं में खींचे जाने से, तुम संताप में हो। जो अपना मालिक हो केवल वही संताप का अतिक्रमण कर सकता है।⁴

शिव ने कहा: हे कमल
नयनी, मधुर स्पर्शी! गाते
हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए यह बोध
बनाए रहो कि मैं हूँ, और शाश्वत जीवन
को खोज लो।

यह विधि कहती है कि कुछ भी करते
हुए—गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते
हुए—सजग रहो कि 'तुम हो' और
शाश्वत जीवन का आविष्कार कर
लो: और अपने भीतर ही प्रवाह को, ऊर्जा

अनुभव करो—'मैं हूँ'

को, शाश्वत जीवन को आविष्कृत कर लो।
लेकिन हमें अपना ही बोध नहीं है।

पश्चिम में गुरजिएफ ने आत्म-स्मरण
का प्रयोग एक बुनियादी विधि के रूप में
किया। वह आत्म-स्मरण इसी सूत्र से
निकलता है। और गुरजिएफ की पूरी
व्यवस्था इसी एक सूत्र पर आधारित है:
'तुम कुछ भी करते हुए अपने को स्मरण
रखो।' यह बहुत कठिन है। यह सरल
मालूम होता है लेकिन तुम भूलते रहोगे।

तीन या चार सैकंड के लिए भी तुम अपना
स्मरण नहीं रख सकते। तुम्हें लगेगा कि
तुम स्मरण कर रहे हो और अचानक तुम
किसी अन्य विचार में गति कर चुकोगे।
अगर यह विचार भी उठा कि "ठीक, मैं तो
अपना स्मरण कर रहा हूँ," तो तुम चूक
गए, क्योंकि यह विचार आत्म-स्मरण
नहीं है।

आत्म-स्मरण में कोई विचार नहीं
होगा; तुम बिल्कुल रिक्त होओगे। और

आत्म-स्मरण कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं
है। ऐसा नहीं कि तुम कहो, "हां, मैं हूँ"।
"हां, मैं हूँ" कहने से तुम चूक गए। "मैं
हूँ", यह एक बौद्धिक बात हो गई, एक
मानसिक प्रक्रिया हो गई।

यह अनुभव करो कि "मैं हूँ"। "मैं
हूँ"—इन शब्दों को नहीं अनुभव करना
है। उसे शब्द मत दो। बस अनुभव करो
कि तुम हो। सोचो मत। अनुभव करो!
प्रयोग करो! यह कठिन है, लेकिन तुम

कृतसंकल्प होकर इस पर लगे ही रहो तो यह घटित होता है। टहलते हुए, स्मरण रखो कि तुम हो, और अपने होने को ही महसूस करो, किसी विचार या प्रत्यय को नहीं। बस अनुभव करो। मैं तुम्हारे हाथ को छूऊँ, या अपना हाथ तुम्हारे सिर पर रखूँ: उसे शब्द मत दो। बस स्पर्श को अनुभव करो, और उस अनुभव करने में स्पर्श को ही नहीं, उसको भी अनुभव करो जिसे स्पर्श किया गया है। फिर तुम्हारी चेतना के दो फलक हो जाएंगे।

तुम वृक्षों के नीचे टहल रहे हो: वृक्ष हैं, हवा है, सूरज उग रहा है। यह तुम्हारे चारों ओर का संसार है; तुम उसके प्रति सजग हो। एक क्षण को खड़े रहो, और फिर अचानक स्मरण करो कि 'तुम हो', लेकिन उसको शब्द मत दो। बस अनुभव करो कि तुम हो। यह निशब्द अनुभूति, एक क्षण के लिए ही सही, तुम्हें एक झलक दे

जाएगी—एक झलक जो कोई एल एस डी तुम्हें नहीं दे सकती, एक झलक जो वास्तविक की है। एक क्षण के लिए तुम अपनी अंतस-सत्ता के केंद्र पर फेंक दिए जाते हो। तब तुम दर्पण के पीछे हो, तुम प्रतिबिंबों के जगत के पार चले गए; तुम अस्तित्वगत हो गए। और यह तुम किसी भी समय कर सकते हो। इसके लिए किसी विशेष स्थान और विशेष समय की जरूरत नहीं है। और तुम यह नहीं कह सकते कि, "मेरे पास समय नहीं है।" इसे तुम खाते समय कर सकते हो, नहाते समय कर सकते हो, चलते हुए या बैठे हुए कर सकते हो—किसी भी समय। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या कर रहे हो, तुम अचानक अपना स्मरण कर सकते हो, और फिर अपनी अंतस-सत्ता की उस झलक को जारी रखने की चेष्टा करो।

यह कठिन होगा। एक क्षण को तुम्हें

लगेगा कि स्मरण आया और अगले ही क्षण तुम भटक जाओगे। कोई विचार प्रवेश कर जाएगा, कोई प्रतिबिंब तुम पर झलक जाएगा, और तुम प्रतिबिंब में उलझ जाओगे। लेकिन न दुखी होओ और न ही हताश होओ। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जन्मों से हम प्रतिबिंबों में उलझे रहे हैं। यह एक यंत्रवत प्रक्रिया बन गई है। तत्क्षण, स्वतः ही हम प्रतिबिंबों की ओर वापस लौटा दिए जाते हैं। लेकिन एक क्षण को भी तुम्हें झलक मिल जाए, तो शुरू करने के लिए पर्याप्त है। और वह पर्याप्त क्यों है? क्योंकि तुम्हें कभी भी दो क्षण एक साथ नहीं मिलेंगे। तुम्हारे साथ तो हमेशा केवल एक क्षण ही होता है। और यदि तुम्हें एक क्षण के लिए भी झलक मिल सके, तो तुम उसमें रह सकते हो। केवल प्रयास की आवश्यकता है—एक सतत प्रयास की आवश्यकता है।⁵

गुरुजिएफ ने एक कोने से इस विधि का प्रयोग किया : सिर्फ यह स्मरण रखना है कि मैं कौन हूँ। रमण महर्षि ने इसका प्रयोग दूसरे कोने से किया। उन्होंने “मैं कौन हूँ?” पूछने को, खोजने को एक ध्यान बना दिया। परन्तु मन जो भी उत्तर तुम्हें दे सकता है उस पर विश्वास मत करो। मन कहेगा, “क्या नासमझी की बात तुम पूछ रहे हो? तुम यह हो, कि तुम वह हो, पुरुष हो, कि स्त्री हो, कि तुम शिक्षित हो, अशिक्षित हो, अमीर या गरीब हो।” मन उत्तर देता रहेगा,

मैं कौन हूँ?

पर पूछते ही चले जाओ। कोई उत्तर स्वीकार मत करो क्योंकि मन के द्वारा दिए सभी उत्तर झूठे हैं।

वे उत्तर तुम्हारे झूठे हिस्से से आते हैं। वे शब्दों से आते हैं, वे शास्त्रों से आते हैं, संस्कारों से आते हैं, समाज से आते हैं, दूसरों से आते हैं। पूछते ही जाओ। “मैं कौन हूँ?” के इस तीर को गहरे और गहरे प्रवेश करने दो। एक क्षण ऐसा आएगा जब कोई उत्तर नहीं आएगा।

वही सम्यक क्षण है। अब तुम उत्तर के करीब आ रहे हो। जब कोई उत्तर नहीं आता, तुम उत्तर के करीब हो क्योंकि मन शांत हो रहा है—या, तुम मन से बहुत दूर चले गए हो। जब कोई उत्तर नहीं होगा और तुम्हारे चारों ओर एक शून्य निर्मित हो जाएगा, तो तुम्हारा प्रश्न पूछना व्यर्थ मालूम होगा। किससे तुम पूछ रहे हो? उत्तर देने वाला अब कोई नहीं है। अचानक, तुम्हारा प्रश्न पूछना भी बंद हो

जाएगा। प्रश्न पूछने के साथ-साथ मन का अंतिम अंश भी विलीन हो गया क्योंकि वह प्रश्न भी मन का ही हिस्सा था। वे उत्तर भी मन के थे और वह प्रश्न भी मन का था। दोनों विलीन हो गए, तो अब ‘तुम हो’।

इस प्रयोग को करो। तुम यदि लगन से लगे रहे तो हर संभावना है कि यह विधि तुम्हें सत्य की झलक दे जाए—और सत्य ही शाश्वत है। ६

शि व ने कहा: प्रत्येक वस्तु अनुभूति के द्वारा ही जानी जाती है। अनुभूति के द्वारा ही आत्मा अंतस आकाश में प्रकाशित होती है। उस एक को ही ज्ञाता और ज्ञेय की भांति जानो।

जब भी तुम कुछ जानते हो, वह अनुभूति के द्वारा ही जाना जाता है। ज्ञान की क्षमता के द्वारा ही कोई विषय तुम्हारे मन में पहुंचता है। तुम एक फूल को देखते

स्व-सत्ता के केंद्र की ओर

हो। तुम जानते हो वह गुलाब का फूल है। गुलाब का फूल बाहर है और तुम भीतर हो। तुमसे कोई चीज गुलाब के फूल तक पहुंचती है, तुमसे कोई चीज फूल पर प्रक्षेपित होती है। तुम्हारे भीतर से कोई ऊर्जा गति करती है, गुलाब पर आती है, उसका रूप, रंग और गंध ग्रहण करती है, और लौटकर तुम्हें खबर देती है कि यह गुलाब का फूल है।

सारा ज्ञान, जो भी तुम जानते हो, जानने की क्षमता के द्वारा ही तुम पर प्रगट होता

है। जानना तुम्हारी क्षमता है। ज्ञान इसी क्षमता के द्वारा अर्जित किया जाता है। लेकिन जानना दो चीजों को प्रगट करता है: ज्ञात और ज्ञाता। जब भी तुम किसी गुलाब के फूल को जानते हो और उस ज्ञाता को, जानने वाले को भूल जाते हो जो जान रहा रहा है तो तुम्हारा ज्ञान आधा है। इसलिए गुलाब को जानने में तीन चीजें हुईं: गुलाब का फूल—ज्ञेय; ज्ञाता—तुम, और दोनों के बीच का संबंध—ज्ञान।

तो ज्ञान को तीन बिंदुओं में बांटा जा सकता है: ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। ज्ञान दो बिंदुओं—विषयी और विषय—के बीच सेतु की भांति है। सामान्यतः तुम्हारा ज्ञान केवल ज्ञात को प्रकट करता है; ज्ञाता, जानने वाला अप्रकट रह जाता है। सामान्यतः तुम्हारे ज्ञान में एक ही तीर होता है, जिसका लक्ष्य गुलाब की ओर तो होता है, तुम्हारी ओर कभी भी नहीं होता। जब तक वह तुम्हारी ओर न मुड़ने लगे तब तक ज्ञान तुम्हें संसार के विषय में तो जानने

देगा, लेकिन कभी तुम्हारे अपने ही विषय में नहीं जानने देगा।

ध्यान की सभी विधियाँ ज्ञाता को, जानने वाले को प्रगट करने के लिए हैं। जॉर्ज गुरजिएफ ने ठीक इसी तरह की एक विधि का उपयोग किया। वे उसे आत्म-स्मरण कहते थे। वे कहते थे कि जब भी तुम कुछ जान रहे हो तो सदा जानने वाले को भी जानो। उसे विषय-वस्तु में मत भुला दो। विषयी को, सब्जेक्ट को याद रखो। अभी तुम मुझे सुन रहे हो। जब तुम मुझे सुन रहे हो, तो दो तरह से सुन सकते हो। एक: कि तुम्हारा मन मेरी ओर ही केंद्रित हो—तब तुम श्रोता को भूल जाते हो। तब वक्ता को तो जान लिया गया, लेकिन श्रोता विस्मृत हो गया।

गुरजिएफ कहते थे कि सुनते हुए बोलने वाले के साथ-साथ सुनने वाले को भी जानो। तुम्हारा ज्ञान द्विमुखी होना चाहिए—ज्ञाता और ज्ञेय, दो बिंदुओं की ओर इंगित करता हुआ। वह एक ही दिशा में केवल विषय की ओर नहीं बहना चाहिए। वह ज्ञेय और ज्ञाता, दो दिशाओं की ओर, एक साथ बहना चाहिए। इसे गुरजिएफ आत्म-स्मरण कहते थे।

बुद्ध ने इसे सम्यक स्मृति कहा—ठीक-ठीक स्मरण। उन्होंने कहा, यदि तुम्हारा मन केवल एक ही बिंदु को जानता है तो सम्यक स्मृति में नहीं है। उसे दोनों का ज्ञान होना चाहिए। और तब एक चमत्कार होता है: यदि तुम्हें ज्ञेय और ज्ञाता दोनों का बोध हो, तो अचानक तुम

तीसरे हो जाते हो—तुम दोनों ही नहीं रहते। ज्ञेय और ज्ञाता दोनों के प्रति सजग होने की चेष्टा से ही तुम तीसरे हो जाते हो, तुम एक साक्षी हो जाते हो। तत्क्षण एक तीसरी संभावना उठती है—एक साक्षी केंद्र अस्तित्व में आता है—क्योंकि दोनों को तुम कैसे जान सकते हो? यदि तुम ज्ञाता हो, तो एक बिंदु पर जड़ रह जाते हो। आत्म-स्मरण में तुम ज्ञाता के उस जड़ बिंदु से हट जाते हो। फिर ज्ञाता तुम्हारा मन होता है और ज्ञात होता है संसार, और तुम एक तीसरे बिंदु, एक चेतना, एक साक्षी केंद्र बन जाते हो।

इस तीसरे बिंदु का अतिक्रमण नहीं हो सकता, और जिसका अतिक्रमण नहीं हो सकता वही परम है। जिसका अतिक्रमण हो सके वह महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव नहीं हुआ—उसका तुम अतिक्रमण कर सकते हो।

तुम एक गुलाब के फूल के पास बैठे हो: उसे देखो। पहली बात यह करनी है कि पूर्णतया सजग हो जाओ, गुलाब को पूरा ध्यान दो, ताकि पूरा संसार विलीन हो जाए और गुलाब ही बच रहे—तुम्हारी चेतना गुलाब के होने के प्रति पूर्णतया सजग है। यदि ध्यान पूरा हो तो संसार विलीन हो जाता है, क्योंकि गुलाब पर जितना ध्यान केंद्रित किया जाएगा, शेष सब कुछ उतनी ही दूर छूट जाएगा। संसार विलीन हो जाता है; केवल गुलाब बच रहता है। गुलाब ही संसार हो जाता है।

यह पहला चरण है—गुलाब पर चित्त को एकाग्र करना। यदि तुम गुलाब पर

चित्त को एकाग्र न कर सको, तो ज्ञाता की ओर जाना भी कठिन होगा, क्योंकि तब तुम्हारा मन सदा भटका रहता है। तो एकाग्रचित्तता ध्यान की ओर पहला कदम बन जाती है। केवल गुलाब रह जाता है; पूरा संसार विलीन हो गया। अब तुम भीतर की ओर जा सकते हो, अब गुलाब वह बिंदु बन जाता है जहां से तुम आगे बढ़ सकते हो। अब गुलाब को देखो और स्वयं के प्रति, ज्ञाता के प्रति सजग होने लगे।

आरंभ में तो तुम चूकोगे। जब तुम ज्ञाता पर पहुंच जाओगे, गुलाब चेतना से हट जाएगा। वह धूमिल हो जाएगा, दूर चला जाएगा, सुदूर हो जाएगा। फिर दोबारा तुम गुलाब की ओर आओगे, और स्वयं को भूल जाओगे। यह आंख-मिचौली का खेल चलता रहेगा, लेकिन तुम यदि प्रयास करते ही रहो, तो देर-अबेर एक क्षण आएगा जब अचानक तुम मध्य में होओगे। जाननेवाला मन होगा, और गुलाब का फूल होगा, और तुम ठीक मध्य में होओगे—दोनों को देखते हुए। वह मध्य बिंदु, वह संतुलन का बिंदु ही साक्षी है।

एक बार तुम यह जान जाओ, तो तुम दोनों ही बन गए। फिर गुलाब—जो ज्ञेय है, और ज्ञाता—जो मन है, तुम्हारे दो पंख बन जाते हैं। फिर विषय और विषयी बस दो पंख होते हैं; तुम दोनों के केंद्र हो। वे तुम्हारा विस्तार हैं। फिर संसार और परमात्मा दोनों ही तुम्हारा विस्तार हैं। तुम स्व-सत्ता के ठीक केंद्र पर पहुंच गए। और यह केंद्र बस एक साक्षी है।

भीतर देखना

ये विधियां देखने के प्रयोग से संबंधित हैं। इसके पहले कि हम इन विधियों में प्रवेश करें आंखों के संबंध में कुछ बातें समझ लेनी जरूरी है क्योंकि ये विधियां उन बातों पर आधारित हैं।

पहली बात: आंखें मनुष्य के शरीर की सबसे कम भौतिक, सबसे कम शारीरिक अंग हैं। यदि पदार्थ अपार्थिव हो सकते हों, तो यही स्थिति आंखों की है। आंखें पार्थिव हैं लेकिन साथ ही साथ वे अ-भौतिक भी हैं। आंखें तुम्हारे शरीर और तुम्हारे बीच एक मिलन बिंदु हैं। शरीर में यह मिलन बिंदु और कहीं इतना गहरा नहीं है।

शरीर और तुम्हारे बीच एक बड़ा अलगाव है; एक बड़ी दूरी है। लेकिन आंखों के तल पर तुम शरीर के सर्वाधिक निकट हो और शरीर तुम्हारे सर्वाधिक निकट है। यही कारण है कि आंखें अंतर्यात्रा के लिए उपयोग की जा सकती हैं। आंखों से ली गई एक छलांग तुम्हें मूलस्त्रोत पर ले जा सकती है। यह छलांग हाथों से लेनी संभव नहीं है, हृदय से संभव नहीं है—शरीर में और किसी अंग से संभव नहीं है। किसी भी और बिंदु से तुम्हें लंबी यात्रा करनी पड़ेगी; दूरी बड़ी है। लेकिन आंखों से लिया गया एक कदम काफी है तुम्हें स्वयं के भीतर प्रवेश करने के लिए।

आंखें तरल हैं, गतिमय हैं, सतत गत्यात्मक हैं; और इस गतिमयता की अपनी लयबद्धता, अपनी पद्धति और अपनी प्रक्रिया है। तुम्हारी आंखें यों ही अराजक गतिशील नहीं होती हैं। उनकी अपनी लय है और यह लय कई बातें दर्शाती है। यदि तुम्हारे मन में काम-वासना के विचार

हैं, तो तुम्हारी आंखें भिन्न ढंग से गति करती हैं—एक भिन्न लय में गति करती हैं। तुम्हारी आंखों और उसकी गति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि किस किस्म का विचार भीतर चल रहा है। जब तुम भूखे होते हो और भोजन का एक विचार भीतर उठ रहा है, तो आंखों की एक अलग गति होती है।

इसलिए स्मरण रहे कि विचार और आंखों की गति परस्पर जुड़ी हुई है। इसलिए यदि तुम अपनी आंखों को और उसकी गतियों को रोक लो, तो तत्काल विचारों की प्रक्रिया भी रुक जाएगी। या फिर यदि तुम्हारे विचारों की प्रक्रिया बंद हो जाए तो आंखों की गति अपने आप ही बंद हो जाएगी।

एक और बात: आंखें एक विषय से दूसरे विषय पर सतत गति करती रहती हैं। अ से ब पर, ब से स पर—वे सतत गति करती रहती हैं। हलन-चलन उनका स्वभाव है। यह ऐसे ही है जैसे एक नदी बहती रहती है—बहना उसका स्वभाव है।

और इस प्रवाह और गत्यात्मकता के कारण ही वे इतनी जीवंत हैं। गति जीवन है।

तुम प्रयास कर सकते हो अपनी आंखों को किसी खास बिंदु पर, किसी एक विषयवस्तु पर रोक लेने के लिए और उन्हें गति न करने देने के लिए, लेकिन गति में होना उसका स्वभाव है। तुम गति को रोक नहीं सकते, लेकिन तुम अपनी आंखों को रोक रख सकते हो। यह फर्क समझ लो।

तुम अपनी आंखों को एक स्थिर बिंदु पर या दीवाल पर बने एक निशान पर रोक ले सकते हो, तुम उस बिंदु पर टकटकी लगा सकते हो; तुम अपनी आंखों को उस पर टिका सकते हो। लेकिन गति करना उनका स्वभाव है। वे विषय अ से ब की ओर गति नहीं कर सकतीं; क्योंकि तुमने उन्हें बिन्दु अ पर रुकने के लिए बाध्य कर दिया है, लेकिन तब एक अजीब घटना फलित होती है।

गति तो वहां होनी ही है; वह आंखों का स्वभाव है। यदि तुम उन्हें बिन्दु अ से ब

तक गति नहीं करने देते, तो वे बाहर से भीतर की ओर गति करने लगेंगी। या तो वे अ से ब की ओर गति करेंगी या यदि तुम उन्हें बाहर गति न करने दो, तो वे भीतर की ओर गति करने लगती हैं। गति उनका स्वभाव है; गति उनकी जरूरत है। यदि तुम अचानक उन्हें रोक लो और उन्हें बाहर गति न करने दो, तो वे भीतर की ओर गति करने लगती हैं।

इस तरह गति की दो संभावनाएं हैं। पहली गति है: विषय अ से विषय ब की ओर; यह एक बाह्य गति है; और सामान्यतया यही गति घटित हो रही है। लेकिन एक दूसरी संभावना है जो तंत्र और योग का अभ्यास है—एक बाह्य विषय से दूसरे बाह्य विषय की ओर गति न करने देना, यह गति ही रोक देना। तब आंखें बाह्य विषयवस्तु से अंतःचेतना में छलांग लगा जाती हैं। वे भीतर की ओर गति प्रारंभ कर देती हैं।

इन बातों को स्मरण रखें, फिर इन विधियों को समझना आसान होगा।।

शि व ने कहा: आंखें बंद करके अपने भीतर सविस्तार से देखो। इस तरह अपने वास्तविक स्वरूप को देख लो।

“बंद आंखें”—अपनी आंखें बंद कर लो। लेकिन यह आंखें बंद करना पर्याप्त नहीं है। पूरी तरह से आंखें बंद करने का अर्थ है: आंखें बंद करके उनकी सब गतियां रोक लेना। नहीं तो आंखें वह सब देखना जारी रखेंगी जो कि बाहर का है।

अंतर्दर्शन ध्यान

बंद आंखों से भी तुम चीजों को देखोगे—वस्तुओं की छायाकृतियों को। वास्तविक चीजें तो वहां नहीं हैं, लेकिन आकृतियां, विचार, संचित स्मृतियां—वे सब प्रवाहित होने लगेंगी। वे सब भी बाह्य विषय हैं, इसलिए तुम्हारी आंखें अब भी पूरी तरह से बंद नहीं हैं। पूरी तरह से बंद आंखों का अर्थ है—देखने को कुछ भी न रहा। इस फर्क को समझ लें।

तुम अपनी आंखें बंद कर सकते हो; यह सरल है। सभी व्यक्ति क्षण-क्षण

आंखें बंद कर लेते हैं। रात्रि तुम अपनी आंखें बंद कर लेते हो, लेकिन ऐसा करना तुम्हारे अंतःस्वभाव को प्रकट न करेगा।

इस तरह अपनी आंखें बंद कर लो कि भीतर देखने को कुछ शेष न रहे—न तो कोई बाह्य विषय, और न बाह्य विषय की अंतर्छाया ही; मात्र एक रिक्त अंधकार, मानो तुम अचानक अंधे हो गए हो—न केवल बाह्य वास्तविकता के प्रति, बल्कि स्वप्न-सत्ताओं के प्रति भी।

इसका अभ्यास करना पड़े। एक लम्बे

समय की जरूरत होगी; यह अचानक नहीं किया जा सकता। तुम्हें एक लंबे प्रशिक्षण की जरूरत होगी। अपनी आंखें बंद कर लो।

जब भी तुम्हें समय हो और यह करना सरल लगे, तब आंखें बंद कर लो और फिर भीतर से आंखों की सारी हलन-चलन को रोक लो। कोई गति मत होने दो। इसका अनुभव करो। कोई गति न होने दो। आंखों की सभी गतियां रोक लो। अनुभव करो जैसे कि तुम पाषाणवत हो

गए हो, फिर तुम आंखों की उस पाषाणवत दशा में बने रहो। कुछ भी मत करो; बस रुके रहो। अचानक एक दिन तुम्हें बोध होगा कि तुम स्वयं के भीतर देख रहे हो।

तुमने अपने शरीर को केवल बाहर से देखा है। तुमने अपने शरीर को एक दर्पण में प्रतिफलित होते देखा है, या तुमने हाथों को बाहर से देखा है। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे शरीर का भीतरी रूप क्या है। तुमने कभी अपने भीतर प्रवेश नहीं किया है। तुम कभी अपनी अंतः-सत्ता में और अपने शरीर के भीतर नहीं हुए हो ताकि तुम वहां से चारों ओर देख सको कि वह भीतर से कैसा दिखता है।

अपनी आंखें बंद कर लो, अपने अंतर्जगत को सविस्तार से देखो और भीतर से प्रत्येक अंग पर गति करो।

पैर के अंगूठे पर भीतर से दृष्टि ले जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ; अंगूठे पर जाओ। वहां ठहरो और देखो। फिर पैरों में गति करो, ऊपर की ओर चलो; पैरों के प्रत्येक हिस्से से गुजरो। तब बहुत-सी चीजें घटित होती हैं।

फिर तुम्हारा शरीर इतना ज्यादा संवेदनशील संयंत्र हो जाता है जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर यदि तुम किसी को छुओ, तो तुम अपने हाथों में पूरी तरह से प्रवाहित हो सकते हो और फिर वह स्पर्श रूपांतरणकारी हो जायेगा। यही अर्थ है सद्गुरु द्वारा छुए जाने का: वे अपने किसी भी अंग में पूर्णतः प्रवाहित हो सकते हैं और फिर वे वहां पूरी तरह से सघन हो उठते हैं। वे तुम्हारे शरीर के

किसी भी अंग में समग्रता से प्रवाहित हो सकते हैं, तब वह अंग जीवंत हो उठता है—इतना ज्यादा जीवंत हो उठता है कि तुम अभी कल्पना नहीं कर सकते कि उस अंग को क्या हो जाता है। तब तुम आंखों में समग्रता से गति कर सकते हो। यदि तुम अपनी आंखों में समग्रता से गति कर सकते हो और फिर किसी व्यक्ति की आंखों में झांको, तो तुम उसे आर-पार भेद डालोगे; तुम उसकी अंतरंग गहराइयों में प्रवेश कर जाओगे।

आंखें बंद कर लो; अपने अंतरंग को विस्तार से देखो। इस विधि का प्रथम और बाहरी हिस्सा है कि तुम अपने शरीर को भीतर के केंद्र से देखो। भीतर मध्य में खड़े रह कर चारों ओर देखो। तुम शरीर से अलग हो जाओगे क्योंकि देखने वाला कभी भी देखी गई वस्तु नहीं रह जाता। अवलोकन-कर्ता अवलोकित-वस्तु से अलग है।

यदि तुम भीतर से अपने शरीर को पूरी तरह से देख सको, फिर तुम कभी भी इस भ्रांति में नहीं पड़ सकते कि तुम शरीर हो। तब तुम भिन्न बने रहोगे, पूर्णतः भिन्न—शरीर के भीतर, लेकिन शरीर नहीं। यह इस विधि का पहला हिस्सा है। तब तुम गति कर सकते हो, तब तुम गति करने के लिए मुक्त हुए। एक बार शरीर से मुक्त हो कर, तादात्म्य से मुक्त हो कर तुम गति करने के लिए मुक्त हुए। अब तुम अपने मन में गहरे में गति कर सकते हो। यह मन की अंतर्गुफा है।

यदि तुम मन की इस अंतर्गुफा में प्रवेश

करो तो तुम मन से भी अलग हो सकते हो। फिर तुम जानोगे कि मन भी एक विषयवस्तु है जिसे तुम देख सकते हो और यह कि वह जो मन को देख रहा है, वह मन से भिन्न और अलग है। मन में प्रवेश करने का वही अर्थ है जो अर्थ 'अंतरंग को विस्तार से देखने' का है। शरीर और मन दोनों में प्रवेश करना है और उन्हें भीतर से देखना है। फिर तुम बस एक साक्षी हो और यह साक्षी और आगे विभक्त नहीं हो सकता।

इसीलिए तो यह साक्षी तुम्हारा अंतरतम मर्म है: साक्षी ही तुम हो। जो विभक्त किया जा सके, जो दृश्य बन सके—वह तुम नहीं हो। जब तुम उस बिंदु पर आ गए जिसे विभक्त नहीं किया जा सकता, जिसमें तुम और आगे गति नहीं कर सकते, जिसका अवलोकन नहीं किया जा सकता, केवल तभी तुम स्व-सत्ता पर पहुंचे। स्मरण रखो कि तुम साक्षी के स्रोत के साक्षी नहीं हो सकते; यह बेतुका होगा।

यदि कोई कहता हो कि "मैंने अपने साक्षी का अवलोकन किया है"—तो यह अनर्गल कथन होगा। यह अनर्गल क्यों है? इसलिए कि यदि तुमने अपने साक्षी-स्व का अवलोकन किया है, तो फिर वह विषय बन जाने के कारण ही परम चैतन्य न रह गया। फिर देखने वाला स्वयं परम चैतन्य हो गया। जिसका भी तुम अवलोकन कर सकते हो, तुम वह नहीं हो; जिसे भी तुम देख सकते हो, तुम वह नहीं हो; जो भी तुम्हारे बोध का विषय बन जाता है, तुम वह नहीं हो।²

शि व ने कहा: एक पात्र को देखो—बिना उसकी दीवारों को, या उसकी धातु के प्रकार को देखो। और कुछ ही क्षणों में जाग्रत हो जाओ।

किसी भी चीज को देखो। एक पात्र या कोई भी चीज से काम हो जाएगा, लेकिन एक नई गुणवत्ता से देखना है: “एक पात्र को देखो—बिना उसकी दीवारों को या उसकी धातु के प्रकार को देखो।” किसी भी

समग्रता को देखना

वस्तु को देखो, लेकिन इन दो शर्तों के साथ देखो। पात्र की दीवारों को मत देखो: पात्र को एक समग्रता की भांति देखो।

सामान्यतया तो हम हिस्सों को देखते हैं। भले ही यह ज्यादा सचेतन रूप से नहीं किया जाता हो, लेकिन हम हिस्सों को ही देखते हैं। यदि मैं तुम्हें देखता हूँ तो पहले मैं तुम्हारे चेहरे को देखता हूँ, फिर तुम्हारे धड़ को, शरीर के मध्य भाग को देखता हूँ और तब तुम्हारे पूरे शरीर को देखता हूँ।

किसी चीज को एक समग्रता की भांति देखो; उसे हिस्सों में मत बांटो। क्यों? क्योंकि जब तुम बांटते हो, तब आंखों को एक हिस्से से दूसरे हिस्से में गति करने का मौका मिल जाता है। किसी चीज को एक समग्रता की तरह देखो।

इसका प्रयास करो। पहले किसी चीज को एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक क्रमशः देखो। फिर अचानक उस चीज को एक समग्रता की भांति देखो; बांटो मत। जब

तुम किसी वस्तु को देखते हो एक समग्रता की भांति, तब आंखों को गति करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। आंखों को गति करने का कोई मौका न देने के लिए यह शर्त बनाई गई है: किसी वस्तु को पूरा देखो, उसे एक समग्र इकाई की तरह लो। और दूसरी शर्त है—“बिना उसकी धातु के प्रकार को देखो।” यदि कटोरा लकड़ी का है तो लकड़ी को मत देखो—सीधे कटोरे को देखो, उसके

आकार को देखो। पदार्थ को मत देखो। कटोरा सोने का बना हो सकता है, वह चांदी का बना हो सकता है। इसका खयाल लो। उस धातु को मत देखो जिससे कि यह कटोरा निर्मित हुआ है; केवल आकार को देखो।

पहली बात है, उसे एक समग्रता की तरह देखना। दूसरी बात है: उसे एक रूप की तरह देखो—एक पदार्थ की तरह नहीं। क्यों? क्योंकि उसका ठोस हिस्सा तो पदार्थ का अंग है और रूप आध्यात्मिक हिस्सा है। तुम्हें भौतिक से अभौतिक की ओर गति करना है। यह सहायक होगा।

इसका प्रयोग करो। इसका प्रयोग तुम किसी व्यक्ति के साथ भी कर सकते हो। कोई पुरुष या कोई स्त्री खड़ी है: देखो, और उस पुरुष या स्त्री को अपनी दृष्टि में पूरा का पूरा लो। शुरू-शुरू में यह बड़ा अटपटा लगेगा, क्योंकि तुम्हें इसकी कोई आदत नहीं है, लेकिन अंत में यह बहुत

सुंदर अनुभव हो जाता है। और तब यह मत सोचो कि शरीर सुंदर है या नहीं, गोरा है या काला है, पुरुष है या स्त्री है।

सोचो मत, बस आकार को देखो। पदार्थ को भूल जाओ और केवल आकार को देखो। “और कुछ ही क्षणों में जाग्रत हो जाओ।”

लगातार एक वस्तु के आकार को एक समग्रता की भांति देखते रहो। आंखों को कोई हलन-चलन मत करने दो। उस वस्तु के “पदार्थ” के बारे में सोचना शुरू मत कर देना।

इससे क्या घटित होगा? अचानक तुम स्व-सत्ता के बोध से भर जाओगे। किसी वस्तु को देखते हुए तुम्हें स्वयं का बोध आ जाएगा। क्यों? क्योंकि आंखों के लिए कोई संभावना नहीं है कि वे बाहर गति कर सकें। वस्तु के आकार को एक समग्रता की तरह देखा जा रहा है, इसलिए तुम उस वस्तु के छोटे हिस्से पर गति नहीं कर

सकते। वस्तु के भौतिक तत्व को छोड़ दिया गया है; उसके शुद्ध रूप को, आकार को देखा जा रहा है। अब तुम सोना, लकड़ी, चांदी आदि के बारे में नहीं सोच सकते।

समग्रता के साथ और आकार के साथ जुड़े रहो। और अचानक तुम स्वयं के बोध से भर जाओगे, क्योंकि अब आंखें गति नहीं कर सकतीं। और उन्हें गति की जरूरत है; गति उनका स्वभाव है। इसलिए तुम्हारी दृष्टि तुम पर चली आएगी। वह वापस हो जाएगी, वह घर चली आएगी और अचानक तुम स्वयं के बोध से भर जाओगे। यह स्व-सत्ता के बोध से भर जाना एक सर्वाधिक संभव आह्लादकारी क्षण है। जब पहली बार तुम्हें स्व-सत्ता का बोध होता है, तो उसका ऐसा सौंदर्य है और उसका ऐसा आनंद है कि तुम उसकी तुलना किसी भी पूर्व-परिचित अनुभव से नहीं कर सकते।

लू -तू ने कहा: जब प्रकाश को
एक वृत्त में घूमने दिया जाता
है, तब स्वर्ग और पृथ्वी की,
रोशनी और अंधकार की सारी ऊर्जाएं
संघटित और एकजुट हो जाती हैं।

तुम्हारी चेतना बाहर की ओर प्रवाहित
हो रही है—यह एक तथ्य है, इसमें
विश्वास करने की कोई जरूरत नहीं है।
जब तुम किसी वस्तु को देखते हो, तब
तुम्हारी चेतना उसकी ओर बहती है।

ऊर्जा का अंतर्वृत्त

उदाहरण के लिए तुम मुझे देख रहे हो।
तब तुम स्वयं को भूल जाते हो और मुझ
पर केंद्रित हो जाते हो। तब तुम्हारी ऊर्जा
मेरी ओर बहती है, तुम्हारी आंखें मेरी ओर
टिकी हुई हैं। यह बहिर्मुखता है।

तुम एक फूल को देखते हो और
विमग्न हुए तुम फूल पर केंद्रित हो जाते
हो। तुम स्वयं के प्रति अनुपस्थित हो
जाते हो, तुम फूल के सौंदर्य मात्र के प्रति
सजग रह जाते हो।

हम यह जानते हैं—यह प्रतिपल घट
रहा है। एक सुंदर स्त्री पास से गुजरती है
और अचानक तुम्हारी ऊर्जा उसका
अनुगमन करने लगती है। इस ऊर्जा के,
इस प्रकाश के बाहर की दिशा में बहने को
हम जानते हैं। यह केवल आधी बात है।
लेकिन हर बार जब अंतः ऊर्जा, अंतः
प्रकाश बाहर बहता है, तुम स्वयं के प्रति
मूर्च्छित हो जाते हो। प्रकाश को वापस
भीतर की ओर प्रवाहित होना चाहिए ताकि

तुम्हें एक साथ, युगपत, विषयवस्तु और
जाननेवाले दोनों का बोध हो सके; ताकि
तुम्हें स्वयं का बोध हो सके। तब
आत्म-बोध का आविर्भाव होता है।

सामान्यतया हम इसी आधे-आधे ढंग
से जीते हैं—आधे जीवित, आधे मृत।
यही हमारी स्थिति है। और धीरे-धीरे
प्रकाश बाहर की ओर प्रवाहित होता रहता
है और कभी वापस नहीं लौटता। तुम
अधिक से अधिकतर रिक्त और खोखले

होते जाते हो। तुम एक काला खड्डु बन जाते हो।

ताओ के साधकों का अनुभव है कि यह ऊर्जा जो तुम्हारी बहिर्मुखता में तुम खर्च करते हो, इसे अधिक से अधिक भीतर इकट्ठा और एकजुट किया जा सकता यदि तुम इसे वापस लौटा लेने की ध्यान-विधि सीख लो। यह संभव है। यही तो एकाग्रचित्तता की समस्त विधियों का विज्ञान है।

किसी दिन दर्पण के सामने खड़े होकर एक छोटा-सा प्रयोग करो। तुम दर्पण में देख रहे हो—तुम दर्पण में अपना चेहरा, अपनी आंखें देख रहे हो। यह बहिर्मुखता है: तुम दर्पण में प्रतिबिम्बित चेहरा देख रहे हो—निश्चय ही अपना खुद का चेहरा देख रहे हो, लेकिन यह प्रतिबिम्ब तुमसे बाहर का एक विषय है।

फिर एक क्षण के लिए इस पूरी प्रक्रिया को उलटा कर दो। यह अनुभव करना शुरू करो कि दर्पण में प्रतिबिम्बित चेहरे द्वारा तुम देखे जा रहे हो—ऐसा नहीं कि तुम दर्पण में प्रतिफलित बिंब को देख रहे हो, वरन ऐसा कि दर्पण में प्रतिबिम्बित चेहरा तुम्हें देख रहा है। और फिर तुम एक अजीब स्थिति अनुभव करोगे।

कुछ मिनटों के लिए इसका प्रयोग करो; तुम बहुत जीवंत हो उठोगे और एक विराट अज्ञात शक्ति तुममें प्रविष्ट होने लगेगी। तुम शायद भयभीत भी हो जाओ, क्योंकि तुमने इसे कभी नहीं जाना है; तुमने ऊर्जा के पूर्ण वृत्त को कभी नहीं देखा है।

यद्यपि ताओ के किसी शास्त्र में इसका उल्लेख नहीं है, फिर भी मुझे यह बहुत सरल विधि लगती है, जिसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति कर सकता है—और बहुत आसानी से।

अपने स्नानगृह में दर्पण के सामने खड़े हुए पहले तुम दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखते हो। तुम देख रहे हो और प्रतिबिम्ब तुम्हारा विषय है। फिर पूरी स्थिति को बदल डालो, प्रक्रिया को उलटा कर दो। अनुभव करो कि तुम प्रतिबिम्ब हो और दर्पणवाला प्रतिबिम्ब तुम्हें देख रहा है। तुरंत तुम एक परिवर्तन घटित होता हुआ देखोगे—एक विराट ऊर्जा तुम पर आती हुई।

शुरू में हो सकता है कि यह घटना तुम्हें भयभीत करने वाली लगे क्योंकि तुमने न कभी यह प्रयोग किया है और न ही तुम इस घटना से परिचित हो। यह तुम्हें एक विक्षिप्त बात लग सकती है। तुम शायद झकझोरे गए अनुभव कर सकते हो; तुममें एक कंपकंपी भी उठ सकती है; या तुम अस्तव्यस्त हुआ अनुभव कर सकते हो क्योंकि अब तक के तुम्हारे सारे संस्कार बहिर्मुखता के रहे हैं। अंतर्मुखता को धीरे-धीरे सीखना होगा। लेकिन तभी वृत्त पूरा होता है।

यदि तुम इस प्रयोग को कुछ दिन करो तो तुम आश्चर्य से भर जाओगे कि पूरे दिन अब तुम कितना ज्यादा जीवंत अनुभव करने लगे हो। बस कुछ मिनट के लिए दर्पण के सामने खड़े होना और ऊर्जा को

प्रतिबिम्ब से लौटकर तुम तक वापस आने देना ताकि ऊर्जा का एक पूरा वृत्त निर्मित हो जाता है। और जब भी ऊर्जा का पूरा वृत्त बनता है—एक गहन मौन भीतर उतर आता है।

अधूरा वृत्त बेचैनी पैदा करता है और जब ऊर्जा का वृत्त पूरा होता है तब वह गहन विश्राम को जन्म देता है। वह तुम्हें केंद्रस्थ कर देता है और केंद्रस्थ होना ऊर्जावान होना है। यह तुम्हारी स्वयं की शक्ति है।

यह एक तरह का प्रयोग है; तुम इसे और दूसरे ढंग से भी कर सकते हो।

गुलाब के फूल के पास जा कर पहले उसे कुछ क्षणों के लिए, कुछ मिनटों के लिए देखो और फिर उसकी विपरीत प्रक्रिया शुरू करो कि गुलाब का फूल तुम्हें देख रहा है। तुम आश्चर्यचकित हो जाओगे कि गुलाब का फूल तुम्हें कितनी ऊर्जा दे सकता है।

यह प्रयोग वृक्षों, सितारों और व्यक्तियों के साथ भी किया जा सकता है। बहुत अच्छा होता है इसे उस स्त्री या पुरुष के साथ करना जिसे तुम प्रेम करते हो। बस एक-दूसरे की आंखों में झाँको। पहले दूसरे में देखना शुरू करो, फिर अनुभव करो कि दूसरा व्यक्ति ऊर्जा को तुम पर वापस लौटा रहा है; उपहार वापस लौट कर आ रहा है। तुम आपूरित हुआ, स्नान किया हुआ, एक नई ऊर्जा से भीगा हुआ अनुभव करोगे। तुम इससे गुजरकर ज्यादा प्राणवान, ज्यादा जीवंत अनुभव करोगे।⁴

प्रकाश पर ध्यान

तुम्हारे हृदय में ज्योति जल रही है; तुम्हारा शरीर उस ज्योति के चारों ओर का प्रकाश है।

इ से दिन में कम से कम दो बार करो—सबसे अच्छा समय सुबह-सुबह का है, ठीक तुम्हारे बिस्तर से उठने से पहले। जिस क्षण तुम्हें लगे कि तुम जाग गए, इसे कम से कम बीस मिनट के लिए करो। सुबह सबसे पहला यही काम करो!—बिस्तर से मत उठो। वहीं, उसी समय, तत्क्षण इस विधि को करो,

स्वर्णिम प्रकाश ध्यान

क्योंकि जब तुम नींद से जग रहे होते हो तब बहुत नाजुक और संवेदनशील होते हो। जब तुम नींद से बाहर आ रहे होते हो तब बहुत ताजे होते हो और इस विधि का प्रभाव बहुत गहरा जाएगा। जिस समय तुम नींद से बाहर आ रहे होते हो तो उस समय सदा की अपेक्षा तुम बुद्धि में कम होते हो। तो कुछ अंतराल हैं जिनके माध्यम से यह विधि तुम्हारे अंतर्तम सत्व में प्रवेश कर जाएगी। और सुबह-सुबह, जब तुम जाग रहे होते हो और पूरी पृथ्वी

जाग रही होती है, उस समय पूरे विश्व में जाग रही ऊर्जा की एक विशाल लहर होती है। उस लहर का उपयोग कर लो; अवसर को मत चूको।

सभी प्राचीन धर्म सुबह-सुबह प्रार्थना किया करते थे जब सूर्य उगता है, क्योंकि सूर्य का उगना अस्तित्व में व्याप्त सभी ऊर्जाओं का उदित होना है। इस क्षण में तुम उदित होती ऊर्जा की लहर पर सवार हो सकते हो; यह सरल होगा। शाम तक यह कठिन हो जाएगा, ऊर्जाएं वापस बैठने

लगेंगी; तब तुम धारा के विरुद्ध लड़ोगे। सुबह के समय तुम धारा के साथ जाओगे। तो इसे शुरू करने का सबसे अच्छा समय सुबह-सुबह का है, ठीक उसी समय जब तुम आधे सोए और आधे जागे होते हो। और प्रक्रिया बड़ी सरल है। इसके लिए किसी मुद्रा, किसी योगासन, किसी स्नान इत्यादि, किसी चीज की जरूरत नहीं है।

तुम अपने बिस्तर में जैसे लेटे हुए हो, वैसे ही अपनी पीठ के बल लेटे रहो। अपनी आंखें बंद रखो। जब तुम श्वास

भीतर लो तो कल्पना करो कि एक विशाल प्रकाश तुम्हारे सिर से होकर तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर रहा है, जैसे तुम्हारे सिर के निकट ही कोई सूर्य उग गया हो—स्वर्णिम प्रकाश तुम्हारे सिर में उंडल रहा है, तुम बिलकुल रिक्त हो और स्वर्णिम प्रकाश तुम्हारे सिर में उंडल रहा है, और गहरे से गहरा जाता जा रहा है और तुम्हारे पंजों से बाहर निकल रहा है। जब तुम श्वास भीतर लो, तो इस कल्पना के साथ लो।

और जब तुम श्वास छोड़ो, तो एक और कल्पना करो: अंधकार पंजों से प्रवेश कर रहा है, एक विशाल अंधेरी नदी तुम्हारे पंजों से प्रवेश कर रही है, ऊपर बढ़ रही है और तुम्हारे सिर से बाहर निकल रही है। श्वास धीमी और गहरी रखो ताकि तुम कल्पना कर सको। बहुत धीरे-धीरे बढ़ो। और सो कर उठने के बाद तुम्हारी श्वास

गहरी और धीमी हो सकती है क्योंकि शरीर विश्रान्त और शिथिल है।

मुझे दोहराने दो: श्वास भीतर लेते हुए स्वर्णिम प्रकाश को सिर से अपने भीतर आने दो, क्योंकि वहीं पर ही स्वर्ण-पुष्प प्रतीक्षा कर रहा है। वह स्वर्णिम प्रकाश सहायक होगा। वह तुम्हारे पूरे शरीर को स्वच्छ कर देगा और उसे सृजनात्मकता से पूरी तरह भर देगा। यह पुरुष-ऊर्जा है।

फिर जब तुम श्वास छोड़ो, तो अंधकार को, जितने अंधेरे की तुम कल्पना कर सकते हो—जैसे कोई अंधेरी रात, नदी के समान—अपने पंजों से ऊपर उठने दो। यह स्त्रैण ऊर्जा है: यह तुम्हें शांत करेगी, तुम्हें ग्राहक बनाएगी, तुम्हें भौन करेगी, तुम्हें विश्राम देगी—और उसे अपने सिर से बाहर निकल जाने दो। तब फिर से श्वास लो, और स्वर्णिम प्रकाश भीतर

प्रवेश कर जाता है।

इसे सुबह-सुबह बीस मिनट के लिए करो। और दूसरा सबसे अच्छा समय है, रात को, जब तुम वापस नींद में लौट रहे हो। बिस्तर पर लेट जाओ, कुछ मिनट आराम करो। जब तुम्हें लगे कि अब तुम सोने और जागने के बीच डोल रहे हो, तो ठीक उस मध्य में प्रक्रिया को फिर से शुरू करो, और उसे बीस मिनट तक जारी रखो। यदि तुम इसे करते-करते सो जाओ, तो सबसे अच्छा, क्योंकि इसका प्रभाव अचेतन में बना रहेगा और वह कार्य करता चला जाएगा।

तीन महीने की एक अवधि के बाद तुम हैरान होओगे: जो ऊर्जा सतत मूलाधार पर, निम्नतम कामकेंद्र पर इकट्ठी हो रही थी, अब वहां इकट्ठी नहीं हो रही है; वह ऊपर जा रही है।²

शि व ने कहा: सोते, जागते
और स्वप्न देखते समय
स्वयं को प्रकाश की भांति जानो।

जागते, चलते, खाते, कार्य करते हुए
प्रकाश की भांति अपना स्मरण रखो, जैसे
कि तुम्हारे हृदय में कोई ज्योति जल रही है,
और तुम्हारा शरीर उस ज्योति के चारों ओर
एक आभामंडल के अतिरिक्त और कुछ
भी नहीं। यह कल्पना करो: तुम्हारे हृदय

प्रकाश का हृदय

में एक ज्योति जल रही है, और तुम्हारा
शरीर उस ज्योति के इर्द-गिर्द एक प्रकाश
मंडल के अतिरिक्त और कुछ नहीं;
तुम्हारा शरीर उस ज्योति के चारों ओर एक
प्रकाश है। इसे अपने मन और अपनी
चेतना में गहरा उतर जाने दो। इसे
आत्मसात कर लो।

इसमें समय लगेगा, लेकिन यदि तुम
इसके बारे में सोचते ही चले जाओ, इसका
अनुभव करते रहो, इसकी कल्पना करते
रहो, तो एक निश्चित समय में तुम इसे पूरे

दिन स्मरण रख पाएँगे सक्षम हो जाओगे।
जागरण काल में, जब सड़क पर चल रहे
हो, तो तुम एक ज्योति हो जो चल रही है।
प्रारंभ में तो किसी और को इसकी खबर
नहीं होगी, लेकिन यदि तुम इस प्रयोग को
जारी रखो तो तीन महीने बाद दूसरे भी
सजग होने लगेंगे। जब दूसरे सजग हो
जाएँ तब तुम सहज हो सकते हो। किसी से
कुछ मत कहो। बस एक ज्योति की
कल्पना करो, और तुम्हारा शरीर इसके
चारों ओर एक आभामंडल हो—भौतिक

शरीर नहीं, वरन एक विद्युत शरीर, एक
प्रकाश शरीर। इसे करते चले जाओ।

यदि तुम प्रयास पर दृढ़ रहे, तो तीन
महीने के भीतर, या उसके आस-पास
दूसरे भी सजग होने लगेंगे कि तुम्हें कुछ
हो गया है। उन्हें तुम्हारे चारों ओर एक
सूक्ष्म प्रकाश का अनुभव होगा। जब तुम
उनके पास आओगे, तो उन्हें एक नई उष्मा
की अनुभूति होगी। यदि तुम उन्हें छूओ,
तो उन्हें एक उष्ण स्पर्श का आभास होगा।
वे सजग हो जाएँगे कि तुम्हारे साथ कुछ

अदभुत घट रहा है। किसी को भी बताओ मत। जब दूसरे सजग हो जाएं, तो तुम विश्रांत हो सकते हो, और तभी तुम दूसरे चरण में प्रवेश कर सकते हो, उससे पहले नहीं।

दूसरा चरण है, इसको स्वप्न में ले जाना। अब तुम इसे स्वप्न में ले जा सकते हो। यह एक वास्तविकता बन गई है। अब यह कोई कल्पना नहीं है। कल्पना के द्वारा तुमने एक वास्तविकता को उधाड़ लिया है। यह यथार्थ है। हर चीज प्रकाश से बनी है। तुम प्रकाश हो—भले ही इस बात से अनभिज्ञ हो—क्योंकि पदार्थ का हर कण प्रकाश है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पदार्थ इलेक्ट्रॉन्स से बना है; यह एक ही बात है। प्रकाश सबका स्रोत है। तुम भी सघनीभूत प्रकाश हो: कल्पना के द्वारा तुम बस एक वास्तविकता को ही उधाड़ रहे हो। इसे आत्मसात करो—और जब तुम इससे पूरे भर जाओ, तभी इसे स्वप्न में भी ले जा सकते हो, उससे पहले नहीं।

फिर सोते समय ज्योति के विषय में सोचते रहो, उसे देखते रहो, अनुभव करते रहो कि तुम प्रकाश हो। इसे स्मरण करते हुए... स्मरण करते-करते तुम नींद में चले जाते हो, और स्मरण चलता रहता है। प्रारंभ में तुम्हें ऐसे स्वप्न आएंगे जिनमें तुम्हें लगेगा कि तुम्हारे भीतर एक ज्योति है, कि तुम प्रकाश हो। धीरे-धीरे, सपनों में भी तुम उसी भाव से उतरोगे। और एक बार यह भाव सपनों में प्रवेश कर जाए, तो स्वप्न विलीन होने लगेंगे। सपने कम से

कम होते जाएंगे और नींद अधिक से अधिक गहरी होती जाएगी।

जब तुम्हारे स्वप्न में यह वास्तविकता प्रगट हो जाती है कि तुम प्रकाश हो, एक ज्योति हो, एक ज्वलंत ज्योति हो, तो सभी स्वप्न समाप्त हो जाएंगे। जब तुम्हारे स्वप्न समाप्त हो जाएं तभी इस भाव को तुम नींद में ले जा सकते हो, उससे पहले नहीं। अब तुम द्वार पर आ खड़े हुए। जब स्वप्न समाप्त हो जाएं और तुम स्वयं को एक ज्योति की भांति स्मरण रखो, तो तुम नींद के द्वार पर पहुंच गए। अब तुम इस भाव के साथ प्रवेश कर सकते हो। और एक बार तुम इस भाव के साथ नींद में प्रवेश कर जाओ कि तुम एक ज्योति हो, तो तुम उसमें सजग बने रहोगे—नींद अब तुम्हारे शरीर को घटेगी, तुम्हें नहीं।

योग और तंत्र मानवीय मन को तीन खंडों में बांटते हैं—मन के आयाम को, स्मरण रखना। वे मन को तीन खंडों में बांटते हैं: जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। ये तुम्हारी चेतना के खंड नहीं हैं, तुम्हारे मन के खंड हैं, और चेतना है—चौथी।

पूरब में उसे कोई नाम नहीं दिया गया है; वे बस इसे चतुर्थ—तुरीय—कहते हैं। पहले तीन के नाम हैं; वे बादल हैं। उनको नाम दिया जा सकता है—जाग्रत बादल, सुषुप्त बादल और स्वप्नरत बादल। वे सब बादल हैं, और जिस आकाश में वे विचरते हैं, वह अनाम है, उसे बस चतुर्थ कह कर छोड़ दिया गया है।

यह विधि इन तीन अवस्थाओं से ऊपर उठने में तुम्हारी मदद करने के लिए है।

यदि तुम सजग हो सको कि तुम एक ज्योति हो, एक प्रकाश हो, कि नींद तुम्हें नहीं घट रही, तो तुम जागरूक हो। तुम एक जागरूक प्रयास कर रहे हो; अब तुम उस ज्योति के चारों ओर सुगठित हो गए। शरीर सोया है, तुम नहीं।

कृष्ण यही गीता में कहते हैं: योगी कभी सोते नहीं। जब दूसरे सोते हैं, तो भी वे जागे होते हैं। ऐसा नहीं कि उनके शरीर कभी नहीं सोते, उनके शरीर तो सोते हैं—लेकिन शरीर ही! शरीर को विश्राम चाहिए, चेतना को कोई विश्राम नहीं चाहिए; क्योंकि शरीर तो यंत्र है, चेतना कोई यंत्र नहीं है। शरीर को ईंधन चाहिए, उसे विश्राम चाहिए। यही कारण है कि जब शरीर पैदा होता है तो युवा होता है, फिर वह वृद्ध होता है, और फिर वह मर जाता है। चेतना न कभी पैदा होती है, न कभी बूढ़ी होती है, न कभी मरती है। उसे कोई ईंधन नहीं चाहिए, कोई विश्राम नहीं चाहिए। वह शुद्ध ऊर्जा है, अहर्निश शाश्वत ऊर्जा है।

यदि तुम ज्योति और प्रकाश की इस आकृति को नींद के द्वारों से गुजार कर ले जा सको, तो फिर कभी सोओगे नहीं, बस शरीर विश्राम करेगा। और जब शरीर सोया होगा, तो तुम्हें इसका बोध होगा। एक बार यह हो जाए, तो तुम चौथे हो गए। अब जागना, सोना और स्वप्न देखना मन के तीन हिस्से हो गए। वे हिस्से हैं, और तुम चौथे हो गए—वह जो उन सबसे गुजरता है, और उनमें से कोई भी नहीं है।³

शि व ने कहा: हे देवी, अपनी देहाकृति के सुदूर ऊपर और नीचे परिव्याप्त सूक्ष्म उपस्थिति में प्रवेश करो।

यह विधि तभी की जा सकती है यदि तुमने "पंख की भांति छूने" वाली विधि कर ली हो। इसे अलग से भी किया जा सकता है; लेकिन तब यह बहुत कठिन होगा। लेकिन पहली विधि करके फिर

सूक्ष्म शरीर को देखना

दूसरी विधि को करना अच्छा है, और बहुत सरल भी है।

जब भी ऐसा हो कि तुम हलके-फुलके, जमीन से उठते हुए महसूस करो, जैसे कि तुम उड़ सकते हो—अचानक तुम्हें यह बोध होगा कि तुम्हारी देहाकृति के चारों ओर एक नीला प्रकाश है। लेकिन यह तुम तभी देख सकोगे जब तुम्हें लगे कि तुम जमीन से ऊपर उठ सकते हो, कि तुम्हारा शरीर उड़ सकता है, हलका-फुलका हो गया है, हर बोझ से मुक्त हो गया है,

पृथ्वी के किसी भी गुरुत्वाकर्षण से मुक्त हो गया है।

जब भी तुम्हें इस निर्भरता की अनुभूति हो, तो आंखें बंद करके अपनी देहाकृति के प्रति सजग हो जाओ। आंखें बंद किए हुए ही अपने पंजों और उनकी आकृति, टांगों और उनकी आकृति, और फिर पूरे शरीर की आकृति को अनुभव करो। यदि तुम बुद्ध की भांति, सिद्धासन में बैठे हुए हो तो बुद्ध की भांति बैठे हुए ही देहाकृति को अनुभव करो। भीतर से बस अपनी देह की

आकृति को अनुभव करने का प्रयास करो। वह स्पष्ट हो जाएगी, वह तुम्हारे समक्ष प्रगट हो जाएगी, और साथ ही साथ तुम्हें बोध होगा कि उस आकार के चारों ओर नीला-सा प्रकाश फैला है।

आरंभ में इस प्रयोग को आंखें बंद रख कर करो। और जब यह प्रकाश फैलता चला जाए और तुम्हें देहाकृति के चारों ओर एक प्रकाश-मंडल, एक नीले प्रकाश-मंडल की अनुभूति हो, तब कभी रात को किसी प्रकाशहीन अंधेरे कमरे में

इस प्रयोग को करते हुए अपनी आंखें खोल लो और तुम ठीक अपने शरीर के चारों ओर एक नीली आकृति देखोगे—मात्र प्रकाश। तुम्हारे शरीर के चारों ओर एक नीला प्रकाश होगा। यदि तुम सचमुच इसे देखना चाहते हो, बंद आंखों से नहीं बरन खुली आंखों से, तो इस प्रयोग को किसी अंधेरे कमरे में करो जहां कोई प्रकाश न हो।

यह नीली आकृति, यह नीला प्रकाश, सूक्ष्म शरीर की उपस्थिति है। तुम्हारे कई शरीर हैं। यह विधि सूक्ष्म शरीर से संबंधित है, और सूक्ष्म शरीर के द्वारा तुम परम आनंद में प्रवेश कर सकते हो। सात शरीर हैं, और हर शरीर का उपयोग दिव्य में प्रवेश करने के लिए किया जा सकता है; हर शरीर बस एक द्वार है।

यह विधि सूक्ष्म शरीर का उपयोग करती है, और सूक्ष्म शरीर को अनुभव करना सबसे सरल है। शरीर जितना गहरा हो, उतना ही उसे अनुभव करना कठिन है; लेकिन सूक्ष्म शरीर तो तुम्हारे करीब ही है, भौतिक शरीर के करीब है। बस पास ही

है। दूसरी आकृति आकाशीय तत्व की है—तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे शरीर के चारों ओर। वह तुम्हारे शरीर में प्रवेश करती है और वह तुम्हारे शरीर के चारों ओर एक मंद प्रकाश, एक नीले प्रकाश—सी एक ढीले चोगे की तरह चारों ओर से घेरे हुए है।

जब भी कोई तुम्हें प्रेम करता है, जब भी कोई गहन प्रेम से तुम्हें छूता है, तो वह तुम्हारे सूक्ष्म शरीर को छूता है। इसीलिए यह तुम्हें इतना सुखदायी लगता है। इसके चित्र भी लिए गए हैं। दो प्रेमी गहन प्रेम में संभोग कर रहे हैं: यदि उनका संभोग एक निश्चित सीमा तक, चालीस मिनट से अधिक चल सके, और स्खलन न हो, तो गहन प्रेम में, दोनों शरीरों के आसपास एक नीला प्रकाश प्रगट होता है। उसके चित्र भी लिए गए हैं।

पहले तुम्हें उस ऊर्जा मंडल के प्रति सजग होना होगा जो तुम्हारी भौतिक आकृति को घेरे हुए है, और जब तुम सजग हो जाओ तो उसे विकसित होने में सहयोग दो, उसे बढ़ने और फैलने में

सहयोग दो। तुम क्या कर सकते हो?

बस मौन बैठकर इसे देखो; कुछ मत करो, बस अपने आसपास एक नीली आभा को देखते रहो; कुछ भी न करते हुए, बस इसे देखते हुए—तुम्हें लगेगा कि वह बढ़ रही है, फैल रही है, बंदी से बड़ी होती जा रही है। क्योंकि जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे होते तो पूरी ऊर्जा सूक्ष्म शरीर में चली जाती है। इसे स्मरण रखो। जब तुम कुछ भी करते हो तो ऊर्जा सूक्ष्म शरीर से बाहर निकाल ली जाती है।

जब तुम कुछ नहीं कर रहे हो, तब तुम्हारी ऊर्जा बाहर गति नहीं कर रही है। वह सूक्ष्म शरीर की ओर चली जाती है। वहां एकत्रित हो जाती है। तुम्हारा सूक्ष्म शरीर एक विद्युत-कुंड बन जाता है। और वह जितना विकसित होता है, तुम उतने ही मौन हो जाते हो। जितने तुम मौन होते हो, उतना ही यह विकसित होता है। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे सूक्ष्म शरीर को ऊर्जा देनी है और कैसे उसे व्यय नहीं करना है, तो तुम जान गए; तुम्हें एक गुप्त कुंजी का पता चल गया।⁴

शि व ने कहा: अनुभव करो
कि ब्रह्मांड एक
आलोकमयी शाश्वत उपस्थिति है।

यह विधि आंतरिक संवेदनशीलता पर आधारित है। पहले संवेदनशीलता को बढ़ाओ। अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो, कमरे को अंधेरा कर लो, और एक छोटी मोमबत्ती जला लो। मोमबत्ती के निकट एक अत्यंत प्रेमपूर्ण भावदशा में,

आलोकमयी उपस्थिति

प्रार्थनापूर्ण भावदशा में बैठ जाओ। मोमबत्ती से प्रार्थना करो, “स्वयं को मुझ पर प्रगट करो।” स्नान कर लो, अपनी आंखों पर ठंडा पानी छिड़क लो, और फिर एक अत्यंत प्रार्थनापूर्ण भावदशा में मोमबत्ती के सामने बैठ जाओ। उसकी ओर देखो और बाकी सब कुछ भूल जाओ। बस उस छोटी-सी मोमबत्ती की ओर देखो—ज्योति और मोमबत्ती की ओर। उसकी ओर देखते चले जाओ। पांच मिनट के बाद तुम्हें लगेगा कि

मोमबत्ती में बहुत-सी चीजें बदल रही हैं। वे मोमबत्ती में नहीं बदल रही हैं—स्मरण रखना। तुम्हारी आंखें बदल रही हैं।

एक प्रेमपूर्ण भावदशा में, पूरे संसार को बाहर बंद करके, पूरी एकाग्रचित्तता से, भावपूर्ण हृदय लिए, बस मोमबत्ती और ज्योति की ओर देखते रहो। तब तुम्हें ज्योति के चारों ओर नए रंग, नई छटाएं दिखाई देंगी, जिनके होने का पहले तुम्हें पता ही नहीं था। वे मौजूद थे: पूरा इंद्रधनुष मौजूद था। जहां भी प्रकाश है, वहां इंद्रधनुष है

क्योंकि प्रकाश सब रंग है। तुम्हें एक सूक्ष्म संवेदनशीलता की जरूरत है। बस उसे अनुभव करो और उसकी ओर देखते रहो। आंसू बहने लगें तो भी, उसकी ओर देखते ही रहो। वे आंसू तुम्हारी आंखों को और ताजा करने में सहायक होंगे।

कई बार तुम्हें लग सकता है कि ज्योति, मोमबत्ती रहस्यमय-सी हो गई है। यह वह साधारण मोमबत्ती नहीं है जो तुम अपने साथ लाए थे। उसने एक नई आभा ले ली है। उसमें एक सूक्ष्म दिव्यता उतर आई है।

इस प्रयोग को करते रहो। इसे तुम कई और चीजों के साथ भी कर सकते हो।

संवेदनशीलता बढ़नी ही चाहिए। तुम्हारी हर इंद्रिय ज्यादा जीवंत हो जानी चाहिए। फिर तुम इस विधि के साथ प्रयोग कर सकते हो। “अनुभव करो कि ब्रह्मांड एक आलोकमयी शाश्वत उपस्थिति है।” प्रकाश हर ओर है—कई-कई आकारों में, रूपों में प्रकाश हर ओर घटित हो रहा है। उसकी ओर देखो! और प्रकाश सब जगह है, क्योंकि अस्तित्व की पूरी घटना प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। किसी पत्ती, या किसी फूल, या किसी पत्थर की ओर देखो, और देर-अबेर तुम उसमें से किरणें निकलती अनुभव करोगे। बस धैर्य से प्रतीक्षा करो। जल्दबाजी मत करो क्योंकि जब तुम जल्दी में होते हो तो कुछ भी प्रकट

नहीं होता। जल्दबाजी में तुम असंवेदनशील होते हो। किसी भी चीज को लेकर चुपचाप प्रतीक्षा करो, और तुम एक ऐसा नया चमत्कार खोज लोगे जो सदा से मौजूद था, लेकिन तुम्हें जिसकी खबर नहीं थी—जिसका तुम्हें बोध नहीं था।

“अनुभव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी आलोकमयी उपस्थिति है,” और जैसे ही तुम शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति को अनुभव करोगे तुम्हारा मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। तुम इस अस्तित्व में बस एक अंश रह जाओगे, इस महासंगीत में बस एक स्वर रह जाओगे। न कोई बोझ रहा, न कोई तनाव: बूंद सागर में समा गई। लेकिन प्रारंभ में बड़ी कल्पना की जरूरत होगी, और यदि तुम संवेदनशीलता में प्रशिक्षित होने का दूसरा प्रयोग भी कर रहे

हो तो वह सहायक होगा।

तुम कई ढंग से प्रयोग कर सकते हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो। अपनी आंखें बंद कर लो और दूसरे के भीतर जीवन ऊर्जा को अनुभव करो। उसे अनुभव करो, और अपनी ओर बहने दो। अपने स्वयं के जीवन को अनुभव करो और उसे दूसरे की ओर बहने दो। किसी वृक्ष के समीप बैठ जाओ और वृक्ष की छाल को स्पर्श करो। अपनी आंखें बंद कर लो और वृक्ष में जीवन को उठता हुआ अनुभव करो, और तुम तत्क्षण रूपांतरित हो जाते हो।

यदि यह प्रयोग तीन महीने के लिए किया जाए, तो तुम एक भिन्न ही जगत में जीने लगोगे क्योंकि अब तुम भिन्न हो जाओगे।⁵

अंधकार पर ध्यान

उस बीज की भांति, जो अपना जीवन मिट्टी के अंधकार में शुरू करता है, या उस बच्चे की भांति जो अपना जीवन गर्भ के अंधकार में शुरू करता है, सभी प्रारंभ अंधकार में ही होते हैं, क्योंकि अंधकार किसी भी चीज के शुरू होने के लिए अनिवार्य शर्तों में से है।

प्रारंभ रहस्यमय है, इसीलिए अंधकार की जरूरत है। और प्रारंभ इतना नाजुक है, इसलिए भी अंधकार की जरूरत है। प्रारंभ बहुत अंतरस्थ भी है, इस कारण से भी अंधकार की जरूरत है। अंधकार में एक गहराई है और पोषण की एक विराट शक्ति है। दिन तुम्हें थका देता है; रात फिर से ताजा कर जाती है।

सुबह तो आएगी ही, दिन तो पीछे-पीछे चला ही आएगा, लेकिन यदि तुम अंधकार से भयभीत हो गए तो फिर दिन कभी नहीं आएगा। यदि कोई अंधकार को छोड़ देना चाहे तो दिन असंभव है। प्रभात तक पहुंचने के लिए व्यक्ति को आत्मा की घनेरी अंधेरी रात से गुजरना होता है। मृत्यु पहले है, बाद में जीवन है।

वस्तुओं की सामान्य शृंखला में जन्म पहले होता है, बाद में जीवन विकसित होता है; लेकिन अंतर्जगत में, अंतर्धात्रा में, इसके ठीक विपरीत होता है: मृत्यु पहले है, जीवन बाद में।

शि व ने कहा: वर्षाऋतु की
किसी अंधेरी रात में,
आकारों के आकार की भांति उस
अंधकार में प्रवेश करो।

अंधकार में तुम कैसे प्रवेश कर सकते
हो? तीन बातें:

पहला चरण:

अंधकार को गौर से देखो। कठिन है।
किसी ज्योतिशिखा या प्रकाश के किसी भी

आंतरिक अंधकार

स्रोत की ओर देखना सरल है, क्योंकि
वह एक विषय की भांति इंगित होकर वहां
मौजूद है; तुम अपना होश उसी ओर
केंद्रित कर सकते हो। अंधकार कोई विषय
नहीं है; वह तो सभी जगह है, चारों ओर
है। तुम उसे एक विषय की तरह नहीं देख
सकते। शून्य में ही गौर से झांको। वह
चारों ओर है; तुम बस उसमें झांको।
विश्रामपूर्ण हो जाओ और उसमें झांको।

वह तुम्हारी आंखों में प्रवेश करने लगेगा।
और जब अंधकार तुम्हारी आंखों में प्रवेश
करे, तो तुम अंधकार में प्रवेश कर रहे हो।

अंधेरी रात में जब इस विधि को करो तो
आंखें खोले रहो। अपनी आंखें बंद मत
करो क्योंकि बंद आंखों से तुम्हारे समक्ष
एक भिन्न अंधकार होता है जो तुम्हारा
अपना है, मानसिक है; वह वास्तविक
नहीं है। वास्तव में, वह एक नकारात्मक

हिस्सा है; वह विधायक अंधकार नहीं है।

यहां प्रकाश है: तुम अपनी आंखें बंद
कर लो और एक अंधकार पा सकते हो,
लेकिन वह अंधकार प्रकाश का निगेटिव
मात्र ही है। ठीक उसी तरह जैसे तुम जब
खिड़की की ओर देखने के बाद अपनी
आंखें बंद करते हो तो तुम्हें खिड़की की
निगेटिव आकृति दिखाई देती है। हमारा
सारा अनुभव प्रकाश का ही है, तो जब

हम अपनी आंखें बंद करते हैं तो प्रकाश का निगेटिव अनुभव होता है जिसे हम अंधकार कहते हैं। वह वास्तविक नहीं है, वह काम नहीं आएगा।

अपनी आंखें खोल लो, अंधेरे में अपनी आंखें खोले रहो, और तुम्हें एक भिन्न अंधकार दिखाई देगा—जो विधायक अंधकार है। उसमें झांको। अंधकार में झांकते रहो। तुम्हारे आंसू आने लगेंगे, तुम्हारी आंखें सूज जाएंगी, वे दुखने लगेंगी। चिंता मत करो, बस झांकते रहो। और जिस क्षण अंधकार, वहां जो वास्तविक अंधकार है वह तुम्हारी आंखों में प्रवेश कर जाता है तो वह तुम्हें सुख की एक गहन अनुभूति देगा। जब वास्तविक अंधकार तुममें प्रवेश कर जाता है, तो तुम उससे भर जाओगे।

और अंधकार का यह प्रवेश तुम्हें सारे निगेटिव अंधकार से रिक्त कर देगा। यह एक अत्यंत गहन घटना है। तुम्हारे भीतर जो अंधकार है वह एक निगेटिव चीज है; वह प्रकाश के विपरीत है वह प्रकाश की अनुपस्थिति नहीं है; वह प्रकाश के विपरीत है। यह वह अंधकार नहीं है जिसे शिव आकारों का आकार कह रहे हैं—वह जो वास्तविक अंधकार है।

हम उससे इतने भयभीत हैं कि हमने सुरक्षा की तरह प्रकाश के कई स्रोत निर्मित कर लिए हैं, और एक प्रकाशित संसार में जीते हैं। फिर हम अपनी आंखें बंद कर लेते हैं और प्रकाशित संसार भीतर निगेटिव होकर प्रतिबिम्बित होता है। वह जो वास्तविक अंधकार है—इसेनीज का

अंधकार, शिव का अंधकार—उससे हमने संपर्क खो दिया है। उससे हमारा कोई संपर्क नहीं है। हम उससे इतने भयभीत हो गए हैं कि हमने अपने को उससे बिल्कुल दूर कर लिया है। हम उसकी ओर अपनी पीठ किए खड़े हैं। तो यह प्रयोग कठिन होगा, लेकिन यदि तुम इसे कर सको, तो यह चमत्कारिक है, जादू से भरा है। तुम्हारा एक बिल्कुल ही भिन्न अस्तित्व हो जाएगा।

जब अंधकार तुममें प्रवेश करता है, तो तुम उसमें प्रवेश कर जाते हो। यह घटना सदा ही पारस्परिक होती है, अन्योन्य होती है। तुम किसी भी ब्रह्मांडीय घटना में प्रवेश कर ही नहीं सकते यदि वह ब्रह्मांडीय घटना तुममें प्रवेश न कर जाए। तुम उससे बलात्कार नहीं कर सकते; तुम उसमें जबरदस्ती प्रवेश नहीं कर सकते। यदि तुम उपलब्ध हो, खुले हो, संवेदनशील हो, और यदि तुम किसी भी ब्रह्मांडीय आयाम को स्वयं में प्रवेश करने के लिए मार्ग देते हो, तभी तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो। यह घटना सदा ही पारस्परिक होती है। तुम इसे आरोपित नहीं कर सकते, केवल होने दे सकते हो।

अब तो शहरों में वास्तविक अंधकार को खोज पाना कठिन है; हमारे घरों में वास्तविक अंधकार को खोज पाना कठिन है। नकली प्रकाश से हमने सभी कुछ नकली बना लिया है। हमारा अंधकार भी प्रदूषित है, शुद्ध नहीं है। तो मात्र अंधकार को अनुभव करने के लिए किसी सुदूर स्थान पर चले जाना अच्छा है। किसी

सुदूर गांव में चले जाओ जहां बिजली न हो, या किसी पहाड़ की चोटी पर चले जाओ। बस शुद्ध अंधकार का अनुभव करने के लिए एक सप्ताह वहां रहो।

तुम एक अलग व्यक्ति होकर लौटोगे, क्योंकि सात दिनों के उस परिपूर्ण अंधकार में सभी भय, सभी आदिम भय ऊपर आ जाएंगे। तुम्हें राक्षसों का सामना करना पड़ेगा, अपने ही अचेतन का सामना करना पड़ेगा। पूरी मनुष्यता... यह ऐसे ही होगा जैसे तुम उस पूरे मार्ग से गुजर रहे हो जो अतीत में घटित हुआ था और तुम्हारे गहन अचेतन से बहुत-सी चीजें उठेंगी। वे वास्तविक लगेंगी। शायद तुम डर जाओ, भयभीत हो जाओ, क्योंकि वे बहुत वास्तविक लगेंगी—और वे हैं तुम्हारे मन की ही निर्मिति।

तुम्हें अपने अचेतन से मित्रता करनी होगी। और अंधकार पर यह ध्यान तुम्हारे पागलपन को पूरी तरह आत्मसात कर लेगा। इस प्रयोग को करो; इसे तुम अपने घर में भी कर सकते हो। हर रात, एक घंटे के लिए अंधकार के साथ रहो। कुछ भी मत करो, बस अंधकार में गौर से झांको। तुम्हें पिघलने जैसी अनुभूति होगी, और तुम्हें लगेगा कि कुछ तुममें प्रवेश कर रहा है और तुम किसी चीज में प्रवेश कर रहे हो।

तीन महीने तक रोज एक घंटा अंधकार के साथ रहने, जीने से तुम वैयक्तिकता का, विभाजन का सारा भाव खो दोगे। फिर तुम एक द्वीप नहीं रहोगे; तुम महासागर बन जाओगे। तुम अंधकार के साथ एक हो जाओगे। और अंधकार

बिलकुल सागरवत है: और कुछ भी इतना विराट, इतना शाश्वत नहीं है। और अन्य कुछ भी तुम्हारे इतने करीब नहीं है, और किसी और चीज से तुम इतने भयभीत व डरे हुए भी नहीं हो। अंधकार बस करीब ही मौजूद है, सदा प्रतीक्षा कर रहा है।

दूसरा चरण:

लेट जाओ और ऐसा भाव करो कि तुम अपनी मां के पास हो। अंधकार मां है, सबकी मां है। सोचो: जब कुछ भी नहीं था, तो क्या था? तुम अंधकार को छोड़कर कुछ और नहीं सोच सकते। जब सब कुछ समाप्त हो जाएगा, तब भी क्या बच रहेगा? अंधकार होगा।

अंधकार मां है, गर्भ है, तो लेट जाओ और भाव करो कि तुम अपनी मां के गर्भ में पड़े हो। और यह यथार्थ हो जाएगा, उष्ण हो जाएगा, और देर-अबेर तुम्हें लगने लगेगा कि एक अंधकार, एक गर्भ तुम्हें सब ओर से घेरे हुए है, तुम उसके भीतर हो।

तीसरा चरण:

चलते हुए, कार्य पर जाते हुए, बोलते हुए, खाते हुए, कुछ भी करते हुए, अंधकार का एक टुकड़ा अपने भीतर लिए रहो। जो अंधकार तुममें प्रवेश कर गया है, उसे बनाए रखो। जिस प्रकार हमने ज्योतिशिखा बनाए रखने की विधि पर बात की, वैसे ही अंधकार भी बनाए रखो।

जैसा मैंने तुम्हें कहा, यदि तुम एक ज्योतिशिखा बनाए रखो और अनुभव करो कि तुम प्रकाश हो तो तुम्हारा शरीर एक विशेष प्रकार का अदभुत प्रकाश विकीर्णित करने लगेगा और जो लोग संवेदनशील हैं वे उसे अनुभव करने लगेंगे; अंधकार के साथ भी ऐसा ही होगा।

यदि तुम अपने भीतर अंधकार लेकर चलो तो तुम्हारा पूरा शरीर इतना शिथिल, शांत और शीतल हो जाएगा कि वह महसूस होगा। और जिस प्रकार तुम जब प्रकाश अपने भीतर लेकर चलते हो तो कुछ लोग तुम्हारी ओर आकर्षित होते हैं, वैसे ही जब तुम अपने भीतर अंधकार लेकर चलोगे तो कुछ लोग तुमसे बचकर भागने लगेंगे। वे भयभीत हो जाएंगे और डर जाएंगे। वे इतनी शांत अंतः-सत्ता को सहन नहीं कर पाएंगे; यह उनके लिए असहनीय हो जाएगा।

सारे दिन अंधकार को अपने भीतर लेकर चलना अत्यंत सहायक होगा, क्योंकि फिर जब तुम रात को अंधकार पर मनन करोगे और ध्यान करोगे तो वह आंतरिक अंधकार जो तुम सारा दिन लेकर घूमे हो वह तुम्हें बाहर के अंधकार से मिलने में मदद करेगा—आंतरिक अंधकार बाह्य से मिलने के लिए आ जाएगा।

और केवल इस स्मरण मात्र से कि तुम अंधकार लेकर चल रहे हो—तुम अंधकार से भर जाते हो, शरीर का रोम-रोम, शरीर की हर कोशिका अंधकार से भर जाती

है—तुम बहुत ही विश्रांत अनुभव करोगे। इस प्रयोग को करो। तुम अत्यंत विश्रांत अनुभव करोगे। तुममें हर चीज धीमी हो जाएगी। तुम दौड़ नहीं पाओगे, बस चलोगे, और वह चलना भी धीमा होगा। तुम धीरे-धीरे चलोगे, जैसे कोई गर्भवती स्त्री चलती है। तुम धीरे-धीरे, अत्यंत सावधानी से चलोगे। तुम कुछ लेकर चल रहे हो।

और जब तुम ज्योतिशिखा लेकर चलोगे तो इसके ठीक विपरीत घटना घटेगी: तुम्हारी चाल तेज हो जाएगी; बल्कि तुम दौड़ना पसंद करोगे। गति बढ़ जाएगी, तुम अधिक सक्रिय हो जाओगे। अंधकार को लेकर चलते समय तुम विश्रांत हो जाओगे। दूसरों को यह लगने लगेगा कि तुम सुस्त हो गए हो।

जिन दिनों मैं यूनिवर्सिटी में था, तो दो वर्ष से मैं यह प्रयोग कर रहा था। मैं इतना सुस्त हो गया कि सुबह बिस्तर से उठना भी कठिन हो गया। मेरे प्रोफेसर इस बात से बड़े परेशान हो गए, और उन्हें लगा कि मेरे साथ कोई गड़बड़ हो गई है—या तो मैं बीमार हूँ, या बिलकुल उदासीन हो गया हूँ। एक प्रोफेसर जो मुझसे बहुत प्रेम करते थे, मेरे विभागाध्यक्ष, इतने चिंतित हो गए कि परीक्षा के दिनों में सुबह मुझे होस्टल से परीक्षा-भवन ले जाने के लिए आते ताकि मैं समय पर पहुंच जाऊँ। प्रतिदिन जब वे यह देख लेते कि मैं परीक्षाभवन में प्रवेश कर गया हूँ, तभी वे चैन की सांस लेते और घर जाते।

इस प्रयोग को करके देखो। अपने गर्भ

में अंधकार को लेकर चलना, अंधकारमय हो जाना जीवन के सुंदरतम अनुभवों में से है। चलते हुए, खाते हुए, बैठे हुए, कुछ भी करते हुए, स्मरण रखो कि अंधकार

तुम्हारे भीतर भरा हुआ है; तुम उससे भरे हुए हो। और फिर देखो चीजें किस प्रकार रूपांतरित होती हैं। तुम उत्तेजित नहीं हो सकते, बहुत सक्रिय नहीं हो सकते, तनाव

में नहीं आ सकते। तुम्हारी नींद इतनी गहरी हो जाएगी कि स्वप्न विलीन हो जाएंगे और सारा दिन तुम इस प्रकार चलोगे जैसे नशे में हो।²

शिव ने कहा: जब वर्षा ऋतु
की चंद्रविहीन रात न
उपलब्ध हो तो आंखें बंद करो और
अपने समक्ष अंधकार को खोज लो, फिर
आंखें खोलते हुए अंधकार को देखो।
इस प्रकार दोष सदा के लिए विलीन हो
जाते हैं।

आंतरिक अंधकार को बाहर लाओ

यह कुछ ज्यादा कठिन है। पिछली
विधि में तुम वास्तविक अंधकार भीतर
लिए चलते हो। इस विधि में तुम झूठे
अंधकार को बाहर लाते हो—लाते चले
जाते हो। अपनी आंखें बंद करो, अंधेरे
को महसूस करो; आंखें खोलो, और
खुली आंखों से अंधकार को बाहर देखो।
इसी प्रकार तुम झूठे अंधकार को बाहर
फेंकते हो—उसे फेंकते रहो। इसमें तीन
से छह सप्ताह तक लगेंगे, और तब एक

दिन अचानक तुम आंतरिक अंधकार
को बाहर ला पाओगे। जिस दिन तुम
आंतरिक अंधकार को बाहर ला पाओ,
तुमने भीतर के वास्तविक अंधकार को
पा लिया। वास्तविक को ही लेकर चला
जा सकता है; झूठे को लेकर नहीं चला जा
सकता।

और यह बड़ा जादुई अनुभव है। यदि
तुम आंतरिक अंधकार को बाहर ला सको,
तो एक प्रकाशित कमरे में भी तुम उसे

बाहर ला सकते हो, और अंधकार का एक
टुकड़ा तुम्हारे समक्ष फैल जाएगा। यह
बहुत ही अटपटा अनुभव है, क्योंकि
कमरा प्रकाशित है। यदि तुम आंतरिक
अंधकार तक पहुंच गए हो तो सूर्य के
प्रकाश में भी उसे बाहर ला सकते हो।
फिर अंधकार का एक टुकड़ा तुम्हारी
आंखों के सामने छा जाता है। तुम उसे
फैलाते चले जा सकते हो।

एक बार तुम जान जाओ कि यह हो

सकता है, तो तुम सूर्य के पूरे प्रकाश में भी अंधेरी से अंधेरी रात जैसा अंधकार फैला सकते हो। सूर्य निकला हुआ है, लेकिन तुम अंधकार फैला सकते हो। अंधकार सदा मौजूद है; जब सूर्य मौजूद हो तब भी अंधकार तो रहता ही है। तुम उसे देख नहीं सकते; वह सूर्य के प्रकाश से ढंका रहता है। एक बार तुम जान जाओ कि उसे कैसे उधाड़ना है, तो तुम उसे उधाड़ सकते हो।

यही विधि है। पहले उसे भीतर अनुभव करो; उसे गहन रूप से अनुभव करो ताकि उसे बाहर भी प्रत्यक्ष कर सको। तब अचानक आंखें खोलो और उसे बाहर अनुभव करो। इसमें समय लगेगा।

और यदि तुम आंतरिक अंधकार को बाहर ला पाओ तो दोष सदा के लिए विलीन हो जाते हैं, क्योंकि यदि आंतरिक अंधकार की अनुभूति हो जाए तो तुम इतने शीतल, इतने शांत, इतने अनुतेजित हो जाओगे कि दोष तुम्हारे साथ रह ही नहीं सकते।

इसे स्मरण रखो: दोष तभी रह सकते हैं जब तुममें उत्तेजित होने की संभावना हो,

यदि तुममें उत्तेजित होने की प्रवृत्ति हो। वे अपने आप से ही नहीं रहते; वे तुम्हारे उत्तेजित होने की क्षमता के कारण होते हैं। कोई तुम्हारा अपमान कर देता है, और उस अपमान को आत्मसात कर लेने के लिए तुम्हारे भीतर कोई अंधकार न हो, तो तुम जलने लगते हो, क्रोधित हो जाते हो, प्रज्वलित हो जाते हो, और तब सब कुछ संभव है। तुम हिंसक हो सकते हो, हत्या कर सकते हो, वह काम तक कर सकते हो जो कोई पागल ही करे। कुछ भी संभव है—अब तुम पागल हो गए। कोई तुम्हारी प्रशंसा कर देता है: तब फिर तुम दूसरी अति पर पहुंचकर पागल हो जाते हो।

तुम्हारे चारों ओर परिस्थितियाँ हैं, और तुम उन्हें आत्मसात करने में सक्षम नहीं हो। किसी बुद्ध का अपमान करो: वह उसे आत्मसात कर सकता है, चुपचाप उसे निगल सकता है, पचा सकता है। उस अपमान को कौन पचाता है?—अंधकार का, मौन का एक आंतरिक सरोवर। तुम कोई भी विषाक्त चीज उसमें फेंक दो; वह आत्मसात हो जाती है। उससे कोई

प्रतिक्रिया नहीं उठती। इसे करके देखो। जब कोई तुम्हारा अपमान करे, तो इतना स्मरण रखो कि तुम अंधकार से भरे हुए हो, और अचानक तुम्हें लगेगा कि कोई प्रतिक्रिया नहीं हो रही। तुम एक सड़क से गुजरते हो; किसी सुंदर स्त्री या पुरुष को देखा—तुम उत्तेजित हो जाते हो। अनुभव करो कि तुम अंधकार से भरे हुए हो; अचानक उत्तेजना विलीन हो जाती है। यह प्रयोग तुम करके देखो। यह बिल्कुल प्रयोगात्मक है, इस पर विश्वास करने की कोई जरूरत नहीं है।

जब भी तुम्हें लगे कि तुम उत्तेजना से या इच्छा से या कामवासना से भर गए हो तो बस आंतरिक अंधकार का स्मरण करो। एक क्षण के लिए अपनी आंखें बंद करो और अंधकार को अनुभव करो और तुम देखोगे कि उत्तेजना विलीन हो गई, कामना नहीं रही। आंतरिक अंधकार ने उसे आत्मसात कर लिया। तुम एक अनंत शून्य हो गए जिसमें कुछ भी गिर जाए तो वापस नहीं लौटेगा। अब तुम एक अंतहीन खाई की भांति हो गए।³

ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी करना

पहली बात है अपनी ऊर्जा को अनुभव करना। पहला प्रश्न इस बात का नहीं है कि, "उसका उपयोग कैसे करना है?" पहली बात है: कैसे उसे अनुभव करना और कैसे उसे सघनता से, उत्कट अभीप्सा से, समग्रता से अनुभव किया जाए। और सौंदर्य यह है कि एक बार तुम अपनी ऊर्जा को अनुभव कर लो तो यह अंतर्बोध भी उठता है कि उसे कैसे उपयोग करना है।

ऊर्जा तुम्हारा मार्गदर्शन करने लगती है। तुम ऊर्जा का मार्गदर्शन नहीं करते: इसके विपरीत, ऊर्जा अपने आप से ही गति करने लगती है और तुम बस उसका अनुसरण करते हो। फिर सहजता आती है, फिर मुक्ति आती है।।

शि व ने कहा: अपनी प्राण-शक्ति को मेरुदंड पर केंद्र से केंद्र की ओर गति करती हुई प्रकाश-किरण समझो; और इस प्रकार तुममें जीवंतता का उदय होता है।

बहुत-सी योग पद्धतियां इस पर आधारित हैं। पहले समझो कि यह क्या है, और तब प्रयोग। मेरुदंड, रीढ़ तुम्हारे शरीर और मन दोनों का आधार है। तुम्हारा

जीवन ऊर्जा का आरोहण - 1

मस्तिष्क, तुम्हारा सिर, तुम्हारी रीढ़ का अंतिम छोर है। पूरा शरीर मेरुदंड में मूलबद्ध है। यदि मेरुदंड युवा है, तो तुम युवा हो। यदि मेरुदंड वृद्ध है, तो तुम वृद्ध हो। यदि तुम अपने मेरुदंड को युवा रख सको, तो वृद्ध हो पाना कठिन है। तुम्हारा सब कुछ मेरुदंड पर ही निर्भर है। यदि तुम्हारा मेरुदंड जीवंत है, तो तुम्हारे मस्तिष्क में प्रखर मेधा होगी। यदि वह मंद और मृत है, तो तुम्हारा मस्तिष्क मंद होगा। पूरा योग कई-कई ढंगों से प्रयास

करता है कि तुम्हारी मेरुदंड जीवंत, प्रखर, आलोकित, युवा और ताजा हो जाए।

मेरुदंड के दो छोर हैं। आरंभ में काम-केंद्र है और अंत में सहस्रार—सिर के ऊपर का सातवां चक्र है। मेरुदंड का आरंभ पृथ्वी से जुड़ा है, और कामवासना तुम्हारे भीतर सबसे पार्थिव चीज है। अपने मेरुदंड के आरंभिक चक्र से तुम सृष्टि के संपर्क में आते हो, उसके संपर्क में आते हो जिसे प्रकृति, पृथ्वी या पदार्थ कहा गया है। अंतिम चक्र, या दूसरे ध्रुव—सिर के

भीतर स्थित सहस्रार—से तुम दिव्य के, परमात्मा के संपर्क में आते हो। तुम्हारे अस्तित्व के ये दो ध्रुव हैं: पहला काम-केंद्र है और दूसरा सहस्रार है। अंग्रेजी में सहस्रार के लिए कोई शब्द नहीं है। ये दो ध्रुव हैं—या तो तुम्हारा जीवन काम-उन्मुख होगा, या सहस्रार-उन्मुख होगा। या तो तुम्हारी ऊर्जा काम-केंद्र से नीचे पृथ्वी की ओर बहेगी, या सहस्रार से ब्रह्मांड में विलीन हो जाएगी। सहस्रार से तुम ब्रह्म में, परम अस्तित्व में प्रवाहित होते

हो। काम-केंद्र से तुम सापेक्ष अस्तित्व में बह जाते हो। ये दो प्रवाह हैं, दो संभावनाएं हैं। जब तक तुम ऊपर की ओर बहना न शुरू कर दो, तुम्हारा दुख कभी समाप्त नहीं होगा। हो सकता है तुम्हें सुख की झलकें मिली हों, लेकिन केवल झलकें ही—और वे भी भ्रांतियां हैं।

जब ऊर्जा ऊपर की ओर उठने लगेगी तो तुम्हें अधिकाधिक वास्तविक झलकें मिलने लगेंगी। और एक बार वह सहस्रार पर पहुंच जाए और वहां से मुक्त हो जाए तो तुम्हें पूर्ण आनंद प्राप्त होगा—वही निर्वाण है। फिर कोई झलकें नहीं आतीं: तुम स्वयं ही आनंद बन जाते हो। तो योग और तंत्र के लिए पूरी बात ही यह है कि कैसे ऊर्जा को मेरुदंड के, रीढ़ के माध्यम से ऊपर की ओर उठाया जाए, कैसे उसे गुरुत्वाकर्षण के विपरीत गतिमान किया जाए। कामवासना बहुत सरल है क्योंकि वह गुरुत्वाकर्षण का अनुसरण करती है। पृथ्वी हर चीज को वापस नीचे खींच रही है; तुम्हारी काम-ऊर्जा पृथ्वी के द्वारा खींची जा रही है। शायद तुमने सुना न हो, लेकिन अंतरिक्षयात्रियों को यह अनुभव होता है—जिस क्षण वे पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकलते हैं, उन्हें कामुकता का कोई बहुत अनुभव नहीं होता। जैसे ही शरीर भार खोता है, कामुकता विलीन हो जाती है, समाप्त हो जाती है।

पृथ्वी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नीचे की ओर खींच रही है और यह स्वाभाविक है, क्योंकि जीवन-ऊर्जा पृथ्वी से ही आती है।

तुम भोजन लेते हो तो अपने भीतर जीवन-ऊर्जा निर्मित कर रहे हो; वह पृथ्वी से आती है, और पृथ्वी उसे वापस खींच रही है। सबकुछ अपने स्रोत पर लौट जाता है। और यदि यह इसी तरह से चलता रहता है, कि जीवन-ऊर्जा बार-बार वापस लौटती रहे, तो तुम एक चक्र में गति कर रहे हो; तुम जन्मों-जन्मों तक चक्कर लगाते रहोगे। इस प्रकार तुम अनंतकाल तक चक्कर लगाते रह सकते हो जब तक कि तुम अंतरिक्षयात्रियों की तरह छलांग न ले लो। अंतरिक्षयात्रियों की तरह तुम्हें छलांग लगानी होगी और वर्तुल से बाहर निकल आना होगा। फिर पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का ढांचा टूट जाता है। उसे तोड़ा जा सकता है।

कैसे उसे तोड़ा जा सके वे विधियां यहां हैं—कि कैसे ऊर्जा तुम्हारे भीतर ऊर्ध्वगामी होकर नए-नए केंद्रों पर पहुंचती हुई ऊपर उठ सकती है; कि कैसे तुम्हारे भीतर नई-नई ऊर्जाएं प्रगट की जाएं, जो तुम्हें हर प्रवाह के साथ एक नया व्यक्ति बना जाएं। और जिस क्षण ऊर्जा तुम्हारे सहस्रार से, काम के विपरीत ध्रुव से मुक्त होती है, तो तुम मनुष्य नहीं रहते। फिर तुम इस पृथ्वी से संबंधित नहीं रहते; तुम दिव्य हो गए। जब हम कहते हैं कृष्ण भगवान हैं, या बुद्ध भगवान हैं, तो उसका यही अर्थ है। उनके शरीर तो तुम्हारे जैसे ही हैं। उनके शरीरों को बीमार पड़ना होगा और उनको मरना भी होगा। उनके शरीरों में तो सबकुछ वैसा ही होता है जैसे तुम्हें होता है। उनके शरीर में बस एक ही चीज

नहीं हो रही जो तुम्हारे शरीर में हो रही है; ऊर्जा ने गुरुत्वाकर्षण का बंधन तोड़ दिया है।

वह तुम नहीं देख सकते; वह तुम्हारी आंखों को दिखाई नहीं देता। लेकिन कभी जब तुम किसी बुद्ध के पास बैठे होओ, तो यह अनुभव कर सकते हो। अचानक तुम्हें लगता है कि तुम्हारे भीतर ऊर्जा का संचार हुआ और तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की ओर गति करने लगती है। तभी तुम्हें बोध होता है कि कुछ हुआ। किसी बुद्ध के संपर्क में आते ही तुम्हारी ऊर्जा ऊपर सहस्रार की ओर उठने लगती है। एक बुद्ध इतना शक्तिशाली है, कि पृथ्वी भी कम शक्तिशाली रह जाती है, वह तुम्हारी ऊर्जा को नीचे की ओर नहीं खींच सकती। किसी जीसस, किसी बुद्ध, किसी कृष्ण के आस-पास जिन्होंने यह अनुभव किया उन्होंने उन्हें भगवान कहा है। उनके पास ऊर्जा का एक भिन्न स्रोत है जो पृथ्वी से अधिक मजबूत है।

गुरुत्वाकर्षण के इस बंधन को किस प्रकार तोड़ा जा सकता है? यह विधि इस ढांचे को तोड़ने में बड़ी उपयोगी है। पहले एक बुनियादी बात को समझ लो। एक, तुमने यदि कभी ध्यान दिया हो, तो तुमने देखा होगा कि तुम्हारी काम-ऊर्जा कल्पना से गति करती है। कल्पना से ही तुम्हारा काम-केंद्र सक्रिय हो जाता है। वास्तव में, कल्पना के बिना वह सक्रिय हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि जब तुम किसी के साथ प्रेम में होते हो तो वह बेहतर ढंग से कार्य कर सकता है: क्योंकि प्रेम के

साथ कल्पना प्रवेश कर जाती है। यदि तुम प्रेम में नहीं हो तो यह बहुत कठिन हो जाता है। फिर वह सक्रिय नहीं होता।

काम-केंद्र क्योंकि कल्पना से सक्रिय होता है, तो तुम सपनों में भी उत्तेजित और स्थिति हो सकते हो—वे वास्तविक हैं; स्वप्न केवल कल्पना है। यह देखा गया कि यदि शारीरिक रूप से आदमी स्वस्थ हो तो हर पुरुष रात में कम से कम दस बार कामोत्तेजित होता है। मन की हर गति के साथ, काम के थोड़े से विचार से भी, उत्तेजना आ जाएगी। तुम्हारे मन में बहुत-सी ऊर्जाएँ हैं, बहुत-सी क्षमताएँ हैं, और उनमें से एक है इच्छाशक्ति। लेकिन काम की तुम इच्छा नहीं कर सकते। कामवासना के लिए इच्छा नपुंसक है। यदि तुम किसी से प्रेम करने की चेष्टा करो, तो तुम्हें लगेगा कि तुम नपुंसक हो गए हो। इसलिए कभी चेष्टा मत करो।

इच्छा कभी कामवासना के साथ सक्रिय नहीं होती; केवल कल्पना ही कार्य करेगी। कल्पना करो, और काम-केंद्र सक्रिय होने लगेगा। मैं इस तथ्य पर क्यों जोर दे रहा हूँ?—क्योंकि यदि कल्पना ऊर्जा को गतिमान होने में सहयोग करती है, तो तुम कल्पना से ही उसे ऊपर या नीचे की ओर गतिमान कर सकते हो। कल्पना के द्वारा तुम अपने रक्त को गतिमान नहीं कर सकते; कल्पना के द्वारा तुम शरीर में और कुछ भी नहीं कर सकते। लेकिन काम-ऊर्जा को कल्पना द्वारा गतिमान किया जा सकता है, तुम उसकी दिशा बदल सकते हो।

यह सूत्र कहता है, “अपनी प्राण-शक्ति को प्रकाश-किरण मानो...” स्वयं को, अपने अस्तित्व को प्रकाश किरण की भांति सोचो... “मेरुदंड पर केंद्र से केंद्र की ओर गति करती हुई,” रीढ़ पर चढ़ती हुई, “और इस प्रकार तुममें जीवंतता का उदय होता है।”

योग ने तुम्हारे मेरुदंड को सात चक्रों में बांटा है। पहला है काम-केंद्र और अंतिम है सहस्रार, और इन दोनों के बीच पांच चक्र हैं। कई व्यवस्थाएँ उसे पांच में विभाजित करती हैं। अन्य कुछ व्यवस्थाएँ नौ में विभाजित करती हैं, कुछ तीन में, कुछ चार में: विभाजन अर्थपूर्ण नहीं है। तुम अपना स्वयं का विभाजन बना ले सकते हो। पांच चक्र प्रयोग करने के लिए पर्याप्त हैं: पहला काम-केंद्र है, दूसरा नाभि के ठीक पीछे, तीसरा ठीक हृदय के पीछे, चौथा तुम्हारी दो भौहों के पीछे, ठीक बीच में, मस्तक के मध्य में। और पांचवा चक्र, सहस्रार, ठीक सिर के शिखर पर है। ये पांच काम देंगे।

यह सूत्र कहता है, “स्वयं को...मानो”: जिसका अर्थ हुआ अपनी कल्पना करो—अपनी आँखें बंद कर लो और कल्पना करो कि तुम प्रकाश हो। यह मात्र कल्पना ही नहीं है। प्रारंभ में तो यह कल्पना है, लेकिन यह वास्तविकता भी है क्योंकि सबकुछ प्रकाश से ही बना है। विज्ञान अब कहता है कि सबकुछ प्रकाश से बना है; विज्ञान कहता है कि सबकुछ विद्युत से बना है। तंत्र ने सदा से यही कहा है कि सबकुछ प्रकाश-कणों से बना

है—और तुम भी। इसीलिए कुरान कहती है कि परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश हो!

पहले यह कल्पना करो कि तुम प्रकाश की किरणें मात्र हो; फिर अपनी कल्पना को काम-केंद्र पर ले जाओ। अपने होश को वहाँ केंद्रित करो और अनुभव करो कि काम-केंद्र से प्रकाश की किरणें ऊपर की ओर उठ रही हैं, जैसे कि काम-केंद्र प्रकाश का एक स्रोत बन गया हो और प्रकाश-किरणें एक अतिशय में नाभिकेंद्र की ओर ऊपर उठ रही हों।

विभाजन की जरूरत है क्योंकि तुम्हारे लिए अपने काम-केंद्र को सहस्रार से जोड़ना कठिन होगा। इसलिए छोटे-छोटे विभाजन सहायक होंगे। यदि तुम सीधे ही जुड़ सको, तो किसी विभाजन की जरूरत नहीं है। तुम फिर काम-केंद्र और उसके बाद के सारे विभाजनों को छोड़ सकते हो, और ऊर्जा, जो जीवन शक्ति है वह प्रकाश की तरह सहस्रार की ओर उठ जाएगी। लेकिन विभाजन अधिक सहयोगी होंगे क्योंकि तुम्हारा मन छोटे खंडों को अधिक सरलता से आत्मसात कर सकता है।

तो बस यह अनुभव करो कि ऊर्जा, प्रकाश-किरणें एक नदी की भांति तुम्हारे काम-केंद्र से नाभि की ओर उठ रही हैं। तत्क्षण तुम अपने भीतर एक उष्णता को उदित होता अनुभव करोगे। शीघ्र ही तुम्हारी नाभि गरम हो जाएगी। तुम गरमी को अनुभव कर सकते हो; दूसरे भी उस गरमी को अनुभव कर सकते हैं। तुम्हारी कल्पना से काम-ऊर्जा उठाना शुरू कर देगी। जब तुम्हें लगे नाभि पर स्थित दूसरा

केंद्र अब प्रकाश-स्रोत बन गया है, कि किरणें अब आकर वहां इकट्ठी हो रही हैं, तो फिर हृदय केंद्र की ओर बढ़ना शुरू करो। जैसे-जैसे प्रकाश हृदय केंद्र पर पहुंचेगा, जैसे-जैसे किरणें आएंगी, तुम्हारी हृदयगति बदल जाएगी। तुम्हारी श्वास गहरी हो जाएगी, और तुम्हारे हृदय में एक उष्णता आ जाएगी। इस तरह ऊपर की ओर बढ़ते रहो।

और जैसे ही तुम्हें उष्णता की अनुभूति होगी, उसके साथ ही साथ तुम अनुभव करोगे कि एक 'जीवंतता', एक नया जीवन तुममें आविर्भूत हो रहा है, एक आंतरिक प्रकाश ऊर्ध्वगति कर रहा है। काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं: एक शारीरिक और एक साइकिक, मानसिक। तुम्हारे शरीर में हर चीज के दो हिस्से हैं। ठीक तुम्हारे शरीर और मन की तरह, तुम्हारे भीतर हर चीज के दो हिस्से हैं—एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक।

काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं। भौतिक हिस्सा है वीर्य। वह ऊपर नहीं उठ सकता; उसके लिए कोई मार्ग नहीं है। इस कारण पश्चिम के कई मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तंत्र और योग की पद्धतियाँ बकवास हैं और वे उनको पूरी तरह से इनकार करते हैं। काम-ऊर्जा कैसे ऊपर उठ सकती है? न कोई मार्ग है और न ही काम-ऊर्जा ऊपर उठ सकती है। वे सही हैं, फिर भी गलत हैं। वीर्य, जो भौतिक हिस्सा है, ऊपर नहीं उठ सकता, लेकिन वही सब कुछ नहीं है—वह केवल काम-ऊर्जा का स्थूल शरीर है; वह काम-ऊर्जा नहीं है।

काम-ऊर्जा उसका साइकिक, ऊर्जागत हिस्सा है, और साइकिक हिस्सा ऊपर उठ सकता है। और उस साइकिक हिस्से के लिए मेरुदंड का उपयोग किया जाता है—मेरुदंड और उसके चक्रों का। लेकिन उसका अनुभव करना होता है, और तुम्हारी अनुभूतियाँ मृत हो चुकी हैं।

मुझे स्मरण आता है कि कहीं किसी मनोचिकित्सक ने एक मरीज, एक महिला के बारे में लिखा है। वह उसे कुछ अनुभव करने को कह रहा था लेकिन मनोचिकित्सक को लगा कि वह अनुभव नहीं कर रही थी, बल्कि अनुभूति के बारे में सोच रही थी, और वह एक अलग बात है। तो मनोचिकित्सक ने अपना हाथ स्त्री के हाथ पर रखा और उसे दबाया, स्त्री को कहा कि वह आंख बंद करके बताए कि उसे क्या अनुभव हो रहा है। वह तत्क्षण बोली कि, “मुझे आपके हाथ का अनुभव हो रहा है।”

लेकिन मनोचिकित्सक ने कहा, “नहीं, यह तुम्हारी अनुभूति नहीं है। यह केवल तुम्हारा विचार है, तुम्हारा अनुमान है। मैंने अपना हाथ तुम्हारे हाथ में रखा है; तुम कहती हो तुम मेरे हाथ को अनुभव कर रही हो। लेकिन तुम अनुभव नहीं कर रही। यह अनुमान है। तुम क्या अनुभव कर रही हो?” तो उसने कहा, “मैं आपकी अंगुलियाँ अनुभव कर रही हूँ।”

मनोचिकित्सक ने फिर से कहा, “नहीं, यह अनुभव नहीं है। किसी चीज का अनुमान मत लगाओ। बस अपनी आंखें बंद करो और उस स्थान पर पहुंच जाओ

जहां मेरा हाथ है; फिर मुझे बताओ कि तुम क्या अनुभव करती हो।” तब वह बोली, “ओह! मैं तो पूरी बात ही चूके जाती थी। मैं दबाव और उष्णता महसूस कर रही हूँ।”

जब कोई हाथ तुम्हें स्पर्श करता है तो हाथ का अनुभव नहीं होता। दबाव और उष्णता का अनुभव होता है। हाथ तो मात्र एक अनुमान है, एक बौद्धिक बात है, अनुभूति नहीं। अनुभूति तो है दबाव और उष्णता का। अब वह अनुभव कर रही थी।

हमने भाव को बिलकुल खो दिया है। तुम्हें भाव को विकसित करना होगा। तभी तुम इस प्रकार की विधियाँ कर सकते हो। वरना, वे कार्य नहीं करेंगी। तुम बस बौद्धिक व्याख्या कर लोगे। तुम सोचोगे कि तुम अनुभव कर रहे हो, और अस्तित्वगत कुछ भी नहीं होगा। यही कारण है कि मेरे पास आकर लोग कहते हैं, “आप तो हमें बताते हैं कि यह विधि बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन इससे कुछ भी नहीं होता।” उन्होंने प्रयास तो किया, लेकिन वे एक आयाम को चूक रहे हैं—भाव का आयाम। तो पहले तुम्हें भाव के आयाम को विकसित करना होगा, और तब कुछ विधियाँ हैं जो तुम कर सकते हो।

भाव-केंद्र सक्रिय हो जाना चाहिए, तभी ये विधियाँ सहायक होंगी। वरना तुम सोचते रहोगे कि ऊर्जा ऊपर उठ रही है, लेकिन कोई अनुभूति नहीं होगी। और यदि कोई भाव की शक्ति न हो, तो कल्पना नपुंसक है, व्यर्थ है। केवल एक

भावपूर्ण कल्पना ही तुम्हें कोई परिणाम दे सकती है। तुम और बहुत-सी चीजें कर सकते हो और उन्हें करने के लिए किसी विशेष प्रयास की जरूरत नहीं है। जब तुम सोने लगे तो अपने बिस्तर को महसूस करो, तकिए को महसूस करो—शीतलता को महसूस करो। बस उसके प्रति उन्मुख हो जाओ : तकिए के साथ खेले।

अपनी आंखें बंद कर लेो और एअर कंडिशनर की, या ट्रैफिक की, या घड़ी अथवा किसी भी चीज की आवाज को सुनो। बस सुनो। उस पर कोई लेबल मत लगाओ, कुछ भी कहो मत। मन का प्रयोग न करो। बस अनुभूति में जिओ। सुबह, जागरण के पहले क्षण में जब तुम्हें लगे कि अब नींद जा चुकी, तो सोचने मत लगे। कुछ क्षण के लिए तुम फिर से बच्चे बन सकते हो—निर्दोष, ताजे। सोचना शुरू मत करो। मत सोचो कि तुम क्या करने वाले हो और कब तुम्हें दफ्तर के लिए जाना है, और कौन-सी ट्रेन तुम पकड़ने वाले हो। सोचना शुरू मत करो। उन सब फिजूल की बातों के लिए तुम्हारे पास काफी समय होगा। जरा ठहरो।

कुछ क्षण के लिए बस आवाजों को सुनो। कोई पक्षी गीत गा रहा है या वृक्षों से हवा गुजर रही है, या कोई बच्चा रो रहा है, या फिर दूध वाला आया है और आवाजें कर रहा है, या दूध उडेलता जा रहा है। जो कुछ भी हो, उसे अनुभव करो। उसके प्रति संवेदनशील रहो, खुले रहो। उसे अपने साथ घटित होने दो और तुम्हारी संवेदनशीलता विकसित होगी।

संवेदनशीलता और भाव पैदा करो। फिर तुम्हारे लिए इन विधियों को करना सरल होगा, और फिर तुम अपने भीतर जीवंतता को उदय होता अनुभव करोगे। इस ऊर्जा को बीच में कहीं भी मत छोड़ो। उसे सहस्रार तक आने दो। यह स्मरण रखो : जब भी तुम इस प्रयोग को करो तो इसे बीच में मत छोड़ो। तुम्हें इसे पूरा करना है। इस बात का ध्यान रखो कि कोई तुम्हें बाधा न डाले। यदि इस ऊर्जा को तुम बीच में कहीं छोड़ दो, तो वह हानिकारक हो सकती है। उसे मुक्त करना है। तो उसे सिर तक ले आओ और भाव करो कि सिर एक खुलापन बन गया है।

भारत में हमने सहस्रार को कमल की भांति चित्रित किया है—एक सहस्र पंखुड़ी वाले कमल की भांति। 'सहस्रार' का अर्थ है सहस्र पंखुड़ी वाला, सहस्र पंखुड़ियों का खुल जाना। जरा हजार पंखुड़ी वाले कमल की कल्पना करो, जो खुल गया है, और उसकी हर पंखुड़ी से यह प्रकाश-ऊर्जा ब्रह्मांड में जा रही है। फिर से, यह एकग्रैम-कृत्य है—प्रकृति से नहीं, अब तो परम के साथ। फिर से, यह एक आनंद-शिखर, एक आर्गाज्म हो गया।

दो प्रकार के आनंद-शिखर (आर्गाज्म) हैं : एक यौनजन्य है और दूसरा है आध्यात्मिक। यौनजन्य आर्गाज्म निम्नतम केंद्र से आता है और आध्यात्मिक आर्गाज्म उच्चतम केंद्र से आता है। उच्चतम केंद्र से तुम उच्चतम से मिलते हो और निम्नतम केंद्र से तुम्हारा निम्नतम से

मिलन होता है। काम-कृत्य के समय भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो : दोनों साथी इसे कर सकते हैं। ऊर्जा को ऊपर की ओर ले जाओ, और काम-कृत्य तंत्र की साधना बन जाता है : ध्यान बन जाता है।

लेकिन ऊर्जा को शरीर के भीतर किसी चक्र पर मत छोड़ दो। हो सकता है कोई आ जाए और तुम्हें कुछ करना पड़े, या कोई फोन आ जाए और तुम्हें रुकना पड़े। तो इस प्रयोग को किसी ऐसे समय पर करो कि कोई भी तुम्हें बाधा न डाले, और ऊर्जा को किसी भी केंद्र में मत छोड़ो। वरना जिस केंद्र में तुम ऊर्जा को छोड़ोगे वह एक घाव बन जाएगा, और तुम बहुत से मानसिक रोग पैदा कर ले सकते हो। तो सचेत रहो; अन्यथा इस प्रयोग को मत करो। इस विधि के लिए बिलकुल एकांत चाहिए, और कोई बाधा न हो, और इसे पूरा ही करना चाहिए। ऊर्जा सिर तक आनी चाहिए, और वहां से मुक्त हो जानी चाहिए।

तुम्हें कई अनुभव होंगे। जब तुम्हें लगेगा कि किरणें ऊपर की उठने लगीं, तो कई बार कामोत्तेजना होगी या काम-केंद्र पर सनसनी होगी। कई लोग बड़े भयभीत और घबड़ाए हुए मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि जब भी वे ध्यान करने लगते हैं, जब भी वे गहरे जाने लगते हैं, तो कामोत्तेजना उठ आती है। वे हैरान होते हैं कि यह क्या है? वे भयभीत हो जाते हैं क्योंकि उनका विचार है कि ध्यान में काम नहीं होना चाहिए। लेकिन तुम जीवन के कार्य करने का ढंग नहीं जानते। यह एक

शुभ लक्षण है। इससे पता चलता है कि अब ऊर्जा वहां जीवंत है। अब उसे गति चाहिए। तो भयभीत मत होओ और यह मत सोचो कि कुछ गलत हो रहा है। यह एक शुभ लक्षण है।

जब तुम ध्यान करने लगोगे तो काम-केंद्र अधिक संवेदनशील, जीवंत, और उत्तेजित हो जाएगा, और प्रारंभ में तो उत्तेजना किसी कामोत्तेजना जैसी ही होगी—लेकिन केवल प्रारंभ में ही। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहराएगा, तुम ऊर्जा को ऊपर की ओर बहता अनुभव करोगे। जैसे-जैसे फिर ऊर्जा बहती है, काम-केंद्र शांत व कम उत्तेजित हो जाता है।

जब ऊर्जा वास्तव में सहस्रार पर पहुंच जाती है तो काम-केंद्र पर कोई संवेदना नहीं होगी। वह बिलकुल शांत और स्थिर हो जाएगा। वह पूरी तरह शीतल हो जाएगा, और उष्मा सिर पर पहुंच जाएगी। और यह शारीरिक घटना है। जब काम-केंद्र उत्तेजित होता है, तो गरम हो

जाता है। तुम उस गरमी को अनुभव कर सकते हो; वह शारीरिक है। जब ऊर्जा गति करती है, तो काम-केंद्र शीतल से शीतल होता जाएगा और उष्मा सिर में पहुंच जाएगी। तुम चक्कर-सा आता अनुभव करोगे।

जब ऊर्जा सिर पर पहुंचेगी तो तुम चक्कर-सी बेचैनी अनुभव करोगे। कई बार तो तुम्हें मितली का जी भी हो सकता है क्योंकि ऊर्जा पहली बार सिर पर आई है और तुम्हारा सिर उससे परिचित नहीं है। उससे तालमेल बिठाना है। तो डरो मत। कई बार तो हो सकता है कि तुम तत्क्षण बेहोश हो जाओ, लेकिन डरो मत। यह होता है। यदि इतनी ज्यादा ऊर्जा अचानक गति करने लगे और सिर में विस्फोटित हो जाए, तो शायद तुम बेहोश हो जाओ। लेकिन वह बेहोशी एक घंटे से अधिक नहीं रह सकती। एक घंटे के भीतर ऊर्जा स्वयं ही पीछे लौट जाती है या मुक्त हो जाती है। मैं कहता हूं एक घंटा, लेकिन वास्तव में यह समय ठीक 48 मिनट है।

उससे अधिक नहीं हो सकता। हजारों वर्ष के प्रयोगों में उससे अधिक समय नहीं लगा है, इसलिए डरो मत। यदि तुम बेहोश भी हो जाओ तो ठीक है। उस बेहोशी के बाद तुम इतने ताजे अनुभव करोगे कि जैसे पहली बार तुम गहनतम नींद में सोए हो।

योग ने इसे एक विशेष नाम दिया है: 'योग तंद्रा'—योग-निद्रा। वह नींद बहुत गहरी है: तुम गहनतम केंद्र पर चले जाते हो। लेकिन डरो मत। और यदि तुम्हारा सिर गरम हो जाए, तो यह एक शुभ लक्षण है। ऊर्जा को मुक्त कर दो। ऐसा अनुभव करो कि तुम्हारा सिर एक कमल के फूल की तरह खिल रहा है, जैसे कि ऊर्जा ब्रह्मांड में मुक्त हो रही है। जैसे ही ऊर्जा मुक्त होती है तुम अपने भीतर एक शीतलता को आता हुआ महसूस करोगे। तुमने उस शीतलता का कभी अनुभव ही नहीं किया जो इस गरमी के बाद आती है। लेकिन विधि को पूरा ही करो; इसे कभी भी अधूरा मत करो।²

शि व ने कहा: अथवा बीच के रिक्त स्थानों में, इसे बिजली की कौंध जैसा जानो।

थोड़े भेद से यह वैसी ही विधि है: "अथवा बीच के रिक्त स्थानों में इसे बिजली की कौंध जैसा जानो।" जब किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर आ रही हों तो

जीवन ऊर्जा का आरोहण - 2

बीच में तुम बिजली की कौंध-सा अनुभव कर सकते हो—प्रकाश की एक छलांग-सा। कुछ लोगों के लिए दूसरी विधि अधिक उपयुक्त होगी और कुछ के लिए पहली। इसीलिए थोड़ा-सा सुधार किया गया है। कुछ ऐसे लोग हैं जो क्रमिक चीजों की कल्पना नहीं कर सकते और ऐसे लोग भी हैं जो छलांग की कल्पना नहीं कर सकते। यदि तुम धीरे-धीरे सोच पाओ और कल्पना कर पाओ तो पहली विधि अच्छी है। लेकिन

तुम यदि पहली विधि करो और अचानक तुम्हें लगे कि किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर सीधे छलांग ले लेती हैं, तो पहली विधि को मत करो। दूसरी विधि तुम्हारे लिए बेहतर है: "इसे बिजली की कौंध जैसा जानो"—जैसे प्रकाश की एक चिनगारी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर छलांग लगा रही है। और दूसरी विधि अधिक वास्तविक है क्योंकि प्रकाश में छलांग लगती है। विकास क्रमिक नहीं होता, एक-एक कदम करके नहीं होता। प्रकाश

एक छलांग है।

स्त्रियों के लिए पहली विधि सरल होगी और पुरुषों के लिए दूसरी। स्त्रैण मन क्रमिकता की अधिक सरलता से कल्पना कर सकता है और पुरुष मन अधिक सरलता से छलांग लगाता है। पुरुष मन छलांग लेने वाला है: वह एक से दूसरी चीज पर छलांग लगाता है। पुरुष मन में एक सूक्ष्म बेचैनी है। स्त्रैण मन में एक क्रमिक प्रक्रिया होती है। वह छलांग लेने वाला नहीं होता। यही कारण है कि स्त्री

और पुरुष के तर्क बड़े भिन्न होते हैं। पुरुष एक चीज से दूसरी चीज पर छलांग लगाता रहता है, और स्त्रियों के लिए यह अकल्पनीय है। उनके लिए तो विकास होना चाहिए—क्रमिक विकास। लेकिन चुनाव करो। इन दोनों को करके देखो, और तुम्हें जो भी अपने लिए अच्छा लगे, उसे चुन लो।

इस विधि के संबंध में दो-तीन बातें और। बिजली की कौंध के साथ तुम्हें इतनी गरमी का अनुभव हो सकता है कि शायद वह तुम्हें असहनीय लगे। यदि तुम्हें ऐसा लगे तो इस प्रयोग को मत करो। बिजली की कौंध तुम्हें बहुत गरमी दे सकती है। यदि तुम्हें ऐसा लगे, कि यह असहनीय है,

तो इस प्रयोग को मत करो। फिर यदि पहली विधि तुम्हारे लिए सहज है, तो ठीक। अन्यथा, असहजता से इसे मत करो। कई बार विस्फोट इतना बड़ा हो सकता है कि शायद तुम उससे भयभीत हो जाओ, और एक बार भयभीत हो गए तो फिर कभी दोबारा इस प्रयोग को न कर पाओगे। फिर भय आ जाता है।

तो व्यक्ति को सदा सजग रहना होता है कि किसी भी चीज से भयभीत न हो। यदि तुम्हें लगे कि भय लगेगा, और यह तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा हो जाएगा, तो इसे मत करो। फिर प्रकाश-किरणों वाली पहली विधि सबसे अच्छी है। यदि तुम्हें लगे कि प्रकाश-किरणों से भी बहुत गरमी आ रही

है—और यह निर्भर करता है, क्योंकि लोग भिन्न हैं—तो कल्पना करो कि किरणें शीतल हैं; उनके शीतल होने की कल्पना करो। तब गरमी महसूस करने की बजाय तुम हर चीज के साथ एक शीतलता का अनुभव करोगे। वह भी प्रभावकारी होगा। तो तुम निर्णय ले सकते हो: प्रयोग करके देखो और निर्णय लो। स्मरण रखो, यदि इस विधि में या किसी और विधि में तुम्हें बहुत बेचैनी लगे या कुछ असहनीय लगे, तो उसे मत करो। दूसरी विधियाँ भी हैं, और हो सकता है यह विधि तुम्हारे लिए न हो। भीतर व्यर्थ की अशांति से तुम इतनी समस्याएँ निर्मित कर लोगे जितनी सुलझा भी नहीं पाओगे। ३

ध्वनिरहित नाद का श्रवण

कान की श्रवण ऊर्जा से संबंधित ध्यान की विधियां निष्क्रिय और स्त्रैण हैं। तुम्हें कुछ करना नहीं है; तुम्हें बस सुनना है। पक्षियों की आवाजें, हवाओं का वृक्षों से गुजरना या कोई संगीत या ट्रैफिक की आवाजें, यातायात वाहनों का शोरगुल—बस सुनना, कुछ और न करना—एक गहन मौन भीतर उठता है, एक गहन शांति तुममें उतरने और बरसने लगती है। आंखों के बदले कानों से इसका घटित होना अधिक सरल है। कानों से यह सरल है, क्योंकि कान निष्क्रिय और अनाक्रामक हैं। कान अस्तित्व में कोई बाधा नहीं डाल सकते; वे केवल चीजों को घटित होने दे सकते हैं। कान द्वार है—वह घटनाओं को प्रवाहित होने देता है।

नादब्रह्म एक प्राचीन तिब्बती विधि है जिसे सुबह ब्रह्ममुहूर्त में किया जाता रहा है। अब इसे दिन में किसी भी समय अकेले या अन्य लोगों के साथ किया जा सकता है लेकिन पेट खाली होना चाहिए और इस ध्यान के बाद पंद्रह मिनट तक विश्राम करना जरूरी है। यह ध्यान एक घंटे का है और इसके तीन चरण हैं।

नादब्रह्म ध्यान

पहला चरण : तीस मिनट

एक विश्रामपूर्ण मुद्रा में आंख और मुंह बंद करके बैठें। अब भौंरे की तरह गुंजार की ध्वनि निकालना शुरू करें। गुंजार इतना तीव्र हो कि तुम्हारे आसपास बैठे लोगों को यह सुनाई पड़ सके और गुंजार की ध्वनि के कंपन तुम्हारे पूरे शरीर में फैल सकें। स्वयं को एक खाली पात्र या खोखले ट्यूब की तरह कल्पना करो जो गुंजार की ध्वनि से भर गई हो। एक

स्थिति ऐसी आती है जब गुंजार अपने आप जारी रहता है और तुम एक श्रोता मात्र हो जाते हो। इस विधि में किसी विशेष श्वसन प्रक्रिया की जरूरत नहीं है और तुम गुंजार की लय को बदल सकते हो तथा लगे तो शरीर को धीरे-धीरे झूमने दे सकते हो।

दूसरा चरण : पंद्रह मिनट

दूसरा चरण साढ़े सात-सात मिनट के

दो भागों में बंटा हुआ है। पहले साढ़े सात मिनट में दोनों हथेलियां आकाशोन्मुखी फैला कर नाभि के पास से आगे की ओर बढ़ाते हुए चक्राकार घुमाएं। दायां हाथ दायाँ ओर और बायां हाथ बायाँ ओर चक्राकार घुमाएं। और तब वर्तुल पूरा करते हुए दोनों हथेलियों को पूर्ववत् नाभि के सामने वापस ले आएं। यह गति साढ़े सात मिनट तक जारी रखें। गति इतनी धीमी हो कि कई बार तो ऐसा लगेगा कि कोई गति ही नहीं

हो रही है। भाव करें कि आप अपनी ऊर्जा बाहर ब्रह्मांड में फैलने दे रहे हैं।

साढ़े सात मिनट के बाद हथेलियों को उलटा, भूमिउन्मुख कर लें और उन्हें विपरीत दिशा में वृत्ताकार घुमाना शुरू करें। अब फैले हुए हाथ नाभि की ओर वापस आएंगे फिर पेट के किनारे से बाहर वृत्त बनाते हुए बाजुओं में फैल कर फिर वृत्त को पूरा करते हुए नाभि की ओर वापस लौटेंगे। अनुभव करो कि तुम ऊर्जा भीतर ग्रहण कर रहे हो। पहले चरण की तरह शरीर में यदि कोई धीमी गति हो तो उसे रोकें मत, होने दें।

तीसरा चरण: पंद्रह मिनट

शांत और धिर हो कर बैठे रहें या लेट जाएं। 2

स्त्री-पुरुष जोड़ों के लिए नादब्रह्म

ओ शो ने इस विधि का एक भिन्न रूप जोड़ों के लिए दिया है। स्त्री और पुरुष आमने-सामने बैठ अपने

हाथ क्रॉस करके एक दूसरे के हाथ पकड़ लेते हैं फिर पूरा शरीर एक बड़े कपड़े से ढंक लेते हैं। यदि वे निर्वस्त्र हों तो अच्छा होगा। कमरे में मंद प्रकाश हो जैसे छोटी-छोटी चार मोमबत्तियां जल रही हों। केवल इस ध्यान के लिए अलग रखी एक अगरबत्ती का उपयोग कर सकते हैं।

आंखें बंद कर लें और तीस मिनट तक, एक साथ, भौरे की गुंजार करें। कुछ ही समय में अनुभव होगा कि ऊर्जाएं आपस में मिल रही, डूब रही और एक हो रही हैं। 3

शि व ने कहा: ओम् जैसी किसी ध्वनि का धीमे-धीमे गुंजार करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है वैसे-वैसे साधक भी।

“ओम् जैसी किसी ध्वनि का धीमे-धीमे गुंजार करो।” उदाहरण के लिए ओम् को लो। यह आधारभूत ध्वनियों में से एक है। अ उ और म—ये तीन ध्वनियां ओम् में सम्मिलित हैं। ये तीनों बुनियादी ध्वनियां हैं। अन्य सभी ध्वनियां इनसे ही निष्पन्न,

ओम् ॐ

इनसे ही बनी और इनका ही मिश्रण हैं। ये तीनों बुनियादी हैं जैसे भौतिकी के लिए इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और पाजीट्रॉन बुनियादी हैं। इस बात को गहराई से समझना होगा।...

ध्वनि का उच्चारण एक सूक्ष्म विज्ञान है। पहले तुम्हें ओम् का उच्चारण जोर से बाहर-बाहर करना है। दूसरे भी इसे सुन सकेंगे। जोर से उच्चार शुरू करना अच्छा है। क्यों? क्योंकि जब तुम जोर से उच्चार करते हो तो तुम भी उसे साफ-साफ सुनते

हो। जब भी तुम कुछ कहते हो तो दूसरों से कहते हो; वह तुम्हारी आदत बन गई है। जब भी तुम बात करते हो तो दूसरों से करते हो। और तुम स्वयं को बोलते हुए तभी सुनते हो जब तुम दूसरों से बात करते होते हो। इसलिए एक स्वाभाविक आदत से आरंभ करना अच्छा है।

ओम् ध्वनि का उच्चार करो, और फिर धीरे-धीरे उस ध्वनि के साथ लयबद्ध अनुभव करो। जब ओम् का उच्चार करो तो उससे आपूरित हो जाओ, भर जाओ।

और सब कुछ भूल जाओ; ओम् ही बन जाओ, ध्वनि ही बन जाओ। और ध्वनि ही बन जाना बहुत आसान है क्योंकि ध्वनि तुम्हारे शरीर में, तुम्हारे मन में, तुम्हारे पूरे स्नायु संस्थान में गुंजने लगती है। ओम् की अनुगूंज को अनुभव करो। ओम् का उच्चार करो और अनुभव करो कि तुम्हारा पूरा शरीर उससे भर गया है, शरीर का प्रत्येक कोश उससे गूंज उठा है।

उच्चार करना लयबद्ध होना भी है। ध्वनि के साथ लयबद्ध होओ; ध्वनि ही

बन जाओ।

और तब तुम अपने और ध्वनि के बीच गहरी लयबद्धता अनुभव करोगे; तब तुममें उसके लिए गहरा अनुराग पैदा होगा। यह ओम् की ध्वनि जितनी ही सुंदर और संगीतमय है। जितना ही तुम उसका उच्चार करोगे उतने ही तुम उसकी सूक्ष्म मिठास से भर जाओगे। ऐसी ध्वनियाँ हैं जो बहुत तीखी और कठोर हैं। ओम् एक बहुत मोठी ध्वनि है और यह शुद्धतम है। इसका उच्चार करो और इससे आपूरित हो जाओ।

जब तुम ओम् की ध्वनि के साथ लयबद्ध अनुभव करने लगे, तब तुम इसका जोर से उच्चार करना बंद कर सकते हो। अब ओंठ बंद कर लो और ओम् का उच्चार भीतर ही करो, लेकिन पहले भीतर जोर से उच्चार करो, ताकि ध्वनि तुम्हारे पूरे शरीर में फैल जाए, उसके प्रत्येक हिस्से को, एक-एक कोशिका को छूए। तुम इससे अधिक प्राणवान, अधिक जीवंत हुआ अनुभव करोगे। तुम स्वयं में एक नवजीवन प्रवेश करता हुआ अनुभव करोगे।

तुम्हारा शरीर एक वाद्य यंत्र की तरह है। उसे लयबद्धता की जरूरत है; और जब लयबद्धता खंडित होती है, तो तुम अड़चन में पड़ते हो। यही कारण है कि जब तुम संगीत सुनते हो, तो तुम्हें अच्छा लगता है। तुम्हें यह अच्छा क्यों लगता है? संगीत और क्या है सिवाय लयबद्ध सुर-ताल के?

जब तुम्हारे आसपास संगीत होता है तो

तुम इतना सुख-चैन क्यों अनुभव करते हो? और शोरगुल और अराजकता के बीच तुम्हें बेचैनी क्यों लगती है? कारण है कि तुम स्वयं गहरे रूप से संगीतमय हो। तुम एक वाद्य यंत्र हो और यह यंत्र प्रतिध्वनित करता है।

अपने भीतर ओम् का उच्चार करो और तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारा पूरा शरीर उसके साथ नृत्य करने लगा है। तब तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारा पूरा शरीर उसमें नहा रहा है; उसका पोर-पोर इस स्नान से शुद्ध हो रहा है। लेकिन जैसे-जैसे इसकी प्रतीति प्रगाढ़ हो, जैसे-जैसे यह ध्वनि ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे वैसे-वैसे उच्चार को धीमा करते जाओ। क्योंकि ध्वनि जितनी धीमी होगी, उतनी ही वह गहराई प्राप्त करेगी। यह होमिओपैथी की खुराक जैसी है; जितनी छोटी खुराक उतनी ही गहरी उसकी पैठ होती है। गहरे जाने के लिए तुम्हें सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो कर जाना होगा।

स्थूल और कर्कश स्वर तुम्हारे हृदय में नहीं उतर सकते; वे तुम्हारे कानों में तो प्रवेश करेंगे, लेकिन हृदय में नहीं। हृदय में प्रवेश का मार्ग बहुत संकरा है और हृदय स्वयं इतना कोमल है कि सिर्फ बहुत धीमे, लयपूर्ण और सूक्ष्म स्वर ही उसमें प्रवेश पा सकते हैं। और जब तक कोई ध्वनि तुम्हारे हृदय में प्रवेश न करे, तब तक मंत्र पूरा नहीं होता है। मंत्र तभी पूरा होता है जब उसकी ध्वनि तुम्हारे हृदय में, तुम्हारी अंतःसत्ता के गहनतम केंद्रीय मर्म में प्रवेश करे। इसलिए उच्चार को धीमा,

और धीमा करते चलो।

इन ध्वनियों को धीमा और सूक्ष्म बनाने के और भी कारण हैं। ध्वनि जितनी सूक्ष्म होगी, उतने ही ज्यादा सघन और तीक्ष्ण बोध की भीतर तुम्हें जरूरत होगी। ध्वनि जितनी ज्यादा स्थूल होगी, भीतर उतने ही कम होश की जरूरत होती है। ध्वनि की स्थूलता ही काफी है तुम पर चोट करने के लिए; तुम्हें उसका बोध होगा ही। लेकिन वह हिंसात्मक है।

यदि ध्वनि संगीतपूर्ण, लयपूर्ण और सूक्ष्म हो तो तुम्हें उसे अपने भीतर सुनना होगा, और उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना होगा। यदि तुम सचेत नहीं हो, तो तुम निद्रा में उतर जाओगे और तब तुम पूरी बात ही चूक जाओगे।

किसी मंत्र या जप के साथ, किसी ध्वनि के प्रयोग के साथ यही कठिनाई है कि वह नींद पैदा करता है। वह एक सूक्ष्म शामक है, नींद की दवा है। यदि तुम किसी ध्वनि को निरंतर दोहराते रहे, उसके प्रति बिना सजग हुए, तो तुम सो जाओगे क्योंकि तब पुनरुक्ति यांत्रिक हो जाती है। ओम्-ओम्-ओम् यांत्रिक हो जाता है और तब पुनरुक्ति ऊब पैदा करती है।

इसलिए दो बातें तुम्हें साधनी हैं: ओम् के उच्चार को धीमा और सूक्ष्म करते जाओ और उसके साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा सजग होते जाओ। ध्वनि जितनी ज्यादा सूक्ष्म होती है, तुम उतने ज्यादा सचेत होते जाते हो। तुम्हें ज्यादा सजग बनाने के लिए ओम् का उच्चार ज्यादा सूक्ष्म करते जाना होगा। तब एक बिंदु आता है जब ध्वनि

निर्ध्वनि में या पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, और तुम पूर्ण होश में प्रवेश कर जाते हो। जब तक ध्वनि निर्ध्वनि या पूर्णध्वनि में पहुंचे, उस समय तक तुम्हारे होश को

उसके चरम शिखर पर होना चाहिए। जब ध्वनि अपनी घाटी में उतर जाती है, घाटी के निम्नतम, गहनतम केंद्र में उतर जाती है, तब तुम्हारा होश अपने उच्चतम शिखर

पर, अपने एक्स्ट्रेम पर पहुंच चुका होता है। और वहां ध्वनि निर्ध्वनि में या पूर्णध्वनि में विलीन होती है और तुम परिपूर्ण होश में विलीन हो जाते हो। ४

हर रात को सोने के पहले तुम एक छोटा-सा प्रयोग कर सकते हो जो बहुत ही सहायक होगा। प्रकाश बुझा लो, सोने के लिए तैयार हो कर अपने बिस्तर पर बैठ जाओ—पंद्रह मिनट के लिए। आंखें बंद कर लो और फिर कोई निरर्थक एकसुरी आवाज निकालना शुरू करो। उदाहरण के लिए ल ल ल ल—और प्रतीक्षा करो कि मन तुम्हें नई ध्वनियाँ देता

देववाणी

जाए। एक ही बात याद रखनी है कि वे आवाजें या शब्द उस किसी भाषा के न हों जो तुम जानते हो। यदि तुम अंग्रेजी, जर्मन और इटालियन भाषा जानते हो तो उच्चारित शब्द इन भाषाओं के न हों। कोई भी भाषा जो तुम नहीं जानते हो—जैसे मान लो तिब्बती, चीनी, जापानी—उनकी ध्वनियाँ तुम उच्चारित कर सकते हो। लेकिन यदि तुम जापानी भाषा जानते हो, तो उसका उपयोग तुम नहीं कर सकते;

तब इटालियन भाषा अच्छी होगी। वह कोई भाषा बोलो जिससे तुम अपरिचित हो।

पहले दिन कुछ क्षणों के लिए तुम अड़चन में पड़ोगे, क्योंकि वह भाषा तुम कैसे बोल सकते हो जो तुम जानते ही नहीं? एक बार प्रारंभ भर हो जाए, फिर वह बोली जा सकती है। कोई भी आवाज, अर्थहीन शब्द—ताकि सतही चेतन मन को शिथिल करके, अचेतन मन को बोलने

दिया जा सके। जब मन का अचेतन हिस्सा बोलता है, तो वह तो कोई भाषा नहीं जानता।...

यह एक बहुत ही प्राचीन विधि है। यह ओल्ड टेस्टामेंट में, पुरानी बाइबिल में उल्लिखित है। उन दिनों इस विधि को 'ग्लोसोलालिया' कहा जाता था और अमेरिका के कुछ चर्च अभी भी इसका उपयोग करते हैं। वे इसे 'जीभ की बोली' कहते हैं। और यह एक अद्भुत विधि

है—अचेतन का भेदन करने वाली गहनतम विधियों में से यह एक विधि है।

तुम 'ल, ल, ल' के उच्चार से शुरू कर सकते हो, फिर बाद में जो कुछ ध्वनि आए उसके साथ बहो। केवल पहले दिन तुम थोड़ी कठिनाई अनुभव करोगे। एक बार यह चल पड़े फिर तुम इसका राज़, इसका गुर जान गए। फिर पंद्रह मिनट तक तुममें उतर रही इस अज्ञात भाषा का उपयोग करो; और इसका उपयोग एक बोलचाल की भाषा की तरह ही करो; वास्तव में तुम इस भाषा में बातचीत ही कर रहे हो।

इस विधि का पंद्रह मिनट का अभ्यास तुम्हारे चेतन मन को गहरा विश्राम दे देगा और तब तुम बस लेट जाओ और निद्रा में डूब जाओ। तुम्हारी नींद गहरी हो जाएगी। कुछ ही सप्ताह में तुम अपनी नींद में एक गहराई का अनुभव करोगे और सुबह तुम बिलकुल ताजा अनुभव करोगे। ५

देववाणी का अर्थ है परमात्मा की वाणी। इसमें साधक को माध्यम बनाकर दिव्यता ही गति करती है और

बोलती है; साधक एक रिक्त पात्र और ऊर्जा प्रवाह के लिए एक मार्ग बन जाता है। यह ध्यान जीभ का लातिहान है। यह विधि चेतन मन को इतनी अधिक गहराई से शिथिल करती है कि जब इसका प्रयोग रात सोने के पहले किया जाए, तो निश्चित ही इसके बाद गहन निद्रा आने वाली है।

इस विधि में पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं। सभी चरणों में आंखें बंद रखो।

देववाणी ध्यान के लिए निर्देश

पहला चरण : पंद्रह मिनट

शांत बैठ जाओ कोमल संगीत को सुनो।

दूसरा चरण : पंद्रह मिनट

निरर्थक आवाजें निकालना शुरू करो, उदाहरण के लिए 'ल, ल, ल' से प्रारंभ करो और इसे उस समय तक जारी रखो

जब तक कि एक अज्ञात भाषा-प्रवाह जैसे लगने वाले शब्द न आने लगें। ये आवाजें मस्तिष्क के उस अपरिचित हिस्से से आनी चाहिए जिसका उपयोग बचपने में शब्द सीखने के पहले तुम करते थे। बातचीत की शैली में कोमल ध्वनि वाले शब्द-प्रवाह को आने दो। न रोओ, न हंसो, न चीखो, न चिल्लाओ।

तीसरा चरण : पंद्रह मिनट

खड़े हो जाओ और अनजानी भाषा में बोलना जारी रखो और अब उच्चारित शब्दों के साथ एक लयबद्धता में शरीर को धीरे-धीरे गति करने दो, मुद्राएं बनाने दो। यदि तुम्हारा शरीर शिथिल है तो सूक्ष्म ऊर्जाएं तुम्हारे भीतर एक लातिहान नामक मुद्राएं और गतियां पैदा करेंगी, जो तुम्हारे कुछ भी किये बिना ही जारी रहेंगी।

चौथा चरण : पंद्रह मिनट

लेट जाओ, शांत और निष्क्रिय बने रहो। ६

शि व ने कहा: तारवाले वाद्यों की ध्वनि सुनते हुए उसकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो, सितार या किसी वाद्य को। उसमें कई स्वर हैं। सजग हो कर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो—उस स्वर को जो उसका मेरुदंड हो और जिसके चारों ओर और सभी स्वर

संगीत : एक ध्यान

घूमते हों; उसकी गहनतम धारा को सुनो जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे पूरे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुई है, वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है।

संगीत को सुनते हुए सजग हो कर उसमें प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजो—उस केंद्रीय स्वर को खोजो जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए रहता है। स्वर तो आते-जाते और विलीन होते रहते हैं, लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है।

उसके प्रति जागरूक होओ।

बुनियादी रूप में, मूलतः संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान-विधि की तरह हुआ। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं, श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र एक यंत्रविशेषज्ञ, एक टेक्नीशियन भी

हो सकता है। यदि उसका नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है; लेकिन तब उसके संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी भी हो।

संगीत तो बाहरी चीज है। लेकिन सितार बजाते हुए वादक केवल सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगा रहा है। बाहर सितार बजता है और उसका सधन होश भीतर गति करता

है। संगीत बाहर बहता रहता है, लेकिन वह संगीत के अंतरस्थ केंद्र के प्रति सदा सजग बना रहता है। वह समाधि लाता है। वह आनंद लाता है। वह शिखर बन जाता है।...

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम हलके होने के लिए संगीत का उपयोग करते हो; तुम आत्म-विस्मरण के लिए संगीत का उपयोग करते हो।

यही दुर्भाग्य है, यही पीड़ा है कि जो

विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थीं, उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है! और यह एक उदाहरण है कि आदमी कैसे अपने साथ दुष्टता और अनिष्ट किए जा रहा है।...

यह सूत्र कहता है कि "तारवाले वाद्यों की ध्वनि को सुनते हुए उसकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।" और तब तुम उसे जान लोगे, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके सामासिक केंद्रीय

मर्म को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे और उस जागरण के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते हैं। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। यदि तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जाएगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होओगे, सर्वत्र होओगे; तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे। तुम अनंत हो जाओगे।

मन के साथ सीमा है और ध्यान के साथ अनंत प्रवेश करता है। ?

शि व ने कहा: ध्वनि के केंद्र में स्नान करो—मानो जलप्रपात के सतत नाद में स्नान कर रहे हो। या कानों में उंगली डाल कर नादों के नाद, अनाहत को सुनो।

इस विधि का प्रयोग अनेक ढंग से किया जा सकता है। एक ढंग है कि कहीं भी बैठ कर इसे शुरू करो। ध्वनियाँ तो सदा मौजूद हैं। चाहे बाजार हो या हिमालय की कोई एकांत गुफा, ध्वनियाँ सर्वत्र हैं। चुप हो कर बैठो।

ध्वनि का केंद्र

ध्वनियों के साथ एक बड़ी विशेषता है: जब भी कोई ध्वनि होगी, तुम उसके केंद्र होओगे। सभी ध्वनियाँ तुम्हारे पास आती हैं—सब तरफ से, सब दिशाओं से। दृष्टि के साथ, आंखों के साथ यह बात नहीं है। दृष्टि रेखाबद्ध है। मैं तुम्हें देखता हूँ तो मुझसे तुम तक एक रेखा खिंच जाती है। लेकिन ध्वनि वर्तुलाकार है; वह रेखाबद्ध नहीं है। सभी ध्वनियाँ वर्तुल में आती हैं और तुम उनके केंद्र हो। तुम जहाँ भी हो,

तुम सदा ध्वनि के केंद्र हो। ध्वनि के लिए तुम सदा परमात्मा हो—समस्त ब्रह्मांड के केंद्र। प्रत्येक ध्वनि वर्तुलाकार में तुम तक आ रही है, तुम तक गति कर रही है।

यह विधि कहती है: “ध्वनि के केंद्र में स्नान करो।” यदि तुम इस विधि का प्रयोग कर रहे हो तो तुम जहाँ भी हो वहीं आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा ब्रह्मांड ध्वनियों से भरा है। अनुभव करो कि प्रत्येक ध्वनि तुम्हारी ओर गति कर रही

है और तुम उसके केंद्र हो। यह भाव भी कि तुम केंद्र हो, तुम्हें एक गहरी शांति से भर देगा। सारा ब्रह्मांड परिधि बन जाता है और तुम उसके केंद्र रहते हो। और प्रत्येक चीज, प्रत्येक ध्वनि तुम्हारी तरफ बढ़ रही है।

“मानो जलप्रपात के सतत नाद में स्नान करते हो।” यदि तुम किसी जलप्रपात के किनारे बैठे हो, तो आंखें बंद कर लो और अपने चारों ओर की ध्वनि को महसूस

करो और उसे सब ओर से अपने ऊपर बरसता हुआ अनुभव करो और यह अनुभव करो कि तुम उसके केंद्र हो।

अपने को केंद्र समझने पर यह जोर क्यों है? क्योंकि केंद्र पर कोई ध्वनि नहीं है। केंद्र ध्वनिशून्य है; यही कारण है कि तुम्हें ध्वनि सुनाई पड़ती है अन्यथा तुम उसे नहीं सुन सकते। एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को नहीं सुन सकती। अपने केंद्र पर ध्वनिशून्य होने के कारण तुम्हें आवाजें सुनाई पड़ती हैं। केंद्र तो बिल्कुल ही मौन है, शांत है, इसी कारण तुम ध्वनि को अपनी ओर आते, अपने भीतर प्रवेश करते, अपने को घेरते हुए अनुभव करते हो।

यदि तुम खोज लो कि यह केंद्र कहाँ है, तुम्हारे भीतर वह क्षेत्र कहाँ है जहाँ सब ध्वनियाँ बह कर आ रही हैं, तो अचानक सब ध्वनियाँ विलीन हो जाएंगी, और तुम निर्ध्वनि में, ध्वनिशून्यता में प्रवेश कर जाओगे। यदि तुम उस केंद्र को महसूस कर सको जहाँ सब ध्वनियाँ सुनी जाती हैं तो अचानक चेतना स्थानांतरित हो जाती है। एक क्षण तक तुम ध्वनि से भरे संसार को सुनोगे और दूसरे ही क्षण तुम्हारी चेतना भीतर की ओर मुड़ जाएगी और तुम निर्ध्वनि को, मौन को सुनोगे जो जीवन का परम केंद्र है।

और एक बार तुमने उस ध्वनि को सुन लिया, तो कोई भी आवाज तुम्हें विचलित नहीं कर सकेगी। वह तुम्हारी ओर आती है, लेकिन तुम तक कभी पहुँचती नहीं है। वह सदा तुम्हारी ओर बह रही है, लेकिन वह कभी तुम तक पहुँच नहीं पाती। एक

बिंदु है जहाँ कोई ध्वनि प्रवेश नहीं कर पाती; वह बिंदु तुम हो।

बीच बाजार में इस विधि का प्रयोग करो। बाजार जैसा कोई दूसरा स्थान नहीं है; वह शोरगुल से, पागल शोरगुल से खूब भरा रहता है। लेकिन इस शोरगुल के संबंध में सोचना शुरू मत करो; यह मत कहो कि यह ध्वनि अच्छी है, यह बुरी है; यह उपद्रव पैदा करती है, यह सुंदर और लयपूर्ण है। ध्वनियों के संबंध में तुम्हें सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हें केवल केंद्र का बोध रखना है। तुम्हारा यह काम नहीं है कि जो ध्वनि तुम्हारी तरफ बह कर आए उस पर तुम विचार करो कि वह अच्छी है, बुरी है या सुंदर है। तुम्हें इतना ही स्मरण रखना है कि तुम केंद्र हो और सभी ध्वनियाँ बह कर तुम्हारे पास आ रही हैं।...

ध्वनियाँ कान में नहीं सुनी जाती हैं; वे कान में नहीं सुनी जातीं। कान उन्हें सुन भी नहीं सकते; कान सिर्फ संचारण करने का काम करते हैं। और इस संचारण के क्रम में वे उस सब को छीट देते हैं जो तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। वे चुनाव करते हैं और तब चुनी हुई ध्वनियाँ तुम्हारे भीतर प्रवेश करती हैं।

अब भीतर खोजो कि तुम्हारा केंद्र कहाँ है। कान केंद्र नहीं है। तुम कहीं किसी गहराई से सुनते हो। कान तो कुछ चुनी हुई ध्वनियों को ही भेजते हैं। तुम कहाँ हो? तुम्हारा केंद्र कहाँ है?

यदि तुम ध्वनियों के साथ काम करते हो तो देर-अबेर तुम जान कर चकित होओगे

कि यह केंद्र सिर में नहीं है। मालूम तो होता है कि सिर में है; क्योंकि तुम ध्वनि नहीं, शब्द सुनते हो। शब्दों के लिए तो सिर ही केंद्र है; लेकिन ध्वनि के लिए वह केंद्र नहीं है। यही कारण है कि जापान में वे कहते हैं कि आदमी सिर से नहीं, पेट से सोचता है। जापान में उन्होंने बहुत समय से ध्वनि के ऊपर काम किया है।

तुमने मंदिरों में बड़े घंटे लगे देखे होंगे। वे वहाँ साधकों के चारों ओर ध्वनि पैदा करने के लिए रखे गए हैं। कोई साधक ध्यान कर रहा है और घंटे बजाए जा रहे हैं। तुम्हें लगेगा कि इस घंटे की आवाज से साधक के लिए बाधा खड़ी हो रही है। लगेगा कि ध्यान करने वाले को बाधा महसूस हो रही है। यह क्या उपद्रव है!

मंदिर में आने वाला प्रत्येक दर्शनार्थी घंटे को बजा देता है। यह आवाज उपद्रव नहीं है; वह आदमी तो ध्वनि की प्रतीक्षा कर रहा है। हर दर्शनार्थी इसमें सहयोग दे रहा है। बार-बार घंटा बजता है, ध्वनि निर्मित होती है और ध्यानी फिर अपने में प्रवेश कर जाता है। वह उस केंद्र को देखता है, जहाँ वह ध्वनि गहरे में उतर जाती है। एक चोट घंटे पर लगती है, जिसे दर्शनार्थी लगाता है। दूसरी चोट कहीं ध्यानी के भीतर लगती है। यह दूसरी चोट कहाँ लगती है? यह दूसरी चोट सदा पेट में, नाभि पर लगती है—सिर में कभी नहीं। यदि यह सिर में लगे तो समझना चाहिए कि वह ध्वनि नहीं है, शब्द है। तब तुमने ध्वनि के संबंध में सोचना शुरू कर दिया। तब शुद्धता नष्ट हो गई।...

“ध्वनि के केंद्र में स्नान करो—मानो जलप्रपात के सतत नाद में स्नान कर रहे हो। या कानों में उंगली डालकर नादों के नाद अनाहत को सुनो।” तुम अपनी उंगलियों से या किसी दूसरी चीज से कानों को बंद करके भी यह ध्वनि पैदा कर सकते हो। उस हालत में भी एक ध्वनि सुनाई देती है। वह कौन-सी ध्वनि है जो कानों को बंद करने पर सुनाई देती है? और उसे तुम क्यों सुनते हो?

जैसे फोटोग्राफ के निगेटिव होते हैं वैसे ही नकारात्मक ध्वनियाँ भी होती हैं। और न सिर्फ आँखें नकारात्मक चित्र देखती हैं, कान भी नकारात्मक ध्वनि सुनते हैं।

तो जब तुम कान बंद करते हो तो तुम ध्वनियों के नकारात्मक संसार को सुनते हो। सभी ध्वनियाँ बंद हो गई हैं और अचानक एक नई आवाज सुनाई देने लगी है। यह ध्वनि ध्वनियों की अनुपस्थिति है। एक अंतराल आ गया; तुम कुछ चूक रहे हो। और तब तुम अनुपस्थिति को सुनते हो।

“या कानों में उंगली डाल कर तुम नादों के नाद को, अनाहत नाद को सुनो” वह नकारात्मक ध्वनि ही अनाहत नाद कहलाती है। क्योंकि वास्तव में वह ध्वनि नहीं है, उसकी अनुपस्थिति है या वह

नैसर्गिक ध्वनि है; क्योंकि वह किसी माध्यम से पैदा नहीं की गई है।

“कानों में उंगली डाल कर नादों के नाद को, अनाहत नाद को सुनो।” यह ध्वनियों की अनुपस्थिति बहुत ही सूक्ष्म अनुभव है। यह तुम्हें क्या दे सकता है? जिस क्षण ध्वनियाँ नहीं रहती हैं, तुम अपने पर आ जाते हो। ध्वनियों के साथ तुम दूर चल पड़ते हो; ध्वनि के साथ तुम दूसरे की तरफ चल पड़ते हो। इन्हीं समझने की कोशिश करो: ध्वनि से हम दूसरे से संबंधित होते हैं, दूसरे से संवाद करते हैं।...

यदि ध्वनि दूसरे तक पहुंचने का वाहन है तो निर्ध्वनि स्वयं में पहुंचने का माध्यम बन जाता है। ध्वनि के द्वारा तुम दूसरे के साथ संवाद करते हो; निर्ध्वनि के द्वारा तुम अपने में, अपने अतल शून्य में उतर जाते हो। यही कारण है कि अनेक विधियों में अंतर्यात्रा के लिए निर्ध्वनि को काम में लाया जाता है।

बिलकुल गूंगे और बहरे हो जाओ—जरा देर लिए ही सही। तब तुम अपने अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते। अचानक तुम पाओगे कि तुम अपने अंतः में विराजमान हो; फिर कोई गति संभव नहीं होगी। इस कारण से ही मौन की इतनी

साधना की जाती थी। मौन में दूसरे तक जाने के सारे सेतु गिर जाते हैं।...

“या कानों में उंगली डाल कर नादों के नाद को सुनो।” एक ही विधि के अंदर दो विपरीत बातें कही गई हैं। “ध्वनि के केंद्र में स्नान करो—मानो किसी जलप्रपात के सतत नाद में स्नान कर रहे हो।” यह एक अति है। “या कानों में उंगली डाल कर नादों के नाद को सुनो”; यह दूसरी अति है। एक हिस्सा कहता है अपने केंद्र पर पहुंचने वाली ध्वनि को सुनो, और दूसरा हिस्सा कहता है कि सब ध्वनियों को बंद करके ध्वनियों की ध्वनि को सुनो। एक ही विधि में दोनों को समाहित करने का एक विशेष उद्देश्य है कि तुम एक छोर से दूसरे छोर तक गति कर सको।

यहां “या” शब्द चुनाव करने को नहीं कहता है कि इनमें से किसी एक प्रयोग को करना है। नहीं, दोनों का प्रयोग करो। यही कारण है कि एक विधि के भीतर दोनों को समाविष्ट किया गया है। पहले कुछ महीने तक एक प्रयोग करो, और तब दूसरे का प्रयोग कुछ माह करो। तब तुम ज्यादा जीवंत होओगे और तुम दोनों छोरों को जान लोगे। और यदि तुम दोनों छोरों में आसानी से डोल सको तो तुम सदा युवा बने रह सकते हो।⁸

शि व ने कहा: किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में, और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्व्वर्त्ति में जाओ।

यह कैसे करोगे? किसी मंदिर में चले जाओ। वहां एक घंटा होगा या घड़ियाल। घंटे को हाथ में ले लो और प्रतीक्षा करो। पहले समग्रता से सजग हो जाओ। ध्वनि होने वाली है और तुम्हें उसका आरंभ नहीं चूकना है। पहले तो समग्ररूपेण सजग

ध्वनि का आरंभ और अंत

होओ—मानो इस पर ही तुम्हारी जिंदगी निर्भर है; मानो कि अभी कोई तुम्हारी हत्या करने जा रहा हो और तुम्हें सावधान रहना है। ऐसे सावधान रहो मानो यह तुम्हारी मृत्यु बनने वाली है। और यदि तुम्हारे मन में कोई विचार चल रहा हो तो अभी रुको; क्योंकि विचार नींद है। विचार के रहते तुम सजग नहीं हो सकते। और जब तुम सजग हो तो विचार नहीं रहता है।

इसलिए रुको। जब लगे कि अब मन

निर्विचार हो गया, कि अब मन में कोई बादल न रहा, कि अब तुम जागरूक हो, तब ध्वनि के साथ गति करो।

पहले जब ध्वनि नहीं है, तब उस पर ध्यान दो। फिर आंखें बंद कर लो। और जब ध्वनि पैदा हो, घंटा बजे, तब ध्वनि के साथ गति करो। ध्वनि धीमी से धीमी, सूक्ष्म होती जाएगी, और फिर विलीन हो जाएगी। इस ध्वनि के साथ यात्रा करो। सजग और सावधान रहो। ध्वनि के साथ

उसके अंत तक यात्रा करो। ध्वनि के दोनों छोर को देखो—आरंभ और अंत दोनों को देखो।

पहले किसी बाहरी ध्वनि के साथ, घंटा या घड़ियाल के साथ प्रयोग करो। फिर आंखें बंद कर लो। अब भीतर किसी अक्षर का, ओम् या किसी अन्य अक्षर का उच्चारण करो। उसके साथ भी वही प्रयोग करो जो घंटे की ध्वनि के साथ किया था। यह कठिन होगा। इसलिए हम पहले

ध्यान की विधियां

बाहर ही ध्वनि के साथ प्रयोग करते हैं। जब बाहर करने में सक्षम हो जाओगे तो भीतर करना भी आसान होगा। तब करो। उस क्षण की प्रतीक्षा करो जब मन खाली हो जाए और तब भीतर ध्वनि निर्मित करो। उसे अनुभव करो; उसके

साथ गति करो, जब तक वह बिलकुल विलीन न हो जाए।

इस प्रयोग को करने में समय लगेगा। कुछ महीने लग जाएंगे, कम से कम तीन महीने। तीन महीनों में तुम अधिकाधिक जागरूक हो जाओगे। ध्वनि-पूर्व अवस्था

और ध्वनि के बाद की अवस्था का निरीक्षण करना है; कुछ भी नहीं चूकना है। और जब तुम इतने सजग हो जाओगे कि ध्वनि के आदि और अंत को देखते रह सको तो इसी प्रक्रिया के द्वारा तुम सर्वथा भिन्न व्यक्ति हो जाओगे। १

अंतस आकाश को खोज लेना

शून्यता तुम्हारा अंतर्तम केंद्र है। सब क्रियाएं परिधि पर हैं:
अंतर्तम केंद्र मात्र एक शून्य है।¹

शि व ने कहा : ग्रीष्म ऋतु में
जब तुम समस्त आकाश
को अंतहीन रूप से मेघरहित देखो, तो
उस शून्य स्पष्टता में प्रवेश करो।

आकाश पर ध्यान करो : ग्रीष्म ऋतु का
मेघरहित आकाश, अंतहीन रूप से रिक्त
और स्पष्ट, जिसमें कुछ भी गति नहीं कर
रहा—अपने परिपूर्ण कुंवारेपन में। इस पर

रिक्त आकाश में प्रवेश करो

चित्त को लगाओ, इस पर ध्यान करो, और
इस शून्य स्पष्टता में प्रवेश कर जाओ।
यह स्पष्टता, यह आकाशवत स्पष्टता ही
हो जाओ।

आकाश पर ध्यान करना सुंदर है। बस
लेट रहो ताकि पृथ्वी को तुम भूल जाओ;
किसी भी निर्जन तट पर, कहीं भी धरती
पर अपनी पीठ के बल लेट जाओ और
आकाश की ओर देखो। खाली आकाश
सहयोगी होगा—मेघरहित, अनंत। बस
आकाश को देखते हुए, एकटक देखते

हुए, उसकी स्पष्टता, मेघरहितता व अनंत
विस्तार को अनुभव करो और उस स्पष्टता
में प्रवेश कर जाओ, उसके साथ एक हो
जाओ। ऐसा महसूस करो जैसे कि तुम ही
आकाश बन गए हो, अवकाश बन गए
हो।

आकाश की स्पष्टता में झांकने और
उसके साथ एक हो जाने की यह विधि
सबसे अधिक अभ्यास में लाई गई है। कई
परंपराओं ने इसका उपयोग किया है। और
विशेषतः आधुनिक मन के लिए यह विधि

बहुत उपयोगी होगी, क्योंकि पृथ्वी पर तो
ऐसा कुछ बचा नहीं है जिस पर ध्यान
किया जाए—केवल आकाश ही है। यदि
तुम चारों ओर देखो, तो सबकुछ
मनुष्य-निर्मित है, सबकुछ सीमित है,
सीमा में बंधा हुआ है। आकाश ही है जो
सौभाग्य से अभी ध्यान के लिए उपलब्ध
है।

इस विधि को करके देखो, यह सहयोगी
होगी, लेकिन तीन बातों का स्मरण रखो।
एक : पलक मत झपकाओ—एकटक

देखो। यदि तुम्हारी आँखें दुखने लगें और आंसू आ जाएं तो भी फिक्र मत करो। वे आंसू भी निर्भर होने की प्रक्रिया का ही अंग होंगे; वे सहायक होंगे। वे आंसू तुम्हारी आँखों को अधिक निर्दोष और सद्यःस्नात कर जाएंगे। तुम बस अपलक देखते रहो।

दूसरी बात: आकाश के बारे में सोचो मत; यह स्मरण रहे। तुम आकाश के विषय में सोचना शुरू कर सकते हो। तुम आकाश के विषय में कई कविताएं, कई सुंदर कविताएं स्मरण कर सकते हो—तब तुम बात को चूक जाओगे। तुम्हें उसके बारे में सोचना नहीं है—उसमें प्रवेश करना है, तुम्हें उसके साथ एक हो जाना है—क्योंकि यदि तुम उसके बारे में सोचने लगे, तो फिर से एक अवरोध निर्मित हो गया। तुम फिर से आकाश को चूकने लगे, और तुम फिर से अपने मन में आबद्ध हो गए। आकाश के बारे में सोचो मत। आकाश ही हो जाओ। बस झाँको और आकाश में प्रवेश करो और आकाश को अपने भीतर आने दो। यदि तुम आकाश में प्रवेश कर जाओ, तो आकाश तत्क्षण तुममें प्रवेश कर जाएगा।

यह तुम किस प्रकार कर सकते हो? यह तुम किस प्रकार करोगे—यह आकाश में प्रवेश कर जाना? बस दूर से दूर झाँकते चले जाओ। झाँकते ही चले जाओ—जैसे कि तुम सीमा को खोजने का प्रयास कर रहे हो। गहरे चले जाओ। जितनी दूर जा सकते हो जाओ। वह जाना ही अवरोध को तोड़ देगा। और इस विधि का कम से कम

चालीस मिनट के लिए अभ्यास करना चाहिए; उससे कम से काम नहीं चलेगा, वह सहायक नहीं होगा।

जब तुम्हें सच में लगे कि तुम आकाश से एक हो गए, तो अपनी आँखें बंद कर लो। जब आकाश तुममें प्रवेश कर जाए तो तुम आँखें बंद कर सकते हो। तुम उसे भीतर भी देख पाओगे। तो चालीस मिनट के बाद ही आँखें बंद करो—जब तुम्हें लगे कि एकपन घट गया और एक मिलन घटित हो रहा है, तुम आकाश के एक हिस्से हो गए और मन नहीं रहा—फिर आँखें बंद कर लो और भीतर के आकाश में ही रहो।

यह स्पष्टता तीसरी बात में सहायक होगी—कि “उस शून्य स्पष्टता में प्रवेश करो।” स्पष्टता सहयोगी होगी—अप्रदूषित, मेघरहित आकाश। बस उस स्पष्टता के प्रति सजग रहो जो तुम्हारे चारों ओर है। उसके विषय में सोचो मत। बस स्पष्टता, शुद्धता व निर्दोषता के प्रति सजग रहो। इन शब्दों को दोहराना नहीं है। सोचने की अपेक्षा तुम्हें उनको अनुभव करना है। और एक बार तुम आकाश में झाँको तो अनुभव आ ही जाएगा, क्योंकि तुम्हें इन चीजों की कल्पना नहीं करनी है—वे मौजूद हैं ही। यदि तुम आकाश में झाँको तो वे तुम्हें घटने लगेंगी।

यदि तुम खुले मेघरहित आकाश पर ध्यान करो तो अचानक तुम्हें लगेगा कि मन विलीन हो रहा है, मन गिर रहा है। अंतराल आएंगे। अचानक तुम्हें बोध होगा कि जैसे स्वच्छ आकाश तुममें भी प्रवेश

कर गया है। बीच-बीच में अंतराल होंगे। कुछ समय के लिए विचार रुक जाएंगे—जैसे कि यातायात रुक गया और कोई गति नहीं कर रहा है।

प्रारंभ में तो कुछ क्षणों के लिए ही ऐसा होगा, लेकिन वे क्षण भी रूपांतरकारी हैं। धीरे-धीरे मन शांत होने लगेगा, और ज्यादा लंबे अंतराल प्रकट होंगे। कई-कई मिनटों के लिए कोई विचार, कोई मेघ नहीं उठेगा। और जब कोई विचार, कोई मेघ नहीं रहता तब बाह्य और आंतरिक आकाश एक हो जाते हैं क्योंकि केवल विचार ही बाधा है; केवल विचार ही दीवार खड़ी करता है। विचार के कारण ही बाह्य बाह्य है और आंतरिक आंतरिक है। जब विचार नहीं होता तो बाह्य और आंतरिक अपनी सीमाएं खो देते हैं, वे एक हो जाते हैं। सीमाएं वास्तव में कभी थीं ही नहीं। वे विचार के कारण, अवरोध के कारण ही प्रगट हुई थीं।

लेकिन ग्रीष्म ऋतु न हो तो तुम क्या करोगे? यदि आकाश मेघाच्छादित है, स्पष्ट नहीं है, तो अपनी आँखें बंद कर लो और अंतर्आकाश में प्रवेश कर जाओ। बस अपनी आँखें बंद कर लो और यदि तुम्हें कोई विचार दिखाई दें, तो उन्हें ऐसे देखो जैसे कि वे आकाश में तिरते हुए मेघ हों। पृष्ठभूमि के आकाश के प्रति सजग रहो और विचारों से उदासीन बने रहो।

हम विचारों की बहुत फिक्र लेते हैं और बीच के अंतराल के प्रति कभी जागते ही नहीं। एक विचार गुजरता है, और दूसरे विचार के प्रवेश करने से पहले एक

अंतराल आता है—उस अंतराल में आकाश मौजूद है। फिर, जब भी कोई विचार नहीं होता; तो वहां क्या होता है? शून्य वहां होता है। तो यदि आकाश मेघाच्छादित है—ग्रीष्म ऋतु नहीं है और आकाश स्पष्ट नहीं है—तो अपनी आंखें बंद कर लो, अपने मन को पृष्ठभूमि पर, अंतर्आकाश पर केंद्रित करो जिसमें विचार आते और जाते हैं। विचारों पर बहुत ध्यान मत दो; उस आकाश पर ध्यान दो जिसमें वे गति करते हैं।

जैसे, हम इस कक्ष में बैठे हुए हैं। इस

कमरे को मैं दो ढंग से देख सकता हूं। या तो मैं तुम्हारी ओर देखूं, ताकि जिस आकाश में, जिस खाली जगह में, जिस कक्ष में तुम बैठे हो उसके प्रति उदासीन हो जाऊं—मैं तुम्हारी ओर देखूं, अपना मन तुम लोगों पर केंद्रित करूं, जो यहां बैठे हैं, और उस कक्ष पर नहीं जिसमें तुम हो—या, मैं अपनी सजगता का फोकस बदल सकता हूं: मैं कक्ष में देखूं और तुम्हारे प्रति उदासीन हो जाऊं। तुम यहां हो, लेकिन मेरा जोर, मेरी सजगता कक्ष पर है। फिर पूरा परिप्रेक्ष्य बदल जाता है।

इस प्रयोग को अंतर्जगत में जरा करो। अंतर्आकाश की ओर देखो। उसमें विचार चल रहे हैं: उनके प्रति उदासीन रहो, उन पर कोई ध्यान मत दो। वे हैं; इसे देख भर लो कि वे चल रहे हैं। सड़क पर यातायात चल रहा है। सड़क को देखो और यातायात के प्रति उदासीन रहो। यह मत देखो कि कौन गुजर रहा है; बस इतना ही बोध रखो कि कुछ गुजर रहा है और जिस खाली जगह में वह गुजर रहा है, उसके प्रति सजग रहो। तब ग्रीष्म ऋतु का आकाश भीतर ही घटित होता है।²

शि व ने कहा: हे प्रिये, इस
क्षण में मन, चेतना,
श्वास, रूप, सब को समाविष्ट करो।

यह विधि थोड़ी कठिन है, लेकिन यदि
तुम इसे कर सको, तो यह बहुत अदभुत
और सुंदर है। बैठे हुए, कुछ भी विभाजित
मत करो। ध्यान में बैठे हुए, सबकुछ
समाविष्ट कर लो—अपना शरीर, अपना
मन, अपनी श्वास, अपना सोच-विचार,

सब को समाविष्ट करो

अपनी ज्ञानानुभूति, सबकुछ। सबकुछ
समाविष्ट करो। विभाजित मत करो, कोई
हिस्से मत करो। सामान्यतः हम हिस्से
करते हैं, हिस्से करते रहते हैं। हम कहते
हैं, “मैं शरीर नहीं हूँ।” ऐसी विधियाँ हैं जो
इसका भी उपयोग कर सकती हैं, लेकिन
यह विधि न केवल भिन्न है, बल्कि
बिलकुल विपरीत है।

बांटो मत। मत कहो, “मैं शरीर नहीं
हूँ।” मत कहो, “मैं श्वास नहीं हूँ।” मत
कहो, “मैं मन नहीं हूँ।” इतना ही कहो,

“मैं सबकुछ हूँ”—और सबकुछ हो रहो।
अपने भीतर कोई हिस्से मत करो। यह एक
अनुभूति है। आंखें बंद करके वह सबकुछ
समाविष्ट कर लो जो तुम्हारे भीतर मौजूद
है। स्वयं को कहीं भी केंद्रित मत
करो—अकेंद्रित हो जाओ। श्वास आती
है और जाती है, विचार आता है और चला
जाता है। तुम्हारे शरीर का रूप बदलता
रहेगा। तुमने कभी इस पर ध्यान नहीं
दिया है।

यदि तुम आंखें बंद करके बैठो तो कई

बार तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा शरीर बड़ा हो
गया है, कभी लगेगा कि तुम्हारा शरीर
छोटा हो गया है; कभी भारी हो जाएगा,
कभी हलका हो जाएगा, ऐसे कि जैसे तुम
उड़ सको। तुम आकार के इस बढ़ने और
घटने को अनुभव कर सकते हो। अपनी
आंखें बंद करके बैठ जाओ और तुम्हें
लगेगा कभी कि शरीर बहुत बड़ा हो गया
है—पूरे कमरे में समा रहा है; कभी
लगेगा: बहुत छोटा हो गया है—बस
अणुवत। यह आकार क्यों बदलता है?

जैसे ही तुम्हारी सजगता बदलती है, शरीर का आकार बदल जाता है। यदि तुम सब समाविष्ट कर लेते हो, तो शरीर बड़ा हो जाएगा; यदि तुम निषेध करते हो—“यह मैं नहीं हूँ, यह मैं नहीं हूँ”—तब वह बहुत सूक्ष्म, बहुत छोटा-सा, आणविक हो जाएगा।

अपनी अंतस-सत्ता में सब समाविष्ट कर लो और कुछ भी मत छोड़ो। मत कहो, “यह मैं नहीं हूँ।” कहो, “मैं हूँ,” और उसमें सब समाविष्ट कर लो। यदि तुम बैठे हुए यह कर सको तो अद्भुत और बिलकुल नई घटनाएं तुम्हें घटेगी। तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा कोई केंद्र नहीं है। तुम्हारे भीतर कोई केंद्र नहीं है। और केंद्र के जाते ही न कोई स्व रहता है, न कोई अहंकार रहता है; केवल चेतना बच रहती है—आकाश की भांति चेतना—हर चीज को ढंके हुए! और जैसे-जैसे यह विकसित होता है, न केवल तुम्हारी श्वास ही समाविष्ट होगी, न केवल तुम्हारी अपनी देहाकृति समाविष्ट होगी, अंततः पूरा जगत

ही तुममें समाविष्ट हो जाएगा।

मूल सूत्र है सर्व समावेश को स्मरण रखना। छोड़ो मत। यह इस सूत्र के लिए कुंजी है—समावेश; समाविष्ट करो। समाविष्ट करो और बढ़ो। समाविष्ट करो और फैलो। इसे अपने शरीर के साथ करके देखो, और फिर बाह्य जगत के साथ भी करके देखो।

किसी वृक्ष के नीचे बैठकर, वृक्ष की ओर देखो, फिर अपनी आंखें बंद कर लो और वृक्ष को अपने भीतर देखो। आकाश की ओर देखो, फिर अपनी आंखें बंद कर लो और अनुभव करो कि आकाश तुम्हारे भीतर ही है। उगते हुए सूर्य को देखो, फिर अपनी आंखें बंद कर लो और अनुभव करो कि सूर्य तुम्हारे भीतर उग रहा है। स्वयं को अधिक समाविष्ट करता अनुभव करो।

तुम्हें एक अपूर्व अनुभव होगा। जब तुम्हें लगेगा कि वृक्ष तुम्हारे भीतर है, तो तत्क्षण तुम अधिक युवा, अधिक ताजे अनुभव करोगे। और यह कल्पना नहीं है,

क्योंकि वृक्ष और तुम दोनों ही पृथ्वी से संबद्ध हो। तुम दोनों की जड़ें एक ही पृथ्वी में हैं और अंततः एक ही अस्तित्व में हैं। तो जब तुम्हें लगता है कि वृक्ष तुम्हारे भीतर है तो वृक्ष तुम्हारे भीतर ही है—यह कल्पना नहीं है—और अचानक तुम उसके प्रभाव को महसूस करोगे। वृक्ष की जीवंतता, हरियाली, ताजगी, उसमें से होकर गुजरती हवा, सबकी तुम्हारे हृदय में अनुभूति होगी। अधिकाधिक अस्तित्व को समाविष्ट करो और छोड़ो मत।

तो यह स्मरण रखो: समाविष्ट करने को जीवन की एक शैली ही बना लो। न केवल ध्यान, वरन एक जीवन-शैली, एक जीने का ढंग ही बना लो। और-और समाविष्ट करने का प्रयास करो। जितना तुम समाविष्ट करते हो, उतने ही तुम फैलते हो, उतनी ही तुम्हारी सीमाएं अस्तित्व के दिगांतरों तक फैलती जाती हैं। एक दिन केवल तुम्हीं होते हो; पूरा अस्तित्व समाहित हो गया। यह सारे धार्मिक अनुभव की परम स्थिति है। ३

जब तुम बहुत ऊँचाई पर उड़ रहे हो तो ध्यान करने के लिए उससे बेहतर परिस्थिति तुम नहीं खोज सकते। ऊँचाई जितनी अधिक हो, ध्यान करना उतना ही सरल है। इसीलिए सदियों से साधक ऊँचाई खोजने के लिए हिमालय जाते रहे हैं।

जेट-सेट के लिए एक ध्यान

जब गुरुत्वाकर्षण कम होता है और पृथ्वी बहुत दूर तो पृथ्वी के बहुत सारे आकर्षण भी दूर रह जाते हैं। तुम भ्रष्ट समाज से बहुत दूर हो जाते हो जिसे मनुष्य ने निर्मित किया है। तुम बादलों से, सितारों से, चांद से, सूरज से, और विशाल आकाश से घिरे होते हो। तो एक काम करो: इस विशालता के साथ एक होने का

अनुभव करना शुरू करो, और ऐसा तीन चरणों में करो।

पहला चरण है: कुछ मिनट के लिए यही सोचो कि तुम बड़े हो रहे हो... तुम पूरे वायुयान में भरे जा रहे हो। फिर दूसरा चरण है: भाव करना शुरू करो कि तुम और भी बड़े हो रहे हो, वायुयान से भी बड़े हो रहे हो, वास्तव में वायुयान अब

तुम्हारे भीतर ही है। और तीसरा चरण: भाव करो कि तुम समस्त आकाश में फैल गए हो। अब ये जो बादल चल रहे हैं, और ये चांद-तारे—ये सब तुम्हारे भीतर चल रहे हैं; तुम विशाल हो, असीम हो।

यह भाव ही तुम्हारा ध्यान बन जाएगा, और तुम बिल्कुल विश्रान्त और तनावरहित अनुभव करोगे।⁴

प तंजलि ने कहा: समाधि की निर्विचार अवस्था की परम शुद्धता उपलब्ध होने पर प्रकट होता है आध्यात्मिक प्रकाश।

तुम्हारी अंतरतम सत्ता प्रकाश के स्वभाव की है। चेतना प्रकाश है। चेतना ही है एकमात्र प्रकाश। तुम जी रहे हो बहुत अचेतन रूप से; कई चीजें कर रहे हो, न जानते हुए कि क्यों कर रहे हो; आकांक्षा

विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो

कर रहे हो चीजों की, न जानते हुए कि क्यों; मांग कर रहे हो चीजों की, न जानते हुए कि क्यों! एक अचेतन निद्रा में बहे चले जा रहे हो। तुम सब नींद में चलने वाले हो। निद्राचारिता एकमात्र आध्यात्मिक रोग है—निद्रा में चल रहे हो और जी रहे हो।

ज्यादा बोधपूर्ण हो जाओ। विषयों के साथ ज्यादा बोधपूर्ण, चैतन्यपूर्ण होना शुरू

करो। चीजों की ओर ज्यादा सजगता से देखो। तुम गुजरते हो एक वृक्ष के निकट से; वृक्ष को ज्यादा सजगता से देखो। रुक जाओ कुछ देर को, देखो वृक्ष की ओर। आंखें मल लो अपनी; ज्यादा सजगता से देखो वृक्ष की ओर। तुम्हारी जागरूकता को इकट्ठा करो, देखो वृक्ष की तरफ। और भेद पर ध्यान देना।

अकस्मात् जब तुम सचेत हो जाते हो,

वृक्ष कुछ अलग ही हो जाता है: वह ज्यादा हरा होता है, वह ज्यादा जीवंत होता है, वह ज्यादा सुन्दर होता है। वृक्ष वही है, केवल तुम बदल गए।

एक फूल की ओर देखो, ऐसे जैसे कि तुम्हारा सारा अस्तित्व इस देखने पर निर्भर करता हो। तुम्हारी सारी जागरूकता को उस फूल तक ले आओ और अचानक फूल महिमावान हो जाता है—वह ज्यादा

चमकीला होता है, वह ज्यादा प्रदीप्त होता है, उसमें शाश्वत की कोई आभा होती है, जैसे कि शाश्वत आ पहुँचा हो लौकिक संसार में किसी फूल के रूप में ही।

सजगता से देखना तुम्हारे पति के, तुम्हारी पत्नी के, तुम्हारे मित्र के, तुम्हारी प्रेमिका के चेहरे की तरफ; ध्यान करना उस पर और अचानक तुम देखोगे न ही केवल शरीर को, बल्कि उसको जो शरीर के पार का है, जो झर रहा है शरीर के भीतर से। दिव्यता का एक आभासमंडल होता है शरीर के चारों ओर। प्रेमिका का चेहरा अब तुम्हारी प्रेमिका का चेहरा न रहा; प्रेमिका का चेहरा परमात्मा का चेहरा बन चुका है। देखना तुम्हारे बच्चे की ओर, पूरी सजगता से, जागरूकता से, उसे देखना खेलते हुए और अचानक विषय रूपांतरित हो जाता है।...

उदाहरण के लिए एक पक्षी गाता है एक वृक्ष पर: सजग हो जाओ, जैसे कि उसी पल में और पक्षी के उसी गान में अस्तित्व हो तुम्हारा—समष्टि अस्तित्व नहीं रखती। अपनी समग्र सत्ता को केन्द्रित करो पक्षी के गान की तरफ और तुम जान जाओगे अंतर को। यातायात के शोर का कोई अस्तित्व न रहा, या फिर वह अस्तित्व रखता है परिधि पर ही—दूर, कहीं बहुत दूर। वह छोटा-सा पक्षी और उसका गान तुम्हारे अस्तित्व को भर देता है संपूर्णतया—केवल तुम्हारा और पक्षी का अस्तित्व बना रहता है। और फिर जब गान समाप्त हो जाता है, तो सुनो गाने की अनुपस्थिति को। तब विषय सूक्ष्म बन

जाता है।

सदा स्मरण में रख लेना कि जब गान समाप्त होता है तो वह वातावरण में एक निश्चित गुणवत्ता छोड़ जाता है—वह अनुपस्थिति। वातावरण अब वही नहीं रहा। वातावरण संपूर्णतया बदल गया क्योंकि गाने का अस्तित्व था और फिर गान तिरोहित हो गया—अब है गाने की अनुपस्थिति। ध्यान देना इस पर—सारा अस्तित्व भरा हुआ है गाने की अनुपस्थिति से। और यह ज्यादा सुंदर है किसी भी गाने से क्योंकि यह गान है मौन का। एक गान उपयोग करता है ध्वनि का और जब ध्वनि तिरोहित हो जाती है तो अनुपस्थिति उपयोग करती है मौन का। पक्षी गा चुका होता है तो उसके बाद मौन ज्यादा गहन होता है। यदि तुम देख सकते हो इसे, यदि तुम सचेत रह सकते हो, तो अब तुम ध्यान कर रहे होते हो सूक्ष्म विषय पर, बहुत ही सूक्ष्म विषय पर।

एक व्यक्ति चल रहा होता है, बहुत सुंदर व्यक्ति—ध्यान देना उस व्यक्ति पर। और जब वह चला जाता है, तो ध्यान देना अनुपस्थिति पर। वह पीछे छोड़ गया है कोई चीज। उसकी ऊर्जा ने बदल दिया होता है कमरे को; अब वह वही कमरा नहीं रहा।...

यदि तुम्हारे पास संवेदनशील नाक है—बहुत थोड़े से लोगों के पास होती है; मानवता अपनी नाक लगभग बिल्कुल ही खो चुकी है। पशु बेहतर हैं, उनकी घ्राण-शक्ति कहीं ज्यादा संवेदनशील है, ज्यादा क्षमतापूर्ण है आदमी से। आदमी की

नाक को कुछ हो गया है, कुछ गलत घट गया है। बहुत थोड़े से आदमियों के पास संवेदनशील नाक होती है। लेकिन यदि तुम्हारे पास है—तो जरा नजदीक रहना फूल के। सुवास भरने देना स्वयं में। फिर, धीरे-धीरे सरकते जाना फूल से दूर, बहुत धीमे से, लेकिन महक के प्रति, सुवास के प्रति सचेत रहना जारी रखना। जैसे-जैसे तुम दूर होते जाते हो, सुवास अधिकाधिक सूक्ष्म होती जाएगी, और तुम्हें ज्यादा जागरूकता की आवश्यकता होगी, उसे अनुभव करने के लिए।

नाक ही बन जाना। भूल जाना सारे शरीर के बारे में और अपनी सारी ऊर्जा ले आना नाक तक, जैसे कि केवल नाक का ही अस्तित्व हो। यदि तुम खो देते हो गंध का बोध, तो फिर कुछ कदम और आगे बढ़ना; फिर पकड़ लेना गंध को। फिर आ जाना पीछे, पीछे की ओर। धीरे-धीरे, तुम बहुत, बहुत दूर से फूल को सूंघने योग्य हो जाओगे। कोई और दूसरा वहाँ से सूंघ नहीं पाएगा फूल को। फिर और दूर हटते चले जाना। बहुत सीधे-सरल ढंग से तुम विषय को सूक्ष्म बना रहे होते हो। फिर एक घड़ी आ जाएगी जब तुम गंध को सूंघ न पाओगे: अब सूंघ लेना अनुपस्थिति को। अब सूंघना उस अभाव को। जहाँ सुवास अभी कुछ देर पहले थी, अब वह वहाँ नहीं रही; उसी के अस्तित्व का वह दूसरा हिस्सा है, वह अनुपस्थित हिस्सा, वह अंधेरा हिस्सा। यदि तुम सूंघ सको महक की अनुपस्थिति को, यदि तुम अनुभव कर सको कि इससे अंतर पड़ता है—पड़ता ही

है इससे अंतर—तब विषय बहुत सूक्ष्म बन जाता है।...

तुम ऐसा कर सकते हो लोभान के साथ। जलाओ लोभान को, ध्यान करो उस पर, महसूस करो उसको, सुगंध महसूस करो उसकी, भर जाओ उससे, और फिर पीछे हटते जाओ, दूर हटते जाओ उससे। और उस पर ध्यान करते जाओ, करते चले जाओ और होने दो उसे अधिक से अधिक सूक्ष्म। एक घड़ी आती है जब तुम किसी चीज की अनुपस्थिति को

अनुभव कर सकते हो। तब तुम आ पहुंचे होते हो बड़ी गहन जागरूकता तक।...

लेकिन जब विषय संपूर्णतया तिरोहित हो जाता है—विषय की उपस्थिति समाप्त हो जाती है और विषय की अनुपस्थिति भी समाप्त हो जाती है; विचार मिट जाता है और अ-विचार भी मिट जाता है; मन तिरोहित हो जाता है और अ-मन की धारणा भी तिरोहित हो जाती है—केवल तभी तुम उपलब्ध होते हो उस उच्चतम को। अब यही है वह घड़ी जब अकस्मात्

ही प्रसाद तुम पर उतरता है। यही है वह घड़ी जब फूलों की वर्षा हो जाती है। यही है वह क्षण जब तुम जुड़ जाते हो अंतस-सत्ता और जीवन के मूल स्रोत के साथ। यही है वह क्षण जब तुम भिखारी नहीं रहते; तुम सम्राट हो जाते हो। यही है वह क्षण जब तुम संपूर्ण रूप से अभिषेकित हो जाते हो। इससे पहले तो तुम सूली पर थे; यही होता है वह क्षण जब सूली तिरोहित हो जाती है और तुम सम्राट हो जाते हो। 5

ति लोपा ने कहा: बांस की
पोली पोंगरी की भांति अपने
शरीर के साथ सहज हो रहो।

यह तिलोपा की विशेष विधियों में से है। हर सदगुरु की अपनी कोई विशेष विधि होती है जिसके द्वारा वह उपलब्ध हुआ, और जिसके द्वारा वह दूसरों की मदद करना चाहेगा। यह तिलोपा की विशेष विधि है: “बांस की पोली पोंगरी की भांति अपने शरीर के साथ सहज हो रहो।”

बांस की पोली पोंगरी

बांस की पोंगरी, भीतर से बिल्कुल खाली। जब तुम विश्राम करो, तो इतना ही अनुभव करो कि तुम बांस की एक पोंगरी की तरह हो गए हो—भीतर से बिल्कुल पोले और खाली। और वास्तव में ऐसा ही है: तुम्हारा शरीर बांस की पोंगरी जैसा ही है, और भीतर से खाली है। तुम्हारी त्वचा, तुम्हारी हड्डियाँ, तुम्हारा रक्त, सबकुछ बांस का ही हिस्सा है, और भीतर आकाश है, खालीपन है।

जब तुम बिल्कुल मौन होकर, निष्क्रिय बैठे हो, जिह्वा तालु को छू

रही है और शांत है, विचारों से कंपित नहीं हो रही, मन शिथिल होकर देख रहा है, किसी विशेष चीज की प्रतीक्षा नहीं कर रहा, तो बांस की एक पोली पोंगरी की तरह अनुभव करो—और अचानक अनंत ऊर्जा तुममें उंडलने लगती है, तुम अज्ञात से, रहस्यमय से, दिव्य से भर जाते हो। बांस की पोली पोंगरी एक बांसुरी बन जाती है और परमात्मा उसे बजाने लगता है। एक बार तुम खाली हो जाओ तो परमात्मा को तुममें प्रवेश करने में कोई बाधा नहीं बचती।

इसे करके देखो; वह बांस की पोली पोंगरी बन जाने की यह विधि, सुंदरतम विधियों में से है। तुम्हें कुछ और करने की जरूरत नहीं। तुम यही हो जाओ—और बाकी सब हो जाता है। अचानक तुम्हें लगता है कि तुम्हारे खालीपन में कुछ उतर रहा है। तुम एक गर्भ की भांति हो और एक नया जीवन तुममें प्रवेश कर रहा है, एक बीज गिर रहा है। और एक क्षण आता है जब बांस भी पूरी तरह विलीन हो जाता है।^६

मृत्यु में प्रवेश

जी वन मृत्यु की ओर एक तीर्थयात्रा है। प्रारंभ से ही मृत्यु आने लगती है। जन्म के क्षण से ही मृत्यु तुम्हारी ओर आनी शुरू हो गई है; तुम मृत्यु की ओर चल पड़े हो।

और मनुष्य के मन के साथ सबसे बड़ी दुर्घटना घटी है कि वह मृत्यु के विरुद्ध है। मृत्यु के विरुद्ध होने का अर्थ है कि तुम महानतम रहस्य को चूक जाओगे। और मृत्यु के विरुद्ध होने का यह भी अर्थ है कि तुम स्वयं जीवन को ही चूक जाओगे—क्योंकि वे एक-दूसरे में गहन रूप से आबद्ध हैं; वे दो नहीं हैं। जीवन विकास है, मृत्यु उसकी खिलावट है। यात्रा और लक्ष्य भिन्न नहीं हैं—यात्रा लक्ष्य पर पूर्ण होती है।।

शि व ने कहा: अपने शरीर में
पंजों से ऊपर उठती हुई
अग्नि पर अपने होश को केंद्रित करो जब
तक कि शरीर जल कर राख न हो जाए,
लेकिन तुम नहीं।

बुद्ध को यह विधि बहुत प्रीतिकर थी;
उन्होंने अपने शिष्यों को इस विधि में
दीक्षित किया।

जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध द्वारा दीक्षित
होता, तो पहली बात यही होती थी: वे उसे
कहते कि श्मशान जाकर किसी जलते हुए

मृत्यु में प्रवेश

शरीर को, जलती हुई लाश को देखो। तीन
महीने तक उसे कुछ भी नहीं करना होता,
बस वहां बैठना और देखना होता।

बुद्ध कहते, “उसके विषय में विचार
मत करना, उसे बस देखना।” और यह
कठिन है कि मन में यह विचार न उठे कि
देर-सबेर तुम्हारा शरीर भी जला दिया
जाएगा। तीन महीना एक लंबा समय है,
और साधक को रात-दिन निरंतर जब भी
कोई चिंता जलती, उस पर ध्यान करना

था। देर-सबेर उसे अपना ही शरीर चिता
पर दिखाई देने लगता। वह स्वयं को ही
जलता हुआ देखने लगता।

यदि तुम मृत्यु से बहुत भयभीत हो तो
इस विधि को तुम नहीं कर सकते, क्योंकि
भय ही तुम्हारा बचाव करेगा। तुम उसमें
प्रवेश नहीं कर सकते। या, तुम सतह पर
ही उसकी कल्पना कर सकते हो, लेकिन
तुम्हारे गहन प्राण उसमें नहीं होंगे। फिर
तुम्हें कुछ भी नहीं घटेगा।

स्मरण रखो, तुम भयभीत हो कि नहीं,
मृत्यु ही एकमात्र निश्चित घटना है। जीवन
में मृत्यु के सिवाय और कुछ भी निश्चित
नहीं है। सब कुछ अनिश्चित है; केवल
मृत्यु ही एक निश्चितता है। बाकी सब
कुछ सांयोगिक है—हो भी सकता है, नहीं
भी हो सकता—केवल मृत्यु ही सांयोगिक
नहीं है। और मानवीय मन की ओर देखो।
हम मृत्यु के संबंध में सदा ऐसे ही बात
करते हैं जैसे वह कोई दुर्घटना हो। जब भी

कोई मरता है तो हम कहते हैं कि उसकी मृत्यु असामयिक थी। जब भी कोई मरता है, हम इस प्रकार बात करने लगते हैं जैसे यह कोई दुर्घटना रही हो। मृत्यु, केवल मृत्यु ही दुर्घटना नहीं है, बाकी सब घटनावश है। मृत्यु पूर्णतः निश्चित है। तुम्हें मरना ही है।

और जब मैं कहता हूँ कि तुम्हें मरना है, तो लगता है मृत्यु भविष्य में, कहीं बहुत दूर है। ऐसा नहीं है—तुम मर ही चुके हो। जिस क्षण तुम पैदा हुए, तुम मरने लगे थे। जन्म के साथ ही मृत्यु एक निर्धारित घटना हो गई। उसका एक भाग—जन्म—तो घट ही गया; अब केवल दूसरे भाग का घटना रह गया है। तो तुम पहले ही मर चुके, आधे मर चुके, क्योंकि एक बार व्यक्ति पैदा हो गया, तो वह मृत्यु के घेरे में आ गया, प्रवेश कर गया। अब कुछ भी उसे बदल नहीं सकता, अब उसे बदलने का कोई उपाय नहीं है। तुम उसमें प्रवेश कर चुके। जन्म के साथ ही तुम आधे मर गए। दूसरे : मृत्यु अंत में नहीं होने वाली; वह पहले ही हो चुकी है। वह एक प्रक्रिया है। जिस प्रकार जीवन एक प्रक्रिया है, मृत्यु भी एक प्रक्रिया है। हम द्वैत पैदा करते हैं—लेकिन जीवन और मृत्यु तुम्हारे दो पैरों की तरह, तुम्हारे दो पांवों की तरह हैं। जीवन और मृत्यु दोनों एक ही प्रक्रिया हैं। तुम हर क्षण मर रहे हो।

यह मैं इस तरह कहूँ : जब भी तुम श्वास भीतर लेते हो, तो वह जीवन है, और जब भी तुम श्वास छोड़ते हो, तो वह मृत्यु है।

पहला काम जो बच्चा करता है, वह है श्वास भीतर लेना। बच्चा श्वास बाहर नहीं छोड़ सकता। पहला काम है श्वास भीतर लेना। वह श्वास बाहर नहीं छोड़ सकता, क्योंकि उसकी छाती में हवा नहीं है; उसे श्वास भीतर लेनी होगी। पहला काम है श्वास भीतर लेना। और वृद्ध व्यक्ति, मरते समय जो अंतिम काम करेगा, वह है श्वास बाहर छोड़ना। मरते समय तुम श्वास भीतर नहीं ले सकते—या, ले सकते हो? जब तुम मर रहे हो, तुम श्वास भीतर नहीं ले सकते। अंतिम कृत्य श्वास भीतर लेना नहीं हो सकता; अंतिम कृत्य श्वास का बाहर छोड़ना होगा। पहला कृत्य श्वास लेना है, और अंतिम कृत्य श्वास छोड़ना है। श्वास भीतर लेना जन्म है और श्वास बाहर छोड़ना मृत्यु है। लेकिन हर क्षण तुम दोनों ही कार्य कर रहे हो—श्वास लेना भी और छोड़ना भी। श्वास लेना जीवन है, श्वास छोड़ना मृत्यु है।

शायद तुमने देखा न हो, पर इसे देखने का प्रयास करो। जब भी तुम श्वास छोड़ते हो, तुम अधिक शांत होते हो। गहरी श्वास छोड़ो, और तुम भीतर एक विशेष शांति का अनुभव करोगे। जब भी तुम श्वास लेते हो, तुम सघन हो जाते हो, तन जाते हो। श्वास लेने की सघनता ही एक तनाव निर्मित कर देती है। और सामान्यतः, साधारणतः श्वास लेने पर ही जोर दिया जाता है। यदि मैं तुम्हें गहरी श्वास के लिए कहूँ तो तुम सदा श्वास भीतर लेने से ही शुरू करोगे।

वास्तव में, हम श्वास छोड़ने से भयभीत हैं। यही कारण है कि श्वास उथली हो गई है। तुम कभी भी श्वास छोड़ते नहीं, बस भीतर लिए चले जाते हो। बस शरीर ही श्वास छोड़ता है, क्योंकि शरीर केवल श्वास भीतर लेने से नहीं चल सकता। उसे जीवन और मृत्यु दोनों की जरूरत है।

पहला चरण :

एक प्रयोग करो। पूरे दिन, जब भी तुम्हें स्मरण आए, गहरी श्वास छोड़ो और श्वास भीतर मत लो। शरीर को श्वास लेने दो; तुम बस गहरी श्वास छोड़ते रहो। तुम एक गहन शांति अनुभव करोगे, क्योंकि मृत्यु शांति है, मृत्यु मौन है। और यदि श्वास छोड़ने पर तुम ध्यान दे सको, अधिक ध्यान दे सको तो तुम अहंकारशून्य अनुभव करोगे। श्वास लेने में तुम्हें अहंकार का अधिक अनुभव होगा; श्वास छोड़ने में तुम्हें अधिक अनुभव अहंकारशून्यता का होगा। श्वास छोड़ने पर अधिक ध्यान दो। सारा दिन, जब भी तुम्हें याद आए, गहरी श्वास छोड़ो और श्वास भीतर मत लो; शरीर को ही श्वास ले लेने दो; तुम कुछ भी मत करो।

श्वास छोड़ने पर दिया गया यह बल तुम्हें इस प्रयोग को करने में बहुत मदद देगा, क्योंकि तुम मरने को तैयार होओगे। एक तैयारी चाहिए, वरना यह विधि बहुत सहयोगी न होगी। और तैयार तुम तभी हो सकते हो जब तुमने किसी तरह से मृत्यु

का स्वाद ले लिया हो। गहरी श्वास छोड़ो और तुम्हें मृत्यु का स्वाद मिल जाएगा। सुंदर है यह।

मृत्यु सुंदर है, क्योंकि कुछ भी मृत्यु जैसा नहीं है—इतना मौन, इतना विश्रामदायी, इतना शांत, इतना स्थिर। लेकिन हम मृत्यु से भयभीत हैं। और हम मृत्यु से क्यों भयभीत हैं? मृत्यु का इतना भय क्यों है? हम मृत्यु के कारण मृत्यु से भयभीत नहीं हैं—क्योंकि उसे तो हम जानते नहीं हैं। तुम उस चीज से कैसे डर सकते हो जिससे तुम्हारा कभी साक्षात्कार ही न हुआ हो? उस चीज से तुम कैसे डर सकते हो जिसे तुम जानते ही नहीं? उससे डरने के लिए कम से कम तुम्हें उसे जानना तो चाहिए। तो वास्तव में तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो; भय कुछ और है। तुम कभी जिए ही नहीं—उससे मृत्यु का भय पैदा होता है।

भय इसलिए आता है कि तुम जी नहीं रहे, इसलिए तुम भयभीत हो—“अभी तक तो मैं जिया ही नहीं, और यदि मृत्यु आ जाए, तो क्या होगा? अतृप्त, अनजिया ही मैं मर जाऊंगा।” मृत्यु का भय उन्हीं लोगों को होता है जो वास्तव में जीवित नहीं हैं। यदि तुम जीवित हो, तो मृत्यु का स्वागत करोगे। फिर कोई भय नहीं है। तुमने जीवन जाना है; अब तुम मृत्यु को भी जानना चाहोगे। लेकिन हम जीवन से ही इतने भयभीत हैं कि हमने उसे नहीं जाना, हम उसमें गहरे प्रवेश नहीं किए। उससे मृत्यु का भय पैदा होता है।

यदि तुम इस विधि में प्रवेश करना

चाहते हो तो तुम्हें इस गहन भय के प्रति सजग होना चाहिए। और इस गहन भय को छोड़ना है, उससे मुक्त होना है, तभी तुम इस विधि में प्रवेश कर सकते हो। यह सहयोगी होगा: श्वास छोड़ने पर अधिक ध्यान दो। पूरे दिन तुम विश्रांत अनुभव करोगे, और एक अंतर्माँन निर्मित हो जाएगा।

दूसरा चरण:

इस भाव को तुम अधिक गहरा सकते हो यदि तुम एक दूसरा प्रयोग करो। रोज पंद्रह मिनट के लिए गहरी श्वास बाहर छोड़ो। किसी कुर्सी पर या जमीन पर बैठ जाओ, गहरी श्वास छोड़ो, और श्वास छोड़ते समय आंखें बंद कर लो। जब हवा बाहर जाए, तुम भीतर चले जाओ। और फिर शरीर को श्वास लेने दो, और जब हवा भीतर जाए, आंखें खोल लो और तुम बाहर चले जाओ। बिलकुल विपरीत: जब श्वास बाहर जाए, तुम भीतर जाओ; जब श्वास भीतर जाए, तो तुम बाहर जाओ।

जब तुम श्वास छोड़ते हो, तो भीतर एक खाली स्थान निर्मित होता है, क्योंकि श्वास ही जीवन है: जब तुम गहरी श्वास छोड़ते हो तो तुम खाली हो गए, जीवन बाहर चला गया। एक तरह से तुम मर गए, एक क्षण के लिए तुम मर गए। मृत्यु की उस शांति में, भीतर प्रवेश कर जाओ। हवा बाहर जा रही है: तुम अपनी आंखें बंद करो और भीतर चले जाओ। वहां स्थान रिक्त है और तुम सरलता से जा

सकते हो।

अगली विधि करने से पहले पंद्रह मिनट के लिए यह प्रयोग करो ताकि तुम तैयार हो जाओ—न केवल तैयार बल्कि स्वागतपूर्ण, ग्राहक। अब मृत्यु का भय नहीं रहा, क्योंकि मृत्यु अब विश्राम जैसी लगती है, मृत्यु अब गहन विश्राम जैसी लगती है।

तीसरा चरण:

लेट जाओ। पहले मृत की भांति अपनी कल्पना करो। शरीर बस एक लाश की तरह है। लेट जाओ, और फिर अपने होश को पंजों पर लाओ। आंखें बंद किए हुए भीतर गति करो। अपने होश को पंजों पर लाओ और भाव करो कि वहां से अग्नि ऊपर की ओर उठ रही है, सबकुछ जल रहा है। जैसे-जैसे आग उठती है, तुम्हारा शरीर विलीन हो रहा है। पंजों से शुरू करो और ऊपर की ओर जाओ।

पंजों से क्यों शुरू करना है? यह सरल होगा, क्योंकि पंजे तुम्हारे मैं से, तुम्हारे अहंकार से बहुत दूर हैं।

तुम्हारा अहंकार सिर पर केंद्रित है। तुम सिर से शुरू नहीं कर सकते, यह बहुत कठिन होगा; तो दूर के बिंदु से शुरू करो—पंजे अहंकार से सबसे दूर के बिंदु हैं। वहाँ से अग्नि को शुरू करो। भाव करो कि पंजे जल गए हैं, केवल राख बची है। फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ो, आग के सामने जो कुछ भी आए उसे जलाते हुए। पैर, जांघ, सभी अंग विलीन हो जाएंगे।

बस यह देखते रहो कि वे राख हो गए हैं। आग ऊपर उठ रही है, और जिन-जिन अंगों से वह गुजरी है, वे अब नहीं रहे; वे राख हो गए हैं। ऊपर जाते जाओ, और अंततः सिर भी विलीन हो जाता है। तुम पर्वतशिखर पर बैठे एक द्रष्टा बने रहोगे। शरीर मौजूद होगा—मृत, जला हुआ, राख—और तुम द्रष्टा होओगे, तुम साक्षी होओगे। इस साक्षी का कोई अहंकार नहीं होता।

यह विधि अहंकारशून्य दशा तक पहुंचने के लिए अच्छी है। क्यों?—क्योंकि इसमें बहुत-सी बातें समाहित हैं। यह सरल लगती है; इतनी सरल है नहीं। व्यक्ति की आंतरिक संरचना बहुत जटिल है। पहली बात: तुम्हारी स्मृतियाँ तुम्हारे शरीर का हिस्सा हैं। स्मृति भौतिक है, इसीलिए उसे संगृहीत किया जा सकता है—वह मस्तिष्क की कोशिकाओं में संगृहीत है। वह भौतिक है, शरीर का हिस्सा है। तुम्हारे मस्तिष्क की कोशिकाओं की शल्य चिकित्सा की जा सकती है, और यदि कुछ विशेष कोशिकाएं हटा दी जाएं तो तुम्हारी कुछ विशेष स्मृतियाँ तुमसे विदा हो जाएंगी।

स्मरण रखो, यह समझने की बात है: यदि स्मृति अभी भी मौजूद है, तो शरीर बना रहेगा और तुम धोखा ही दे रहे थे। यदि तुम सच में ही इस भाव में गहरे चले जाओ कि शरीर मर गया है, जल रहा है, और आग ने उसे पूरी तरह नष्ट कर दिया है, तो उस क्षण में कोई स्मृति नहीं होगी।

द्रष्टा होने के उस क्षण में, कोई मन नहीं बचेगा। सब कुछ रुक जाएगा—विचार की कोई गति नहीं, बस देखना, बस देखना कि क्या हुआ है।

और एक बार तुम यह जान जाओ, तो तुम इस दशा में सतत रह सकते हो। एक बार तुम जान जाओ कि तुम स्वयं को शरीर से अलग कर सकते हो—यह विधि तुम्हें शरीर से अलग करने का, तुम्हारे और शरीर के बीच एक अंतराल पैदा करने का, कुछ क्षण के लिए शरीर से बाहर हो जाने का एक उपाय है। यदि तुम यह कर सको, तो तुम शरीर में रह सकते हो लेकिन फिर भी तुम शरीर में नहीं होओगे। तुम ऐसे ही रह सकते हो जैसे पहले रह रहे थे, लेकिन फिर तुम वही नहीं होओगे।

यह विधि कम से कम तीन महीने लेगी। इसे करते रहो। यह एक दिन में नहीं होने वाला, लेकिन यदि एक घंटा रोज तुम इस विधि को करते रहो, तो तीन महीने के भीतर, एक दिन अचानक तुम्हारी कल्पना अपना काम कर चुकेगी और अंतराल निर्मित हो जाएगा, और तुम शरीर को सच ही राख हुआ देखोगे। तब तुम अवलोकन कर सकते हो।

उस अवलोकन में तुम्हें एक गहन अनुभूति होगी—कि अहंकार एक झूठी सत्ता है। अहंकार इसलिए था कि शरीर से, विचारों से, मन से तुम्हारा तादात्म्य था। तुम इनमें से कुछ भी नहीं हो—न मन और न शरीर। जो कुछ भी तुम्हें घेरे है, तुम उस सब से भिन्न हो; तुम अपनी परिधि से भिन्न हो।²

मृत्यु का उत्सव मनाना

मैं ने तीन फकीरों के बारे में सुना है। उनके नाम का कोई उल्लेख नहीं है, क्योंकि उन्होंने कभी भी किसी को अपना नाम नहीं बताया, उन्होंने कभी किसी बात का जवाब नहीं दिया। इसलिए चीन में उन्हें बस 'तीन हंसते फकीरों' के नाम से ही जाना जाता है।

वे एक ही काम करते थे: वे किसी गांव में प्रवेश करते, बाजार में खड़े हो जाते, और हंसना शुरू कर देते। अचानक लोग सजग हो जाते, और वे अपने पूरे प्राणों से हंसते। फिर दूसरे लोग भी प्रभावित हो जाते, और एक भीड़ जमा हो जाती, और उनको देखने भर से ही पूरी भीड़ भी हंसने लगती। यह क्या हो रहा है? फिर पूरा शहर सम्मिलित हो जाता। और वे फकीर किसी दूसरे शहर को चल देते। उन्हें बहुत प्रेम किया जाता था। उनका यही एक मात्र उपदेश था, यही एक संदेश था—कि हंसो। और वे कुछ सिखाते नहीं थे, बस परिस्थिति पैदा कर देते थे।

फिर ऐसा हुआ कि वे देश भर में प्रसिद्ध हो गए—'तीन हंसते फकीर'। पूरा चीन उनको प्रेम करता था, उनका सम्मान करता था। किसी ने भी इस तरह से शिक्षा नहीं दी—कि जीवन एक हंसी होना चाहिए, और अन्यथा कुछ भी नहीं। और वे किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं हंस रहे थे, लेकिन बस हंस रहे थे, जैसे कि वे

ब्रह्मांडीय मजाक को समझ गए हों। एक शब्द भी बिना बोले उन्होंने पूरे चीन भर में बहुत आनंद फैलाया। लोग उनके नाम पूछते, लेकिन वे बस हंस देते, तो यही उनका नाम हो गया—‘तीन हंसते फकीर’।

फिर वे वृद्ध हुए, और किसी गांव में, उनमें से एक फकीर मर गया। पूरा गांव अपेक्षा करता था, बहुत अपेक्षा से भर गया था, क्योंकि अब तो कम से कम उन्हें रोना ही चाहिए जब कि उनमें से एक फकीर मर गया है। यह देखने जैसा होगा, क्योंकि इन लोगों के रोने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था।

पूरा गांव जमा हो गया। दो फकीर तीसरे फकीर की लाश के पास खड़े थे, और दिल खोल कर हंस रहे थे। तो गांव वालों ने पूछा, “कम से कम यह तो समझाएं!”

तो पहली बार वे बोले, और उन्होंने कहा, “हम इसलिए हंस रहे हैं कि यह

आदमी जीत गया। हम हमेशा ही सोचते थे कि कौन पहले मरेगा, और इस आदमी ने हमें हरा दिया। हम अपनी पराजय पर और उसकी जीत पर हंस रहे हैं। और फिर, वह इतने वर्ष हमारे साथ रहा, और हम एकसाथ हंसे और हमने एक-दूसरे के साथ का, मौजूदगी का आनंद लिया। उसे अंतिम विदा देने का कोई और उपाय नहीं हो सकता। हम हंस भर सकते हैं।”

पूरा गांव दुखी था, लेकिन जब मृत फकीर की देह को चिता पर रखा गया तो पूरे गांव को पता चला कि यही दोनों नहीं हंस रहे थे—तीसरा, जो मर गया था वह भी हंस रहा था। क्योंकि वह तीसरा व्यक्ति जो मर गया था उसने अपने साथियों को कहा था, “मेरे कपड़े मत बदलना!” ऐसा रिवाज था कि जब कोई व्यक्ति मर जाता, तो वे उसके कपड़े बदलते और उसके शरीर को नहलाते, तो उसने कह रखा था, “मुझे नहलाना मत, क्योंकि मैं कभी भी गंदा नहीं रहा। मेरे जीवन में इतनी हंसी थी

कि कोई भी अशुद्धता मेरे पास जमा नहीं हो सकती, मेरे पास भी नहीं फटक सकती। मैंने कोई धूल इकट्ठी नहीं की; हंसी सदा ही युवा और ताजी होती है। तो मुझे नहलाना मत, और न ही मेरे कपड़े बदलना।”

तो, बस उसे सम्मान प्रकट करने के लिए, उन्होंने उसके कपड़े नहीं बदले। और जब शरीर को चिता पर रखा गया तो अचानक उन्हें पता चला कि उसने अपने कपड़ों के नीचे बहुत-सी चीजें छिपा ली थीं और वे सभी चीजें शुरू हो गईं... चीनी पटाखे! तो पूरा गांव हंसा, और वे दो फकीर बोले, “बदमाश! तू मर गया, लेकिन तूने दोबारा हमें हरा दिया। तेरी हंसी ही अंतिम रही।”

जब इस ब्रह्मांड का पूरा मजाक समझ लिया जाता है तो एक ब्रह्मांडीय हंसी उठती है। वह उच्चतम है, केवल कोई बुद्ध ही उस भांति हंस सकता है। वे तीन फकीर निश्चित ही तीन बुद्ध रहे होंगे।³

२

तृतीय नेत्र से देखना

पूरब द्वारा इस जगत को दिए योगदानों में एक है इस बात का बोध कि इन दो आंखों के मध्य में भीतर की ओर एक तीसरी आंख है जो सामान्यतः प्रसुप्त रहती है।

व्यक्ति को बड़ा श्रम करना होता है, अपनी पूरी काम-ऊर्जा को ऊपर की ओर, गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध उठाना पड़ता है, और जब ऊर्जा तृतीय नेत्र पर पहुँचती है, तो वह खुल जाता है। इसके लिए कई विधियाँ उपयोग में लाई गई हैं, क्योंकि जब तृतीय नेत्र खुलता है तो अचानक प्रकाश की एक कौंध होती है, और जो चीजें तुम्हें कभी स्पष्ट नहीं थीं, वे अचानक स्पष्ट हो जाती हैं।

जब मैं अवलोकन, साक्षीभाव पर जोर देता हूँ... यह तृतीय नेत्र को सक्रिय करने का सबसे अच्छा उपाय है, क्योंकि यह अवलोकन भीतर होता है। इन दो आंखों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, वे केवल बाहर ही देख सकती हैं। उन्हें बंद करना जरूरी है। और जब तुम भीतर देखने का प्रयास करते हो, तो उसका निश्चित ही यह अर्थ है कि भीतर आंख जैसा कुछ है, जो देखता है। तुम्हारे विचारों को कौन देखता है? ये आंखें तो नहीं देखतीं। कौन देखता है कि तुममें क्रोध उठ रहा है? देखने के उस स्थान को प्रतीक रूप से 'तृतीय नेत्र' कहा गया है।

इस विधि में पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं। पहले दो चरण साधक को तीसरे चरण में सहज लातिहान के लिए तैयार कर देते हैं। ओशो ने बताया है कि यदि पहले चरण में श्वास-प्रश्वास को ठीक से कर लिया जाए तो रक्त प्रवाह में निर्मित कार्बन डाइआक्साइड के कारण आप स्वयं को गौरीशंकर जितना ऊंचा अनुभव करेंगे।

गौरीशंकर ध्यान

पहला चरण : पंद्रह मिनट

आंखें बंद करके बैठ जाएं। नाक से गहरी श्वास लेकर फेफड़ों को भर लें। श्वास को जितनी देर बन पड़े रोके रखें, तब धीमे-धीमे मुख के द्वारा श्वास को बाहर छोड़ दें और जितनी देर संभव हो फेफड़ों को खाली रखें। फिर नाक से श्वास भीतर लें और पूरी प्रक्रिया को दोहराएं। पहले चरण में पूरे समय इस श्वास की प्रक्रिया को जारी रखें।

दूसरा चरण : पंद्रह मिनट

सामान्य श्वास प्रक्रिया पर लौट आएँ और किसी मोमबत्ती की लौ अथवा जलते-बुझते नीले प्रकाश को सौम्यता से देखते रहें। अपने शरीर को स्थिर रखें।

तीसरा चरण : पंद्रह मिनट

आंखें बंद रखे हुए ही, खड़े हो जाएँ और अपने शरीर को शिथिल एवं

ग्रहणशील हो जाने दें। आपके सामान्य नियंत्रण के पार शरीर को गतिशील करती हुई सूक्ष्म ऊर्जाओं की अनुभूति होगी। इस लातिहान को होने दें। आप गति न करें: गति को सौम्यता से और प्रसादपूर्वक स्वयं ही होने दें।

चौथा चरण : पंद्रह मिनट

आंखें बंद किए हुए ही, शांत और स्थिर होकर लेट जाएँ।

पहले तीन चरणों में पीछे सतत एक लयबद्ध ताल की ध्वनि चलती रहनी चाहिए, और अच्छा हो यदि उसकी पृष्ठभूमि में कोई सुखकर संगीत

भी चल रहा हो। ताल सामान्य हृदय गति से सात गुना अधिक होनी चाहिए और यदि संभव हो तो जलता-बुझता प्रकाश भी 'सिन्क्रोनाइज़्ड

स्ट्रोब' में हो अर्थात् प्रकाश का अनुनादित कंपन हृदय गति से सात गुना होना चाहिए।²

यह एक अन्य शक्तिशाली, रेचक विधि है जो ऊर्जा का एक वर्तुल निर्मित कर देती है जिससे स्वाभाविक रूप से ही केंद्रस्थता घट जाती है। इसमें पंद्रह-पंद्रह मिनट के चार चरण हैं।

पहला चरण : पंद्रह मिनट

आखें खुली रख कर एक ही स्थान पर खड़े-खड़े दौड़ें। धीरे-धीरे शुरू करके तीव्र से तीव्र होते जाएं। जहां तक बन सके घुटनों को ऊपर उठाएं। श्वास को गहरा और सम रखने से ऊर्जा भीतर घूमने लगेगी। मन को भूल जाएं और शरीर को भूल जाएं। दौड़ते रहें।

मंडल ध्यान

दूसरा चरण : पंद्रह मिनट

आखें बंद कर बैठ जाएं। मुंह को शिथिल और खुला रखें। कमर से ऊपर के शरीर को धीरे-धीरे चक्राकार घुमाएं—जैसे हवा में पेड़-पौधे झूमते हैं। अनुभव करें कि हवा आपको इधर-उधर, आगे-पीछे और चारों ओर घुमा रही है। इससे भीतर जागी ऊर्जा नाभि-केंद्र पर आ जायेगी।

तीसरा चरण : पंद्रह मिनट

अब आंखें खोलकर, सिर को स्थिर रखते हुए पीठ के बल लेट जाएं, और दोनों आंखों की पुतलियों को बाएं से दाएं घड़ी के कांटे की तरह वृत्ताकार घुमाएं। आंखों को इस तरह घुमाएं, जैसे कि वे एक बड़ी घड़ी की सुई का अनुसरण कर रही हों, परंतु गति को जितना हो सके तेज रखें। यह

महत्वपूर्ण है। मुंह खुला रहे और जबड़े शिथिल रहें। श्वास कोमल एवं सम बनी रहे। इससे तुम्हारी केंद्रित ऊर्जा तीसरी आंख पर आ जाएगी।

चौथा चरण : पंद्रह मिनट

आखें बंद कर निष्क्रिय हो रहें। 3

शि व ने कहा: होश को दोनों
भौहों के मध्य में लाओ
और मन को विचार के समक्ष आने दो।
देह को पैर से सिर तक प्राण तत्व से भर
जाने दो, और वहां वह प्रकाश की भाँति
बरस जाए।

यह विधि पाइथागोरस को दी गई थी।
पाइथागोरस यह विधि लेकर ग्रीस गया।
और वास्तव में वह पश्चिम में सारे
रहस्यवाद का उद्गम बन गया, स्रोत बन
गया। वह पश्चिम में पूरे रहस्यवाद का
जनक है।

साक्षी को खोजना

यह विधि बहुत गहन पद्धतियों में से है।
इसे समझने का प्रयास करो: “होश को
दोनों भौहों के मध्य में लाओ।”...
आधुनिक मनोविज्ञान और वैज्ञानिक शोध
कहती है कि दोनों भौहों के मध्य में एक
ग्रंथि है जो शरीर का सबसे रहस्यमय अंग
है। यह ग्रंथि, जिसे पाइनियल ग्रंथि कहते
हैं, यही तिब्बतियों का तृतीय नेत्र
है—शिवनेत्र : शिव का, तंत्र का नेत्र।

दोनों आंखों के बीच एक तीसरी आंख का
अस्तित्व है, लेकिन साधारणतः वह
निष्क्रिय रहती है। उसे खोलने के लिए
तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। वह आंख अंधी
नहीं है। वह बस बंद है। यह विधि तीसरी
आंख को खोलने के लिए ही है।

“होश को दोनों भौहों के मध्य में
लाओ।”... अपनी आंखें बंद कर लो,
और अपनी आंखों को दोनों भौहों के ठीक

बीच में केंद्रित करो। आंखें बंद करके ठीक
मध्य में होश को केंद्रित करो, जैसे कि तुम
अपनी दोनों आंखों से देख रहे हो। उस पर
पूरा ध्यान दो।

यह विधि सचेत होने के सरलतम
उपायों में से है। तुम शरीर के किसी अन्य
अंग के प्रति इतनी सरलता से सचेत नहीं
हो सकते। यह ग्रंथि होश को पूरी तरह
आत्मसात कर लेती है। यदि तुम उस

पर होश को भूमध्य पर केंद्रित करो तो तुम्हारी दोनों आंखें तृतीय नेत्र से सम्मोहित हो जाती हैं। वे जड़ हो जाती हैं, हिल भी नहीं सकतीं। यदि तुम शरीर के किसी अन्य अंग के प्रति सचेत होने का प्रयास कर रहे हो, तो यह कठिन है। यह तीसरी आंख होश को पकड़ लेती है, होश को खींचती है। वह होश के लिए चुम्बकीय है। तो संसार भर की सभी पद्धतियों ने इसका उपयोग किया है। होश को साधने का यह सरलतम उपाय है क्योंकि तुम ही होश को केंद्रित करने का प्रयास नहीं कर रहे हो; स्वयं वह ग्रंथि भी तुम्हारी मदद करती है; वह चुम्बकीय है। तुम्हारा होश बलपूर्वक उसकी ओर खींच लिया जाता है। वह आत्मसात हो जाता है।

तंत्र के प्राचीन ग्रंथों में कहा गया है कि होश तीसरी आंख का भोजन है। वह आंख भूखी है; जन्मों-जन्मों से भूखी है। यदि तुम उस पर होश को लगाओ, तो वह जीवंत हो जाती है। उसे भोजन मिल गया। और एक बार तुम जान जाओ कि होश ही भोजन है, एक बार तुम्हें लग जाए कि तुम्हारा होश स्वयं ग्रंथि द्वारा ही चुम्बकीय ढंग से खिंचता है, आकर्षित होता है, तो फिर होश को साधना कोई कठिन बात नहीं है। व्यक्ति को बस ठीक बिंदु जान लेना होता है। तो बस अपनी आंखें बंद करो, दोनों आंखों को भूमध्य की ओर चले जाने दो, और उस बिंदु को अनुभव करो। जब तुम उस बिंदु के समीप आओगे तो अचानक तुम्हारी आंखें जड़ हो जाएंगी।

जब उन्हें हिलाना कठिन हो जाए तो जानना कि तुमने ठीक बिंदु को पकड़ लिया।

“होश को दोनों भौंहों के मध्य में लाओ और मन को विचार के समक्ष आने दो।”... यदि यह होश लग जाए तो पहली बार तुम्हें एक अद्भुत अनुभव होगा। पहली बार तुम विचारों को अपने सामने दौड़ता हुआ अनुभव करोगे; तुम साक्षी हो जाओगे। यह बिलकुल फिल्म के परदे जैसा होता है: विचार दौड़ रहे हैं और तुम एक साक्षी हो। एक बार तुम्हारा होश तृतीय नेत्र पर केंद्रित हो जाए, तो तुम तत्क्षण विचारों के साक्षी हो जाते हो।

सामान्यतया तुम साक्षी नहीं होते: तुम विचारों के साथ एकात्म हो। यदि क्रोध आता है तो तुम क्रोध ही हो जाते हो। कोई विचार उठता है तो तुम साक्षी नहीं होते—तुम विचार के साथ एक हो जाते हो, एकात्म हो जाते हो; और उसके साथ ही चलने लगते हो। तुम विचार बन जाते हो; तुम विचार का रूप ले लेते हो। जब काम उठता है तो तुम काम बन जाते हो; जब क्रोध उठता है तो तुम क्रोध बन जाते हो; जब लोभ आता है तो तुम लोभ बन जाते हो। कोई भी चलता हुआ विचार और उनसे तुम्हारा तादात्म्य हो जाता है। विचार और तुम्हारे बीच में कोई अंतराल नहीं होता।

लेकिन तृतीय नेत्र पर केंद्रित होकर तुम अचानक एक साक्षी बन जाते हो। तृतीय नेत्र के माध्यम से तुम साक्षी हो जाते हो। तृतीय नेत्र के द्वारा तुम विचारों को ऐसे ही देख सकते हो जैसे कि आकाश में बादल

दौड़ रहे हों, अथवा सड़क पर लोग चल रहे हों।

साक्षी होने का प्रयास करो। जो भी हो रहा हो, साक्षी होने का प्रयास करो। तुम बीमार हो, तुम्हारा शरीर दुख रहा है और पीड़ित है, तुम दुखी और पीड़ित हो, जो भी हो: उसके साक्षी हो जाओ। जो भी हो रहा है, स्वयं का उससे तादात्म्य मत करो। साक्षी बने रहो—द्रष्टा बने रहो। फिर यदि साक्षित्व संभव हो जाए तो तुम तृतीय नेत्र में केंद्रित हो जाओगे।

दूसरा, इससे उलटा भी हो सकता है। यदि तुम तृतीय नेत्र में केंद्रित हो तो तुम साक्षी बन जाओगे। ये दोनों चीजें एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। तो पहली बात: तृतीय नेत्र में केंद्रित होने से साक्षी का प्रादुर्भाव होगा। अब तुम अपने विचारों से साक्षात्कार कर सकते हो। यह पहली बात होगी। और दूसरी बात यह होगी कि अब तुम श्वास के सूक्ष्म और कोमल स्पंदन को अनुभव कर सकोगे। अब तुम श्वास के प्रारूप को, श्वास के सारतत्व को अनुभव कर सकते हो।

पहले यह समझने का प्रयास करो कि ‘प्रारूप’ का, ‘श्वास के सारतत्व’ का क्या अर्थ है। श्वास लेते समय तुम केवल हवा मात्र भीतर नहीं ले रहे हो। विज्ञान कहता है कि तुम केवल वायु भीतर लेते हो—बस ऑक्सीजन, हाइड्रोजन व अन्य गैसों का मिश्रण। वे कहते हैं कि तुम “वायु” भीतर ले रहे हो। लेकिन तंत्र कहता है कि वायु बस एक वाहन है, वास्तविक चीज नहीं है। तुम

प्राण को, जीवन-शक्ति को भीतर ले रहे हो। वायु केवल माध्यम है; प्राण उसकी अंतर्वस्तु है। तुम केवल वायु ही नहीं, प्राण भीतर ले रहे हो।

तृतीय नेत्र में केंद्रित होने से अचानक तुम श्वास के सारतत्व को देख सकते हो—श्वास को नहीं बल्कि श्वास के सारतत्व को, प्राण को। और यदि तुम

श्वास के सारतत्व को, प्राण को देख सको तो तुम उस बिंदु पर पहुँच गए जहाँ से छलांग लगती है, अंतस क्रांति घटित होती है।⁴

शि व ने कहा: आंख की
पुतलियों को पंख की भांति
छूने से उनके बीच का हलकापन हृदय
में खुलता है, और वहां ब्रह्मांड व्याप
जाता है।

अपनी दोनों हथेलियों का उपयोग करो,
उन्हें अपनी बंद आंखों पर रखो, और
हथेलियों को पुतलियों से छू जाने
दो—लेफ्टिन पंख के जैसे, बिना कोई
दबाव डाले। यदि दबाव डाला तो तुम चूक
गए, तुम पूरी विधि से ही चूक गए। दबाव

पंख की भांति छूना

मत डालो; बस पंख की भांति छुओ। तुम्हें
थोड़ा समायोजन करना होगा क्योंकि शुरू
में तो तुम दबाव डालोगे। दबाव को कम
से कम करते जाओ जब तक कि दबाव
बिल्कुल समाप्त न हो जाए—बस तुम्हारी
हथेलियां पुतलियों को छूएं। बस एक
स्पर्श, बिना दबाव का एक मिलन क्योंकि
यदि दबाव रहा तो यह विधि कार्य नहीं
करेगी। तो बस एक पंख की भांति।

क्यों?—क्योंकि जहां सुई का काम हो

वहां तलवार कुछ भी नहीं कर सकती।
यदि तुमने दबाव डाला, तो उसका गुणधर्म
बदल गया—तुम आक्रामक हो गए। और
जो ऊर्जा आंखों से बह रही है वह बहुत
सूक्ष्म है: थोड़ा-सा दबाव, और वह संघर्ष
करने लगती है जिससे एक प्रतिरोध पैदा
हो जाता है। यदि तुम दबाव डालोगे तो जो
ऊर्जा आंखों से बह रही है वह एक
प्रतिरोध, एक लड़ाई शुरू कर देगी। एक
संघर्ष छिड़ जाएगा। इसलिए दबाव मत

डालो। आंखों की ऊर्जा को थोड़े-से दबाव
का भी पता चल जाता है।

वह ऊर्जा बहुत सूक्ष्म है, बहुत कोमल
है। दबाव मत डालो—बस पंख की
भांति, तुम्हारी हथेलियां ही छुएं, जैसे कि
स्पर्श हो ही न रहा हो; स्पर्श ऐसे करो जैसे
कि वह स्पर्श न हो, दबाव जरा भी न हो;
बस एक स्पर्श, एक हलका-सा एहसास
कि हथेली पुतली को छू रही है, बस।

इससे क्या होगा? जब तुम बिना दबाव

डाले हलके से छूते हो तो ऊर्जा भीतर की ओर जाने लगती है। यदि तुम दबाव डालो तो वह हाथ के साथ, हथेली के साथ लड़ने लगती है और बाहर निकल जाती है। हलका-सा स्पर्श, और ऊर्जा भीतर जाने लगती है। द्वार बंद हो जाता है, बस द्वार बंद होता है और ऊर्जा वापस लौट पड़ती है। जिस क्षण ऊर्जा वापस लौटेगी तुम अपने पूरे चेहरे और सिर पर एक हलकापन व्याप्त होता अनुभव करोगे। यह वापस लौटती ऊर्जा तुम्हें हलका कर देती है।

और इन दोनों आंखों के बीच में तीसरी आंख, प्रज्ञा-चक्षु है। ठीक दोनों आंखों के मध्य में तीसरी आंख है। आंखों से वापस लौटती ऊर्जा तीसरी आंख से टकराती है। यही कारण है व्यक्ति हलका और जमीन से उठता हुआ अनुभव करता है, जैसे कि कोई गुरुत्वाकर्षण न रहा हो। और तीसरी आंख से ऊर्जा हृदय पर बरस जाती है। यह एक शारीरिक प्रक्रिया है: बंद-बंद करके ऊर्जा टपकती है और तुम अत्यंत हलकापन अपने हृदय में प्रवेश करता अनुभव करोगे। हृदयगति कम हो जाएगी, श्वास धीमी हो जाएगी। तुम्हारा पूरा शरीर विश्रान्ति अनुभव करेगा।

यदि तुम गहन ध्यान में प्रवेश नहीं भी कर रहे, तो भी यह प्रयोग तुम्हें शारीरिक रूप से उपयोगी होगा। दिन में किसी भी समय, आराम से कुर्सी पर बैठ जाओ—या तुम्हारे पास यदि कुर्सी न हो, जब तुम रेलगाड़ी में सफर कर रहे हो—तो अपनी आंखें बंद कर लो, पूरे शरीर में एक

विश्रान्ति अनुभव करो और फिर दोनों हथेलियों को अपनी आंखों पर रख लो। लेकिन दबाव मत डालो—यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। बस पंख की भांति छुओ।

जब तुम स्पर्श करो और दबाव न डालो, तो तुम्हारे विचार तत्क्षण रुक जाएंगे। विश्रान्ति मन में विचार नहीं चल सकते; वे जम जाते हैं। विचारों को उन्माद और बुखार की जरूरत होती है, उनके चलने के लिए तनाव की जरूरत होती है। वे तनाव के सहारे ही जीते हैं। जब आंखें शांत व शिथिल हों और ऊर्जा पीछे लौटने लगे तो विचार रुक जाएंगे। तुम्हें एक मस्ती का अनुभव होगा, जो रोज-रोज गहराता जाएगा।

तो इस प्रयोग को दिन में कई बार करो। एक क्षण के लिए छूना भी अच्छा रहेगा। जब भी तुम्हारी आंखें थकी हुई, ऊर्जा-विहीन और चुकी हुई महसूस करें—पढ़कर, फिल्म देख कर, या टेलीविजन देख कर—जब भी तुम्हें ऐसा लगे, अपनी आंखें बंद कर लो और स्पर्श करो। तत्क्षण प्रभाव होगा। लेकिन यदि तुम इसे एक ध्यान बनाना चाहो, तो इसे कम से कम चालीस मिनट के लिए करो। और पूरी बात यही है कि दबाव नहीं डालना। एक क्षण के लिए तो पंख जैसा स्पर्श सरल है; चालीस मिनट के लिए कठिन है। कई बार तुम भूल जाओगे और दबाव डालने लगोगे।

दबाव मत डालो। चालीस मिनट के लिए यह बोध बनाए रहो कि तुम्हारे हाथों

में कोई बोझ नहीं है। वे बस स्पर्श कर रहे हैं। यह बोध बनाए रहो कि वे दबाव नहीं डाल रहे हैं, बस स्पर्श कर रहे हैं। यह एक गहन बोध बन जाएगा, बिल्कुल ऐसे जैसे श्वास-प्रश्वास। जैसे बुद्ध कहते हैं कि पूरे जागकर श्वास लो, ऐसा ही स्पर्श के साथ भी होगा। तुम्हें सतत स्मरण रखना होगा कि तुम दबाव नहीं डाल रहे। तुम्हारा हाथ बस एक पंख, एक भारहीन वस्तु बन जाना चाहिए, जो बस छुए। तुम्हारा चित्त समग्रतः सचेत होकर वहां आंखों के पास लगा रहेगा, और ऊर्जा सतत बहती रहेगी। शुरू में तो वह बंद-बंद करके ही टपकेगी। कुछ ही महीनों में तुम्हें लगेगा वह सरिता-सी हो गई है, और एक साल बीतते-बीतते तुम्हें लगेगा कि वह एक बाढ़ की तरह हो गई है। और जब ऐसा होता है—“आंख की पुतलियों को पंख की भांति छूने से उनके बीच का हलकापन...” —जब तुम स्पर्श करोगे तो तुम्हें हलकापन महसूस होगा। वह तुम अभी भी महसूस कर सकते हो। जैसे ही तुम स्पर्श करते हो, तत्क्षण एक हलकापन आ जाता है। और वह “उनके बीच का हलकापन हृदय में खुलता है।”... वह हलकापन हृदय में प्रवेश कर जाता है, खुल जाता है। हृदय में केवल हलकापन ही प्रवेश कर सकता है; कोई भी बोझिल चीज प्रवेश नहीं कर सकती। हृदय के साथ बहुत हलकी-फुलकी घटनाएं ही घट सकती हैं।

दोनों आंखों के बीच का यह हलकापन हृदय में टपकने लगेगा, और हृदय उसको

तृतीय नेत्र से देखना

ग्रहण करने के लिए खुल जाएगा—“और वहां ब्रह्मांड व्याप जाता है।” और जैसे-जैसे यह बहती ऊर्जा पहले एक धारा, फिर एक सरिता और फिर एक बाढ़

बनती है, तुम पूरी तरह बह जाओगे, दूर बह जाओगे। तुम्हें लगेगा ही नहीं कि तुम हो। तुम्हें लगेगा कि बस ब्रह्मांड ही है। श्वास लेते हुए, श्वास छोड़ते हुए, तुम्हें

ऐसा ही लगेगा कि तुम ब्रह्मांड बन गए हो। ब्रह्मांड भीतर आता है और ब्रह्मांड बाहर जाता है। वह इकाई जो तुम सदा बने रहे—अहंकार—वह नहीं बचेगा।⁵

लू -तू ने कहा: व्यक्ति नासाग्र की ओर देखे।

क्यों?—क्योंकि इससे मदद मिलती है, यह प्रयोग तुम्हें तृतीय नेत्र की रेखा पर ले आता है। जब तुम्हारी दोनों आंखें नासाग्र पर केंद्रित होती हैं तो उससे कई बातें होती हैं। मूल बात यह है कि तुम्हारा तृतीय नेत्र नासाग्र की रेखा पर है—कुछ इंच ऊपर, लेकिन उसी रेखा में। और एक

नासाग्र को देखना

बार तुम तृतीय नेत्र की रेखा में आ जाओ तो तृतीय नेत्र का आकर्षण, उसका खिंचाव, उसका चुम्बकत्व इतना शक्तिशाली है कि तुम उसकी रेखा में पड़ जाओ तो अपने बावजूद भी तुम उसकी ओर खिंच जाओगे। तुम्हें बस ठीक उसकी रेखा में आ जाना है, ताकि तृतीय नेत्र का आकर्षण, गुरुत्वाकर्षण सक्रिय हो जाए। एक बार तुम ठीक उसकी रेखा में आ जाओ तो किसी प्रयास की जरूरत नहीं है।

अचानक तुम पाओगे कि गेस्टाल्ट बदल गया, क्योंकि दो आंखें संसार और विचार का द्वैत पैदा करती हैं, और इन दोनों आंखों के बीच की एक आंख अंतराल निर्मित करती है। यह गेस्टाल्ट को बदलने की एक सरल विधि है।

मन इसे विकृत कर सकता है—मन कह सकता है, “ठीक, अब नासाग्र को देखो। नासाग्र का विचार करो, उस पर चित्त को एकाग्र करो।” यदि तुम नासाग्र

पर बहुत एकाग्रता साधो तो बात को चूक जाओगे, क्योंकि होना तो तुम्हें नासाग्र पर है, लेकिन बहुत शिथिल ताकि तृतीय नेत्र तुम्हें खींच सके। यदि तुम नासाग्र पर बहुत ही एकाग्रचित्त, मूलबद्ध, केंद्रित और स्थिर हो जाओ तो तुम्हारा तृतीय नेत्र तुम्हें भीतर नहीं खींच सकेगा क्योंकि वह पहले कभी भी सक्रिय नहीं हुआ। प्रारंभ में उसका खिंचाव बहुत ज्यादा नहीं हो सकता। धीरे-धीरे वह बढ़ता जाता है।

एक बार वह सक्रिय हो जाए और उपयोग में आने लगे, तो उसके चारों ओर जमी हुई धूल झड़ जाए, और यंत्र ठीक से चलने लगे, तब तुम नासाग्र पर केंद्रित भी हो जाओ तो भी भीतर खींच लिए जाओगे। लेकिन शुरू-शुरू में नहीं। तुम्हें बहुत ही हलका होना होगा, बोझ नहीं—बिना किसी खींच-तान के। तुम्हें एक समर्पण की दशा में बस वहीं मौजूद रहना होगा।...

“यदि व्यक्ति नाक का अनुसरण नहीं करता तो या तो वह आंखें खोलकर दूर देखता है जिससे कि नाक दिखाई न पड़े, अथवा वह पलकों को इतनी जोर से बंद कर लेता है कि नाक फिर दिखाई नहीं पड़ती।”

नासाग्र को बहुत सौम्यता से देखने का एक अन्य प्रयोजन यह भी है: कि इससे तुम्हारी आंखें फैल कर नहीं खुल सकतीं। यदि तुम अपनी आंखें फैला कर खोल लो तो पूरा संसार उपलब्ध हो जाता है जहां हजारों व्यवधान हैं। कोई सुंदर स्त्री गुजर जाती है और तुम पीछा करने लगते हो—कम से कम मन में। या कोई लड़ रहा है; तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है, लेकिन तुम सोचने लगते हो कि “क्या होने वाला है?” या कोई रो रहा है और तुम जिज्ञासा से भर जाते हो। हजारों चीजें सतत तुम्हारे चारों ओर चल रही हैं। यदि आंखें फैल कर खुली हुई हैं तो तुम पुरुष ऊर्जा—यांग—बन जाते हो।

यदि आंखें बिलकुल बंद हों तो तुम एक प्रकार की तेंद्रा में आ जाते हो, स्वप्न लेने

लगते हो; तुम स्त्रैण ऊर्जा—यिन—बन जाते हो। दोनों से बचने के लिए नासाग्र पर देखो—सरल—सी विधि है, लेकिन परिणाम लगभग जादुई है।

और ऐसा केवल ताओ को मानने वालों के साथ ही नहीं है। बौद्ध भी इस बात को जानते हैं, हिंदू भी जानते हैं। ध्यानी साधक सदियों से किसी न किसी तरह इस निष्कर्ष पर पहुंचते रहे हैं कि आंखें यदि आधी ही बंद हों तो अत्यंत चमत्कारिक ढंग से तुम दोनों गड्ढों से बच जाते हो। पहली विधि में साधक बाह्य जगत से विचलित हो रहा है और दूसरी विधि में भीतर के स्वप्न जगत से विचलित हो रहा है। तुम ठीक भीतर और बाहर की सीमा पर बने रहते हो और यही सूत्र है: भीतर और बाहर की सीमा पर होने का अर्थ है उस क्षण में तुम न पुरुष हो न स्त्री हो। तुम्हारी दृष्टि द्वैत से मुक्त है; तुम्हारी दृष्टि तुम्हारे भीतर के विभाजन का अतिक्रमण कर गई। जब तुम अपने भीतर के विभाजन से पार हो जाते हो, तभी तुम तृतीय नेत्र के चुम्बकीय क्षेत्र की रेखा में आते हो।...

“मुख्य बात है पलकों को ठीक ढंग से झुकाना और तब प्रकाश को स्वयं ही भीतर बहने देना।”

इसे स्मरण रखना बहुत महत्वपूर्ण है: तुम्हें प्रकाश को भीतर नहीं खींचना है, प्रकाश को बलपूर्वक भीतर नहीं लाना है। यदि खिड़की खुली हो तो प्रकाश स्वयं ही भीतर आ जाता है। यदि द्वार खुला हो, तो भीतर प्रकाश की बाढ़ आ जाती है। तुम्हें उसे भीतर लाने की जरूरत नहीं है, उसे

भीतर धकेलने की जरूरत नहीं है, भीतर घसीटने की जरूरत नहीं है। और तुम प्रकाश को भीतर कैसे घसीट सकते हो? प्रकाश को तुम भीतर कैसे धकेल सकते हो? इतना ही चाहिए कि तुम उसके प्रति खुले और संवेदनशील रहो।...

“दोनों आंखों से नासाग्र को देखता है।”

स्मरण रखो, तुम्हें दोनों आंखों से नासाग्र को देखना है ताकि नासाग्र पर दोनों आंखें अपने द्वैत को खो दें। तो, जो प्रकाश तुम्हारी आंखों से बाहर बह रहा है वह नासाग्र पर एक हो जाता है; वह एक केंद्र पर आ जाता है। जहां तुम्हारी दोनों आंखें मिलती हैं, वही स्थान है जहां खिड़की खुलती है। और फिर सब शुभ है। फिर इस घटना को होने दो, फिर तो बस आनंद मनाओ, उत्सव मनाओ, हर्षित होओ, प्रफुल्लित होओ। फिर कुछ भी नहीं करना है।

“दोनों आंखों से नासाग्र को देखता है, सीधा होकर बैठता है।”...

सीधा होकर बैठना सहायक है। जब तुम्हारी रीढ़ सीधी होती है, तुम्हारे काम-केंद्र की ऊर्जा भी तृतीय नेत्र को उपलब्ध हो जाती है। सीधी-सादी विधियां हैं, कोई जटिलता इनमें नहीं है... बस इतना ही है कि जब दोनों आंखें नासाग्र पर मिलती हैं, तो तुम तृतीय नेत्र को उपलब्ध हो जाते हो। अपनी काम-ऊर्जा को भी तृतीय नेत्र के लिए उपलब्ध कर दो। फिर प्रभाव दुगुना हो जाएगा, प्रभाव शक्तिशाली हो जाएगा, क्योंकि तुम्हारी

सारी ऊर्जा काम-केंद्र में ही है। जब रीढ़ सीधी खड़ी होती है तो काम-केंद्र की ऊर्जा भी तृतीय नेत्र को उपलब्ध हो जाती है। यह बेहतर है कि दोनों आयातों से तृतीय नेत्र पर चोट की जाए, दोनों दिशाओं से तृतीय नेत्र में प्रवेश करने की चेष्टा की जाए।

“व्यक्ति सीधा होकर और आरामदेह मुद्रा में बैठता है।”

सदगुरु चीजों को अत्यंत स्पष्ट कर रहे हैं। सीधे होकर, निश्चित ही, लेकिन इसे कष्टप्रद मत बनाओ; वरन फिर तुम अपने कष्ट से विचलित हो जाओगे। योगासन का यही अर्थ है। संस्कृत शब्द ‘आसन’ का अर्थ है: एक आरामदेह मुद्रा। आराम उसका मूल गुण है। यदि वह आरामदेह न हो तो तुम्हारा मन कष्ट से विचलित हो जाएगा। मुद्रा आरामदेह ही हो।...

“और इसका अर्थ अनिवार्य रूप से सिर के मध्य में होना नहीं है।”

और केंद्रित होने का अर्थ यह नहीं है कि तुम्हें सिर के मध्य में केंद्रित होना है।

“केंद्र सर्वव्यापी है; सब कुछ उसमें समाहित है; वह सृष्टि की समस्त प्रक्रिया के निस्तार से जुड़ा हुआ है।”

और जब तुम तृतीय नेत्र के केंद्र पर पहुंच कर वहां केंद्रित हो जाते हो और प्रकाश बाढ़ की भांति भीतर आने लगता है, तो तुम उस बिंदु पर पहुंच गए, जहां से पूरी सृष्टि उदित हुई है। तुम निराकार और अप्रकट पर पहुंच गए। चाहो तो उसे परमात्मा कह लो। यही वह बिंदु है, यही वह आकाश है जहां से सब जन्मा है। यही समस्त अस्तित्व का बीज है। यह

सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, शाश्वत है।...

“ध्यान की साधना अपरिहार्य है।”

ध्यान क्या है?—निर्विचार का एक क्षण। निर्विचार की एक दशा, एक अंतराल। और यह सदा ही घट रहा है, लेकिन तुम इसके प्रति सजग नहीं हो; वरना तो इसमें कोई समस्या नहीं है। एक विचार आता है, फिर दूसरा आता है, और उन दो विचारों के बीच में सदा एक छोटा-सा अंतराल होता है। और वह अंतराल ही दिव्य का द्वार है, वह अंतराल ही ध्यान है। यदि तुम उस अंतराल में गहरे देखो, तो वह बड़ा होने लगता है।

मन ट्रैफिक से भरी हुई एक सड़क की तरह है; एक कार गुजरती है फिर दूसरी कार गुजरती है, और तुम कारों से इतने ज्यादा ग्रसित हो कि तुम्हें वह अंतराल तो दिखाई ही नहीं पड़ता जो दो कारों के बीच सदा मौजूद है। वरना तो कारें आपस में टकरा जाएंगी। वे टकराती नहीं; उनके बीच में कुछ है जो उन्हें अलग रखता है। तुम्हारे विचार आपस में नहीं टकराते, एक-दूसरे पर नहीं चढ़ते, एक-दूसरे में नहीं मिल जाते। वे किसी भी तरह एक-दूसरे पर नहीं चढ़ते। हर विचार की अपनी सीमा होती है, हर विचार परिभाष्य होता है, लेकिन विचारों का जुलूस इतना तेज होता है, इतना तीव्र होता है कि अंतराल को तुम तब तक नहीं देख सकते, जब तक कि तुम उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रहे हो, उसकी खोज नहीं कर रहे हो।

ध्यान का अर्थ है गेस्टाल्ट को बदल

डालना। साधारणतः हम विचारों को देखते हैं: एक विचार, दूसरा विचार, फिर कोई और विचार। जब तुम गेस्टाल्ट को बदल देते हो तो तुम एक अंतराल को देखते हो, फिर दूसरे अंतराल को देखते हो। तुम्हारा आग्रह विचार पर नहीं रहता, अंतराल पर आ जाता है।...

“यदि संसारिक विचार उठें तो व्यक्ति जड़ न बैठे रहे, वरन निरीक्षण करे कि विचार कहां से शुरू हुआ, और कहां विलीन होता है।”

यह पहले ही प्रयास में नहीं होने वाला है। तुम नासाग्र पर देख रहे होओगे और विचार आ जाएंगे। वे इतने जन्मों से आते रहे हैं कि इतनी सरलता से तुम्हें नहीं छोड़ सकते। वे तुम्हारा हिस्सा बन गए हैं, वे तुम्हारे आंतरिक ढांचे ही हो गए हैं। तुम करीब-करीब एक पूर्वनिर्धारित जीवन जी रहे हो।

ऐसा होता है: जब लोग ध्यान में शांत होकर बैठते हैं, तो सामान्यतः जितने विचार आते हैं, तब उससे अधिक विचार आते हैं—असामान्य विस्फोट होते हैं। लाखों विचार दौड़े चले आते हैं, क्योंकि उनका अपना स्वार्थ है तुममें, और तुम उनकी ताकत से बाहर निकलने की चेष्टा कर रहे हो? वे तुम्हारा जम कर विरोध करेंगे। तो विचार तो आएंगे ही। विचारों के साथ तुम क्या करोगे? तुम शांत होकर बैठे नहीं रह सकते, तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। संघर्ष से तो कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि तुम यदि संघर्ष करने लगे तो तुम नासाग्र पर देखना भूल जाओगे, तृतीय नेत्र का,

प्रकाश के प्रवाह का बोध खो जाएगा; तुम सब भूल कर विचारों के जंगल में खो जाओगे। यदि तुम विचारों का पीछा करने लगे तो तुम खो गए, उनका अनुसरण करने लगे तो खो गए, उनके साथ तुम संघर्ष करने लगे तो भी तुम खो गए। तो फिर क्या करना है?

और यही राज है। बुद्ध भी इसी राज को उपयोग में लाए। वास्तव में सभी राज तो लगभग एक से ही हैं क्योंकि मनुष्य वही है—ताला वही है, तो कुंजी भी वही होनी चाहिए। यही राज है: बुद्ध इसे सम्मासती, सम्यक स्मृति कहते हैं। इतना स्मरण रखो: यह विचार आया है, बिना किसी विरोध, बिना किसी दलील, बिना किसी निंदा के देखो कि वह है कहां, एक वैज्ञानिक की भांति निरीक्षक हो रहो। देखो कि वह कहां है, कहां से आ रहा है, कहां जा रहा है। उसके आने को देखो, उसके रुकने को देखो, उसके जाने को देखो। और विचार बहुत गत्यात्मक हैं; वे देर तक नहीं रुकते। तुम्हें तो बस विचार के उठने, उसके रुकने, उसके जाने को देखना भर होता है। न संघर्ष करने की चेष्टा करो, न अनुसरण करने की, बस एक मौन निरीक्षक बने रहो। और तुम्हें हैरानी होगी: निरीक्षण जितना स्थिर हो जाता है, विचार उतने ही कम आएंगे। जब निरीक्षण बिलकुल पूर्ण हो जाता है तो विचार समाप्त हो जाते हैं। बस एक अंतराल, एक मध्यांतर ही बचता है।

लेकिन एक बात और याद रखना: मन फिर से एक चाल चल सकता है।

“प्रतिबिंब को आगे सरकाने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता।”

यही फ्रायडियन मनोविश्लेषण भी है: विचारों की मुक्त साहचर्य शृंखला। एक विचार आता है, और फिर तुम दूसरे विचार की प्रतीक्षा करते हो, और फिर तीसरे की, और यह पूरी शृंखला है।... हर मनोविश्लेषण यही करता है—तुम अतीत में पीछे जाने लगते हो। एक विचार दूसरे से जुड़ा होता है, और यह शृंखला अनंत तक चलती है। उसका कोई अंत नहीं है। यदि तुम उसके भीतर जाने लगे तो तुम एक अनंत यात्रा पर निकल जाओगे, और यह बिलकुल अपव्यय होगा। मन ऐसा कर सकता है। तो इसके प्रति सजग रहो।...

मन के द्वारा तुम मन के पार नहीं जा सकते, इसलिए व्यर्थ में अनावश्यक चेष्टा मत करो; वरना एक बात तुम्हें दूसरी में ले जाएगी और ऐसा आगे से आगे चलता रहेगा, और तुम बिलकुल भूल ही जाओगे कि तुम क्या करने का प्रयास कर रहे थे। नासाग्र गायब हो जाएगा, तृतीय नेत्र भूल जाएगा, और प्रकाश का प्रवाह तो तुमसे मीलों दूर चला जाएगा। तो ये दो बातें स्मरण रखने की हैं, ये दो पंख हैं। एक: जब अंतराल आ जाए, कोई विचार न चलता हो, तो ध्यान करो। जब कोई विचार आए तो बस इन तीन बातों को देखो: विचार कहां है, वह कहां से आया है और कहां जा रहा है। एक क्षण के लिए अंतराल को देखना छोड़ दो और विचार को देखो, उसे अलविदा करो। जब वह

चला जाए, तो फिर से ध्यान के अभ्यास पर वापस लौट आओ।

“जब विचारों की उड़ान आगे बढ़ती जाए, जो व्यक्ति को रुक कर विचारों का निरीक्षण करना चाहिए। इस प्रकार वह ध्यान भी करे और तब फिर से निरीक्षण शुरू करे।”

तो जब भी विचार आता है, तब निरीक्षण करो। जब भी विचार जाता है तब ध्यान करो।

“यह संबोधि को तीव्रता से लाने का दोहरा उपाय है। संबोधि का अर्थ है प्रकाश का वृत्ताकार प्रवाह। प्रवाह है निरीक्षण और प्रकाश है ध्यान।”

जब भी तुम ध्यान करोगे तो प्रकाश को भीतर प्रवेश करता पाओगे, और जब भी तुम एकाग्र होकर देखोगे तो प्रवाह को निर्मित करोगे, प्रवाह को संभव बनाओगे। दोनों की ही जरूरत है।

“प्रकाश ध्यान है। ध्यान के बिना निरीक्षण का अर्थ है प्रकाश के बिना प्रवाह।”

यही हुआ है। हठयोग के साथ यही दुर्घटना घटी है। वे निरीक्षण तो करते हैं, चित्त को एकाग्र तो करते हैं, लेकिन प्रकाश को वे भूल गए हैं। अतिथि के विषय में वे बिलकुल भूल गए हैं। वे बस घर को तैयार किए चले जाते हैं; वे घर को तैयार करने में इतने उलझ गए हैं कि वे उस प्रयोजन को ही भूल गए हैं जिसके लिए घर की तैयारी है। हठयोगी सतत अपने शरीर को तैयार करता है, शरीर को शुद्ध करता है, योगासन, प्राणायाम करता है,

और आजीवन करता ही चला जाता है। वह भूल ही गया है कि यह सब वह कर किसलिए रहा है। और प्रकाश बाहर खड़ा है लेकिन हठयोगी उसे भीतर नहीं आने दे रहे हैं क्योंकि प्रकाश तभी भीतर आ सकता है जब तुम पूर्णतः समर्पण की दशा में आ जाओ।

“ध्यान के बिना निरीक्षण का अर्थ है प्रकाश के बिना प्रवाह।”

तथाकथित योगियों के साथ यही

दुर्घटना घटी है। एक दूसरी दुर्घटना मनोविश्लेषकों और दार्शनिकों के साथ घटी है।

“निरीक्षण के बिना ध्यान का अर्थ है प्रवाह के बिना प्रकाश।”

वे प्रकाश पर विचार करते हैं, लेकिन उन्होंने प्रकाश की बाढ़ भीतर आ सके इसके लिए तैयारी नहीं की है; वे प्रकाश पर केवल विचार करते हैं। वे अतिथि के विषय में सोचते हैं, अतिथि के विषय में

हजारों बातों की कल्पना करते हैं, लेकिन उनका घर तैयार नहीं है। दोनों ही चूक जाते हैं।

“इसका खयाल रखो!”

दोनों में से किसी भी भ्रांति में मत गिरो। यदि तुम सचेत रह सको तो यह अत्यंत सरल-सी प्रक्रिया है और गहन रूप से रूपांतरणकारी है। जो व्यक्ति ठीक ढंग से समझ ले वह एक क्षण में ही एक भिन्न वास्तविकता में प्रवेश कर सकता है।⁶

मात्र बैठना

तुम बस बैठे हो, कुछ भी न करते और सब मौन है, सब शांत है,
आनंद ही आनंद है। तुम परमात्मा में प्रवेश कर गए, तुम सत्य में
प्रवेश कर गए।

झे न के साधक कहते हैं: “बस बैठ जाओ, कुछ भी मत करो।” संसार में सबसे कठिन काम है—कुछ न करते हुए बस बैठना। लेकिन एक बार तुम्हें उसका गुर आ जाए, यदि कुछ महीनों तक रोज तुम कुछ घंटे बिना कुछ किए बैठे रहो तो धीरे-धीरे कई बातें होंगी। तुम्हें नींद-सी आने लगेगी, तुम सपने देखोगे। कई विचार तुम्हारे मन में भीड़ लगा लेंगे, कई बातें होंगी। मन कहेगा, “तुम अपना समय

झा-झेन

क्यों व्यर्थ कर रहे हो? तुम थोड़ा धन ही कमा सकते थे। कम से कम तुम कोई फिल्म ही देखने चले जाते, अपना मनोरंजन कर लेते, या तुम आराम करते और गप-शप मार लेते। तुम टेलीविजन देख सकते थे या रेडियो सुन सकते थे, या कम से कम तुम अखबार ही पढ़ लेते जो तुमने अभी तक नहीं देखा है। अपना समय तुम व्यर्थ क्यों कर रहे हो?”

मन तुम्हें हजारों तर्क देगा, लेकिन तुम यदि मन से बिना प्रभावित हुए सुनते

रहो... वह हर तरह की चालाकियां करेगा; कल्पना करेगा, स्वप्न देखेगा, निद्रित होने लगेगा। मन तुम्हें शांत मुद्रा से बाहर घसीटने के लिए जो कर सकता है करेगा। लेकिन तुम यदि बैठे ही रहो, सतत प्रयास में लगे रहो, तो एक दिन सूरज उगता है।

एक दिन ऐसा होता है, तुम्हें नींद नहीं आती, मन तुमसे थक जाता है, तुमसे ऊब जाता है, यह विचार ही छोड़ देता है कि तुम्हें फंसाया जा सकता है, तुमसे सब नाते तोड़ लेता है। न कोई नींद बची, न

कल्पना, न कोई स्वप्न, न कोई विचार। तुम बस बैठे हुए हो, कुछ भी न करते... और सब मौन है, सब शांत है, आनंद ही आनंद है। तुम परमात्मा में प्रवेश कर गए, तुम सत्य में प्रवेश कर गए।²

तुम कहीं भी बैठ सकते हो, लेकिन जिस चीज की ओर भी तुम देखो वह बहुत उत्तेजक नहीं होनी चाहिए। जैसे, चीजें बहुत गतिशील नहीं होनी चाहिए। वे विक्षेप बन जाती हैं। तुम वृक्षों को देख सकते हो—उसमें कोई समस्या नहीं है

क्योंकि वृक्ष गति नहीं कर रहे, और दृश्य स्थिर बना रहता है। तुम आकाश को देख सकते हो, या किसी कोने में बैठकर दीवार की ओर देख सकते हो।

दूसरी बात है, किसी वस्तु विशेष की ओर मत देखो—बस शून्य में देखो, क्योंकि आंखें हैं तो कहीं तो देखना ही पड़ेगा, लेकिन तुम विशेष रूप से किसी चीज की ओर नहीं देख रहे हो। किसी चीज पर चित्त को केंद्रित या एकाग्र मत करो—बस मद्धिम-सी आकृति बने। इससे बड़ी शिथिलता आ जाती है।

और तीसरी बात है: अपनी श्वास को शिथिल कर लो। और करो मत, उसे होने दो। उसे स्वाभाविक होने दो और इससे और अधिक शिथिलता आएगी।

चौथी बात है: अपने शरीर को जितना हो सके स्थिर हो जाने दो। पहले कोई अच्छी शारीरिक मुद्रा खोज लो—तुम किसी तकिए पर, किसी गद्दे पर बैठ सकते हो या जैसा भी तुम्हें आरामदेह लगे, लेकिन एक बार तुम बैठ जाओ तो फिर स्थिर रहो, क्योंकि यदि शरीर न हिले तो मन स्वतः ही शांत हो जाता है। गतिमान शरीर में मन भी गति करता रहता है, क्योंकि शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं। वे एक ही हैं... यह एक ही ऊर्जा है।

शुरू में यह थोड़ा कठिन लगेगा लेकिन कुछ दिन बाद तुम्हें इसमें बहुत मजा आने लगेगा। तुम देखोगे, धीरे-धीरे, मन की पत-दर-पत छूटती जा रही है। एक क्षण आता है जब तुम मन के बिना होते हो। ३

निर्देश :

किसी खाली दीवार की ओर मुंह करके बैठ जाएं, और लगभग एक हाथ की दूरी रखें। आंखें आधी खुली हों जिससे नजर धीमे से दीवार पर ठहरी रहे। अपनी पीठ सीधी रखें और एक हाथ को दूसरे हाथ पर रख कर दोनों अंगूठों को आपस में इस तरह से जोड़ लें कि एक अंडाकृति बन जाए। तीस मिनट के लिए जितना हो सके स्थिर रहें।

बैठे समय एक चुनाव रहित जागरूकता को घटने दें और होश को विशेष रूप से कहीं न ले जाएं, बल्कि क्षण-प्रतिक्षण जितना हो सके खुले और सचेत रहें। ४

बुद्ध को एक दिन कोई विशेष प्रवचन देना था, और दूर-दूर से हजारों शिष्य इकट्ठे हुए थे।

जब बुद्ध आए तो वे एक फूल पकड़े हुए थे। समय गुजरा, लेकिन बुद्ध कुछ भी नहीं बोले। वे बस फूल की ओर देखते रहे। भीड़ बेचैन होने लगी, लेकिन महाकाश्यप जो अपने को रोक न सका, हंसने लगा।

झेन की हंसी

बुद्ध ने उसे बुलाया, फूल उसे दिया, और भीड़ से बोले: “मेरे पास सच्ची देशना की आंख है। जो भी शब्दों से दिया जा सकता है मैं तुम्हें दे चुका हूँ; लेकिन इस फूल के साथ, मैं महाकाश्यप को इस देशना की कुंजी देता हूँ।”

यह गाथा बड़ी महत्वपूर्ण गाथाओं में से है, क्योंकि इसी से जेन की परंपरा शुरू हुई। बुद्ध स्रोत थे, और महाकाश्यप पहला, मौलिक जेन सद्गुरु था। बुद्ध स्रोत थे, महाकाश्यप पहला गुरु था, और

यह गाथा स्रोत है जिससे पूरी परंपरा—पृथ्वी की सबसे सुंदर परंपरा, जेन की परंपरा—शुरू हुई।

इस गाथा को समझने का प्रयास करो। बुद्ध एक सुबह आए और सदा की तरह श्रोता लोग जमा थे। कई लोग उन्हें सुनने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

लेकिन एक बात असामान्य थी—वे अपने हाथ में एक फूल पकड़े हुए थे। पहले कभी वे अपने हाथ में कुछ लेकर नहीं आए थे। लोगों ने सोचा, किसी ने

उन्हें भेंट किया होगा।

बुद्ध आए, वृक्ष के नीचे बैठ गए। लोग प्रतीक्षा करते रहे—करते रहे और वे बोलें ही न। वे तो उनकी ओर देखे भी नहीं। वे तो फूल को ही देखते रहे। मिनट बीते, फिर घंटे, और लोग बहुत बेचैन हो गए।

कहते हैं कि महाकाश्यप स्वयं को रोक नहीं सका। वह जोर से हंसा। बुद्ध ने उसे बुलाया, फूल दिया और वहां जमा लोगों से बोले, “शब्दों से जो भी कहा जा सकता है, मैंने तुम्हें कह दिया है, और जो शब्दों

में नहीं कहा जा सकता, वह मैं महाकाश्यप को देता हूँ। शब्दों से कुंजी नहीं दी जा सकती। मैं कुंजी महाकाश्यप को देता हूँ।”

लेकिन ज्ञेन का यही उद्गम है। महाकाश्यप कुंजी को धारण करने वाला पहला व्यक्ति बना। फिर बोधिधर्म तक छब्बीस धारक भारत में हुए। बोधिधर्म कुंजी का छब्बीसवां धारक था, और उसने भारत भी में बहुत खोजा, लेकिन वह महाकाश्यप की हैसियत का कोई व्यक्ति न खोज सका, कोई व्यक्ति जो मौन को समझ सकता। ऐसे व्यक्ति की खोज में ही उसे भारत को छोड़ना पड़ा जिसे कुंजी दी जा सके; वरना तो कुंजी खो जाती।

बोधिधर्म के साथ ही बुद्ध-धर्म ने चीन में प्रवेश किया जब वे ऐसे व्यक्ति की तलाश में वहां पहुंचे जिसे कुंजी दी जा सके, जो मौन को समझ सके, जो मन से अभिभूत हुए बिना हृदय से हृदय की बात कर सके, जिसका सिर न हो।

शब्दों के पार का यह संप्रेषण हृदय और हृदय के बीच ही संभव है। तो नौ वर्षों तक बोधिधर्म ने चीन में तलाश की, और तब भी वह एक ही व्यक्ति को खोज सका।

एक चीनी व्यक्ति सत्ताईसवां गुरु बना। और अभी तक यह क्रम चल रहा है। कुंजी अभी भी है; कोई न कोई अभी भी उसे धारण किए है। नदी अभी सूखी नहीं है।

हम एक बुद्ध से भी चाहते हैं कि वे बोलें क्योंकि यही केवल हम समझते हैं। यह मूढ़ता की बात है। तुम्हें बुद्ध के साथ

मौन होना सीखना चाहिए, क्योंकि तभी वे तुममें प्रवेश कर सकते हैं। शब्दों से वे तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे सकते हैं, लेकिन कभी प्रवेश नहीं कर सकते; मौन से वे तुममें प्रवेश कर सकते हैं, और जब तक वे तुममें प्रवेश न कर जाएं, तुम्हें कुछ भी नहीं घटेगा। उनका प्रवेश तुम्हारे अस्तित्व में एक नया तत्व ले आएगा; हृदय में उनका प्रवेश तुम्हें एक नई धड़कन और एक नई गति दे देगा, जीवन का एक नया प्रसार दे देगा, लेकिन उनका प्रवेश ही।

महाकाश्यप लोगों की मूढ़ता पर हंसा। वे बेचैन हो रहे थे और सोच रहे थे: बुद्ध कब खड़े होंगे और इस मौन को समाप्त करेंगे ताकि हम घर जा सकें? महाकाश्यप हंसा।

हंसी महाकाश्यप के साथ शुरू हुई और ज्ञेन परंपरा में चलती चली आ रही है। कोई और परंपरा नहीं है जो हंस सके। ज्ञेन मठों में वे लोग हंसते रहे हैं, और हंसते ही रहे हैं।

महाकाश्यप हंसा, और यह हंसी अपने में कई आयाम लिए हुए थी। एक तो वह हंसा पूरी परिस्थिति की मूढ़ता पर, कि एक बुद्ध मौन हैं और कोई उसे समझ नहीं रहा, हर कोई अपेक्षा कर रहा है कि वे बोलें। अपने पूरे जीवन बुद्ध कहते रहे थे कि सत्य को कहा नहीं जा सकता, और फिर भी सब उनसे बोलने की अपेक्षा कर रहे थे।

दूसरा आयाम—वह बुद्ध पर भी हंसा, जो पूरी नाटकीय परिस्थिति उन्होंने पैदा कर दी थी उस पर हंसा—फूल हाथ में पकड़कर उसे देखते हुए वे बैठ गए थे और

सभी में इतनी बेचैनी, इतनी व्यग्रता पैदा कर रहे थे। बुद्ध के इस नाटकीय अंदाज पर वह हंसा, वह हंसा और हंसता ही गया।

तीसरा आयाम—वह स्वयं पर हंसा। अब तक वह समझ क्यों नहीं सका? सारी बात सीधी और सरल थी। और जिस दिन तुम समझते हो, तुम हंसोगे, क्योंकि समझने को कुछ है ही नहीं। कोई समस्या ही नहीं है सुलझाने को। सब कुछ सदा से ही सीधा-साफ रहा है। तुम उसे चूक कैसे सके?

बुद्ध मौन बैठे हैं, पक्षी वृक्षों में गीत गा रहे हैं, वृक्षों से बयार गुजरती है, सभी बेचैन हैं, और महाकाश्यप समझ गया। क्या समझा वह? वह समझ गया कि समझने को कुछ भी नहीं है, कहने को कुछ भी नहीं है, समझाने को कुछ भी नहीं है। सारी बात सीधी और स्पष्ट है। कुछ भी इसमें छिपा नहीं है। खोजने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जो है, वह अभी और यहां तुम्हारे भीतर है।

वह स्वयं पर भी हंसा, इस मौन को समझने के लिए अपने जन्मों-जन्मों के अर्थहीन प्रयास पर हंसा, इतने सोच-विचार पर हंसा।

बुद्ध ने उसे बुलाया, फूल दिया और बोले; “आज मैं तुम्हें कुंजी सौंपता हूँ।”

कुंजी क्या है? मौन और हंसी है कुंजी—भीतर मौन, बाहर हंसी। और जब हंसी मौन से उठती है तो इस संसार की नहीं होती, दिव्य होती है।

हंसी जब मौन से उठती है तो तुम किसी

और की कीमत पर नहीं हंस रहे। तुम तो इस पूरे जागतिक मजाक पर हंस रहे हो। और यह सच ही एक मजाक है। इसीलिए मैं तुम्हें चुटकुले सुनाता रहता हूँ, क्योंकि चुटकुलों में शास्त्रों से अधिक सार है।

यह एक मजाक है, क्योंकि तुम्हारे भीतर सब कुछ है, और तुम सब ओर खोज रहे हो। और क्या मजाक होगा? तुम एक राजा हो, और सड़क पर खड़े भिखारी जैसा अभिनय कर रहे हो। न केवल अभिनय कर रहे हो, न केवल दूसरों को धोखा दे रहे हो, बल्कि खुद को भी धोखा दे रहे हो कि तुम भिखारी हो।

तुम्हारे पास समस्त ज्ञान का स्रोत है और तुम प्रश्न पूछ रहे हो! तुम्हारे पास बोधपूर्ण सत्ता है जो जानती है और तुम सोचते हो कि तुम अज्ञानी हो; तुम्हारे भीतर अमृतधर्मा हैं और तुम मृत्यु व व्याधि से भयभीत हो। यह मजाक ही है, और यदि वह हंसा तो उसने अच्छा किया।

महाकाश्यप मौन रहा था, और अंतर्धारा चुपचाप बहती रही थी। फिर कुंजी दूसरों को दी जाती रही, और कुंजी अभी भी जीवित है, अभी भी द्वार खोलती है।

ये दो अंग हैं। आंतरिक मौन—इतना गहरा मौन कि तुम्हारे प्राणों में कोई तरंग भी न बचे; तुम हो, लेकिन कोई लहर नहीं है; तुम बस एक सरोवर हो जिसमें कोई

लहर नहीं, एक भी लहर नहीं उठती; पूरे प्राण शांत हैं, निश्चल हैं; भीतर, केंद्र पर मौन है—और परिधि पर उत्सव व हंसी। और मौन ही हंस सकता है क्योंकि मौन ही जागतिक मजाक को समझ सकता है।

मैं तुम्हें कहता हूँ, जिस मौन में उदासी हो वह सच्चा नहीं हो सकता। उसमें कुछ गलती हो गई। तुम मार्ग को चूक गए; तुम पटरी से उतर गए। केवल उत्सव ही यह प्रमाण दे सकता है कि वास्तविक मौन घटा है।

वास्तविक मौन और झूठे मौन में क्या भेद है? झूठा मौन सदा ही आरोपित होता है। वह प्रयास से उपलब्ध होता है। वह सहज नहीं होता, वह तुम्हें घटा नहीं। तुमने उसे घटाया है।

तुम मौन बैठे हो और भीतर तूफान मचा है। उसे तुम दबाते हो और फिर हंस नहीं सकते। तुम उदास हो जाओगे क्योंकि हंसी खतरनाक होगी—यदि तुम हंसे तो अपना मौन खो दोगे, क्योंकि हंसी में तुम दमन नहीं कर सकते। हंसना दमन के विपरीत है। यदि तुम दमन करना चाहो तो तुम्हें हंसना नहीं चाहिए; यदि तुम हंसे तो सब बाहर आ जाएगा। हंसी में, जो वास्तविक है वह बाहर आ जाएगा, और जो अवास्तविक है वह खो जाएगा।

यह कुंजी है—इसका अंतर्भाग मौन है, और कुंजी का बाह्य भाग है उत्सव, हंसी।

उत्सवपूर्ण और मौन हो जाओ। अपने चारों ओर अधिकाधिक संभावनाएं निर्मित करो—अंतस को मौन होने के लिए बाध्य मत करो, बस अपने चारों ओर अधिकाधिक संभावनाएं निर्मित करते चले जाओ ताकि अंतर्पुष्प उसमें खिल सके।

ध्यान तुम्हें मौन तक नहीं ले जाता। ध्यान केवल परिस्थिति पैदा करता है जिसमें मौन घटता है। और यह कसौटी होनी चाहिए—कि जब भी मौन घटता है, तुम्हारे जीवन में हंसी आ जाएगी। चारों ओर एक जीवंत उत्सव घटने लगेगा।

जब मौन बहुत ज्यादा हो जाता है तो हंसी बन जाता है। वह इतना भर जाता है कि सब दिशाओं में बहने लगता है।

वह हंसा। जरूर वह एक पागल हंसी रही होगी। और उस हंसी में कोई महाकाश्यप नहीं रहा। मौन हंस रहा था। मौन एक खिलावट पर पहुंच गया था।

तुम्हारा बुद्धत्व तभी पूर्ण होता है जब मौन एक उत्सव बन जाए। इसीलिए मेरा जोर है कि जब तुम ध्यान करो, उसके बाद तुम्हें उत्सव मनाना चाहिए। मौन होने के बाद तुम्हें उसका आनंद लेना चाहिए, तुम्हें अहोभाव प्रकट करना चाहिए। समग्र के प्रति एक गहन अहोभाव प्रकट करना चाहिए कि तुम्हें होने का अवसर मिला, कि तुम ध्यान कर सकते हो, कि तुम मौन हो सकते हो, कि तुम हंस सकते हो। ५

प्रेम में ऊपर उठना : ध्यान में एक साझेदारी

कुछ अत्यंत बुनियादी बातें समझने की हैं। पहली, पुरुष और स्त्री एक ओर तो एक-दूसरे के परिपूरक हैं, और दूसरी ओर विपरीत ध्रुव हैं।

उनका विपरीत होना ही उन्हें एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करता है। जितनी दूर वे होंगे, उतना ही उनमें गहन आकर्षण होगा; जितने वे एक-दूसरे से भिन्न होंगे, उतना ही आकर्षण और सौंदर्य होगा। लेकिन इसी में सारी समस्या भी है।

जब वे निकट आते हैं, तो निकटतर आना चाहते हैं, वे एक-दूसरे में घुल जाना चाहते हैं, एक हो जाना चाहते हैं, एक लयबद्ध समग्रता बन जाना चाहते हैं—लेकिन उनकी पूरा आकर्षण विपरीतता पर निर्भर करता है, और लयबद्धता विपरीतता के विलीन होने पर निर्भर करेगी।

जब तक कोई प्रेम संबंध बहुत जागरूक न हो तो बड़ा विषाद, बड़ी तकलीफ पैदा करेगा। सभी प्रेमी अड़चन में हैं। अड़चन व्यक्तिगत नहीं है; यह चीजों के स्वभाव में है। वे एक-दूसरे के प्रति आकर्षित न हुए होते... इसे वे प्रेम में गिरना कहते हैं—इसके लिए वे कोई कारण नहीं दे सकते कि उन्हें एक-दूसरे की ओर ऐसा प्रबल आकर्षण क्यों है। वे तो मौलिक कारणों के प्रति भी सचेत नहीं हैं; इसलिए एक अजीब बात होती है: सबसे सुखी प्रेमी वे होते हैं जो कभी नहीं मिलते।

एक बार वे मिल जाएं तो जिस विपरीतता ने आकर्षण पैदा किया था, वही संघर्ष बन जाती है। हर छोटी-छोटी बात पर उनके दृष्टिकोण भिन्न होते हैं, उनकी पहुंच भिन्न होती है। यद्यपि वे एक ही भाषा बोलते हैं फिर भी एक-दूसरे को समझ नहीं सकते।

पुरुष जिस ढंग से संसार को देखता है वह स्त्री से भिन्न है। जैसे, पुरुष दूर की बातों में उत्सुक होता है—मनुष्यता के भविष्य में, दूर के सितारों में, कि दूसरे ग्रहों पर जीवित प्राणी हैं या नहीं।

स्त्री इस पूरी निरर्थकता पर हंसती है। वह आस-पास के छोटे से घेरे में ही उत्सुक होती है—पड़ोसियों में, परिवार में, कि कौन अपनी पत्नी को धोखा दे रहा है, किसकी पत्नी शोफर के प्रेम में पड़ गई है। उसका रस बड़ा स्थानीय और अत्यंत मानवीय होता है। उसे पुनर्जन्म की चिंता नहीं है; न ही वह मृत्यु के बाद के जीवन में उत्सुक है। उसका रस व्यावहारिक चीजों में है। उसका वर्तमान में, अभी और यहां में रस है।

पुरुष कभी अभी और यहां नहीं होता। वह सदा कहीं और होता है। उसकी अजीब व्यस्तताएं होती हैं—पुनर्जन्म, मृत्यु के बाद का जीवन।

यदि दोनों साथी इस तथ्य के प्रति सचेत हों कि यह दो विपरीतताओं का मिलन है, और यह कि इसे कोई संघर्ष बनाने की जरूरत नहीं है, तो फिर यह बिल्कुल विपरीत दृष्टिकोण को समझने और आत्मसात करने का एक बड़ा अवसर बन

जाता है। फिर स्त्री और पुरुष का सह-जीवन एक सुंदर लय बन सकता है। वरना, वह एक सतत संघर्ष बना रहता है।

छुट्टियां भी होती हैं। कोई दिन में चौबीस घंटे तो नहीं लड़ता रह सकता, उसे थोड़ा आराम भी चाहिए—ताकि नई लड़ाई के लिए तैयार हो सकने को थोड़ा आराम मिले।

लेकिन यह सबसे आश्चर्यजनक घटना है कि स्त्री और पुरुष हजारों वर्षों से साथ रह रहे हैं और फिर भी अजनबी हैं। वे बच्चे पैदा किए चले जाते हैं फिर भी अजनबी बने रहते हैं। स्त्रीण दृष्टिकोण और पौरुष दृष्टिकोण एक-दूसरे से इतने विपरीत हैं कि जब तक सजग चेष्टा न की जाए, जब तक यह तुम्हारा ध्यान ही न बन जाए, तब तक शांत जीवन की कोई आशा नहीं है।

मेरी गहन चेष्टाओं में से यह एक है: कि कैसे प्रेम और ध्यान को एक-दूसरे में इतना समाहित किया जाए कि हर प्रेम-संबंध स्वतः ध्यान में एक साझेदारी बन जाए—और हर ध्यान तुम्हें इतना सजग कर दे कि तुम्हें प्रेम में गिरने की जरूरत न रहे, तुम प्रेम में ऊपर उठ सको। तुम सजग रूप से, सबिवेक कोई मित्र खोज ले सकते हो।

तुम मेरे साथ एक गहन लयबद्धता का, शांति के क्षणों का, प्रेम और मौन का अनुभव करते हो, और स्वभावतः तुममें यह प्रश्न उठा है कि जो मेरे साथ संभव है, वह उस व्यक्ति के साथ क्यों संभव नहीं है जिसे तुम प्रेम करते हो। यह भेद

समझने जैसा है।

तुम मुझे प्रेम करते हो, लेकिन मुझे तुम उसी ढंग से प्रेम नहीं करते जैसे अपने पति को, अपनी पत्नी को करते हो। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम शारीरिक नहीं है; मेरे साथ तुम्हारा प्रेम बिल्कुल भिन्न घटना है—यह आत्माओं का प्रेम है, शरीर का नहीं। और दूसरे, मुझसे तुम जुड़े हो—अपनी सत्य की खोज के कारण।

मेरा तुम्हारा संबंध ध्यान का है। मेरे और तुम्हारे बीच ध्यान ही एक मात्र सेतु है। जैसे-जैसे तुम्हारा ध्यान गहराएगा वैसे-वैसे तुम्हारा प्रेम भी गहराएगा, और जब तुम्हारा ध्यान खिलेगा तो तुम्हारा प्रेम भी खिलेगा। लेकिन यह एक बिल्कुल भिन्न तल पर हो रहा है।

अपने पति के साथ तुम ध्यान से नहीं जुड़ी हो। तुम लोग कभी एक घंटा भी साथ-साथ नहीं बैठते कि एक-दूसरे की चेतना को महसूस करो। या तो तुम लड़ रहे हो, या संभोग कर रहे हो, लेकिन दोनों ही बातों में तुम शरीर से, शारीरिक हिस्से से, जैविकी से, हार्मोन्स से संबंधित हो। तुम एक-दूसरे के अंतर्तम बिंदु से संबंधित नहीं हो। तुम्हारी आत्माएं अलग-अलग बनी रहती हैं। मंदिरों में और चर्चों में, और न्यायालयों में तुम्हारे शरीरों का ही विवाह होता है। तुम्हारी आत्माएं मीलों दूर रहती हैं। यदि तुम चाहती हो कि अपने पुरुष के साथ तुम्हारा संबंध लयबद्ध हो तो तुम्हें और अधिक ध्यानपूर्ण होना सीखना पड़ेगा। अकेला प्रेम ही पर्याप्त नहीं है।

अकेला प्रेम तो अंधा है; ध्यान उसे आंखें देता है। ध्यान उसे समझ देता है। और एक बार तुम्हारा प्रेम ध्यान और प्रेम दोनों ही बन जाए, तो तुम सहयात्री बन जाते हो। फिर यह पति और पत्नी के बीच का साधारण संबंध नहीं रहता। फिर यह प्रेम जीवन के रहस्यों की खोज पर जाते मार्ग पर एक मैत्रीभाव बन जाता है।

अकेले पुरुष को या अकेली स्त्री को यात्रा बड़ी थकाने वाली और बड़ी लंबी लगेगी, जैसा कि अतीत में होता था। इस सतत संघर्ष को देखते हुए, सभी धर्मों ने निर्णय लिया कि जो सत्य की खोज में निकलना चाहते हैं उन्हें दूसरे का त्याग करना चाहिए—भिक्षुओं को ब्रह्मचारी होना चाहिए, भिक्षुणियों को ब्रह्मचारिणी होना चाहिए। लेकिन पांच हजार वर्षों के इतिहास में कितने भिक्षु और कितनी भिक्षुणियां आत्मज्ञान को उपलब्ध हुए? तुम मुझे दस उंगलियों पर गिनने लायक नाम भी नहीं बता सकते। और सभी धर्मों के लाखों भिक्षु हुए—बौद्ध, हिंदू ईसाई, मुसलमान। क्या हुआ?

मार्ग इतना लंबा नहीं है। लक्ष्य इतनी दूर नहीं है। लेकिन तुम अपने पड़ोसी के घर भी जाना चाहो तो तुम्हें अपने दोनों पैरों की जरूरत होगी। बस एक पैर पर उछल-उछल कर तुम कितनी दूर तक जा सकते हो?

मैं एक बिल्कुल नई दृष्टि दे रहा हूँ, कि गहन मैत्री में, एक प्रेमपूर्ण और ध्यानपूर्ण संबंध में, जीवंत समग्रताओं की भांति स्त्री और पुरुष जिस क्षण भी चाहें,

साथ-साथ लक्ष्य में प्रवेश कर सकते हैं। क्योंकि लक्ष्य तुमसे बाहर नहीं है; वह तो झंझावात का केंद्र है, वह तो तुम्हारी अंतर्सत्ता का अंतर्तम केंद्र है। लेकिन तुम उसे तभी खोज सकते हो जब तुम समग्र होओ, और दूसरे के बिना तुम समग्र नहीं हो सकते। स्त्री और पुरुष एक ही समग्रता के दो हिस्से हैं।

तो लड़ने में समय व्यर्थ करने की अपेक्षा एक-दूसरे को समझने का प्रयास करो। अपने को दूसरे के स्थान पर रखकर समझने की चेष्टा करो। इस तरह से देखने की चेष्टा करो जैसे एक पुरुष देखता है, जैसे स्त्री देखती है। और चार आंखें दो आंखों से सदा बेहतर होती हैं—तुम्हें पूरा दृश्य देखने को मिलता है। तुम्हें चारों दिशाएं उपलब्ध हो जाती हैं।

लेकिन एक बात स्मरण रखने की है: कि ध्यान के बिना प्रेम असफल होगा ही; उसके सफल होने की कोई संभावना नहीं है। तुम पाखंड कर सकते हो और दूसरों को धोखा दे सकते हो, लेकिन स्वयं को धोखा नहीं दे सकते। गहरे में तुम जानते हो कि प्रेम ने जो भी वायदे किए थे वे पूरे नहीं हुए।

ध्यान के साथ ही प्रेम नए रंग, नया संगीत, नए गीत, नए नृत्य लेना शुरू करता है—क्योंकि ध्यान तुम्हें विपरीत ध्रुवों को समझने की अंतर्दृष्टि देता है, और उस समझ में ही संघर्ष समाप्त हो जाता है।

संसार में सारा संघर्ष ही गलतफहमी के कारण होता है। तुम कुछ कहते हो, तुम्हारी पत्नी कुछ और समझती है। तुम्हारी पत्नी

कुछ कहती है, तुम कुछ और समझते हो। मैंने ऐसे दंपति देखे हैं जो तीस-चालीस वर्ष तक साथ रहे हैं; फिर भी वे उतने ही अपरिपक्व नजर आते हैं जितने अपने पहले दिन लगते थे। अभी भी वही शिकायत है: "मैं जो कह रहा हूँ यह समझती ही नहीं।" चालीस साल साथ रह कर भी तुम कोई उपाय नहीं खोज पाए कि तुम्हारी पत्नी वही समझ सके जो तुम कह रहे हो, ताकि तुम बिल्कुल वही समझ सको जो वह कह रही है।

मैं सोचता हूँ कि ध्यान के सिवाय कोई और संभावना नहीं है कि यह घट सके, क्योंकि ध्यान तुम्हें मौन की, होश की, श्रवण की गुणवत्ता देता है, स्वयं को दूसरे की परिस्थिति में रखने की क्षमता देता है।

मेरे साथ यह संभव है: मेरा तुम्हारे जीवन की छोटी-छोटी बातों से कुछ लेना-देना नहीं है। यहां तुम मूलतः सुनने और समझने के लिए हो। यहां तुम आध्यात्मिक रूप से विकसित होने के लिए हो। स्वभावतः संघर्ष का कोई प्रश्न नहीं है, और लयबद्धता बिना किसी प्रयास के उठती है।

तुम मुझे समग्रता से प्रेम कर सकते हो, क्योंकि मेरे साथ तुम्हारा संबंध ध्यान का है। किसी और पुरुष के साथ या किसी और स्त्री के साथ, यदि तुम लयबद्धता में जीना चाहो तो तुम्हें वही वातावरण और वही जलवायु पैदा करनी होगी जो तुम यहां ले आए हो।

चीजें असंभव नहीं हैं, लेकिन हमने ठीक-ठीक औषधि का इस्तेमाल ही नहीं

करके देखा। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहूंगा कि 'मेडिसिन' शब्द उसी मूल से आता है जिससे 'मेडिटेशन'। औषधि तुम्हारे शरीर का उपचार करती है; ध्यान तुम्हारी आत्मा का उपचार करता है। औषधि तुम्हारे भौतिक अंश को आरोग्य देती है; ध्यान तुम्हारे आत्मिक अंश को आरोग्य देता है।

लोग इकट्ठे जी रहे हैं और उनकी आत्माएं घावों से भरी हुई हैं; इसलिए छोटी-छोटी चीजें भी उन्हें बहुत चोट पहुंचा जाती हैं। लोग बिना किसी समझ के जी रहे हैं। इसलिए, वे जो भी करेंगे उसका अंत विपदा के रूप में ही होगा। यदि तुम किसी पुरुष से प्रेम करो तो ध्यान श्रेष्ठतम भेंट होगी जो तुम उसे दे सको। यदि तुम किसी स्त्री से प्रेम करते हो तो संसार का सबसे बड़ा हीरा, कोहेनूर, भी कुछ नहीं है; ध्यान कहीं ज्यादा मूल्यवान भेंट

होगी—और ध्यान तुम्हारे जीवन को निपट आनंद बना देगा।

संभाव्य रूप से हम आनंदित होने में सक्षम हैं, लेकिन कैसे होना—इसका हमें बोध नहीं है। अकेले हम अधिक से अधिक दुखी ही होते हैं। एक-साथ तो नरक ही हो जाता है।

यहां तक कि ज्यों पाल सार्त्र जैसे बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति को भी कहना पड़ता है कि दूसरा व्यक्ति नरक है, कि अकेला होना बेहतर है कि दूसरे का साथ तुम निम्ना नहीं सकते। वह इतना निराश हो गया कि उसने कहा कि दूसरे का साथ निम्नाना असंभव ही है, दूसरा व्यक्ति नरक है। साधारण रूप से वह सही है। ध्यान के साथ दूसरा तुम्हारा स्वर्ग बन जाता है। लेकिन ज्यों पाल सार्त्र को ध्यान का कोई पता नहीं था।

पाश्चात्य मनुष्य का यही दुख है। पश्चिम का मनुष्य जीवन की खिलावट को चूक रहा है क्योंकि वह ध्यान के विषय में कुछ भी नहीं जानता। और पूरब का मनुष्य चूक रहा है क्योंकि वह प्रेम के विषय में कुछ नहीं जानता।

और मेरे लिए तो जैसे पुरुष और स्त्री एक-दूसरे के परिपूरक हैं, वैसे ही प्रेम और ध्यान भी परिपूरक हैं। ध्यान पुरुष है; प्रेम स्त्री है। ध्यान और प्रेम के मिलन में पुरुष और स्त्री का मिलन है। और उस मिलन में हम अतिमानव का निर्माण कर लेते हैं—जो न पुरुष है, न स्त्री। जब तक हम पृथ्वी पर अतिमानव का निर्माण नहीं कर लेते, तब तक कोई बहुत आशा नहीं है। लेकिन मुझे लगता है कि मेरे संन्यासी वह कर पाने में सक्षम हैं जो देखने में असंभव लगता है।

शि व ने कहा: अनुभव करो
कि सृजन के सूक्ष्म गुण
तुम्हारे स्तनों को परिव्याप्त कर रहे हैं
और कोमल समानरूप धारण कर रहे हैं।

स्तनों पर चित्त को एकाग्र करो, उनके साथ एक हो जाओ, बाकी पूरे शरीर को भूल जाओ। अपनी पूरी चेतना को स्तनों पर ले जाओ और कई घटनाएं तुम्हारे साथ घटेंगी। यदि तुम ऐसा कर सको, यदि पूरी तरह से स्तनों पर अपने होश को केंद्रित

प्रेम का वर्तुल

कर सको तो सारा शरीर भारमुक्त हो जाएगा और एक गहन माधुर्य तुम्हें घेर लेगा। माधुर्य का एक गहन भाव तुम्हारे बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे, सब ओर स्पंदित होगा।

जो भी विधियां विकसित की गई हैं, वे कमोबेश पुरुष द्वारा ही विकसित की गई हैं। इसलिए उनमें ऐसे ही केंद्रों का उल्लेख है जो पुरुष के लिए सरल होते हैं। जहां तक मैं जानता हूं केवल शिव ने ही कुछ ऐसी विधियां दी हैं जो आधारभूत रूप

से स्त्रियों के लिए हैं।

इस विधि को कोई पुरुष नहीं कर सकता। वास्तव में यदि कोई पुरुष अपने स्तनों पर चित्त को एकाग्र करने लगे तो वह बेचैन हो जाएगा। करके देखो। पांच मिनट में ही तुम्हारा पसीना बहने लगेगा, तुम बेचैन हो जाओगे, क्योंकि पुरुष के स्तन ऋणात्मक हैं, वे तुम्हें नकारात्मकता ही देंगे। तुम्हें बेचैनी और दुविधा होगी, जैसे शरीर में कुछ गड़बड़, कुछ अस्वस्थता, कुछ बीमारी हो गई हो।

लेकिन स्त्री के स्तन धनात्मक हैं। यदि स्त्रियां स्तनों के पास चित्त को एकाग्र करें, तो वे अत्यंत आह्लादित, अत्यंत आनंदित अनुभव करेंगी; एक माधुर्य उनके पूरे प्राणों पर परिव्याप्त हो जाएगा और शरीर गुरुत्वाकर्षण खो देगा। वे हलकी महसूस करेंगी, जैसे कि उड़ सकती हों। और इस एकाग्रता के साथ बहुत से परिवर्तन होंगे: तुम अधिक मातृत्वमय हो जाओगी। भले ही तुम मां न होओ, लेकिन तुम अधिक मातृत्वमय हो जाओगी। हर किसी से

तुम्हारा संबंध ममता का हो जाएगा—अधिक करुणा घटेगी, अधिक प्रेम घटित होगा। लेकिन स्तनों के निकट इस एकाग्रता को बहुत ही शिथिलतापूर्वक साधना चाहिए, तनाव से भरकर नहीं। उसके लिए यदि तुम तनाव से भर जाओ तो तुम्हारे और स्तनों के बीच में एक विभाजन हो जाएगा। शिथिल होकर स्तनों में विलीन हो जाओ और अनुभव करो कि तुम कहीं भी नहीं हो, केवल स्तन ही है।

यदि पुरुष को यही प्रयोग करना हो तो उसे काम-केंद्र के साथ करना होगा, स्तनों के साथ नहीं। इसीलिए हर कुंडलिनी योग में पहले चक्र का महत्व है। पुरुष को जननेंद्रिय की जड़ पर चित्त को एकाग्र करना पड़ेगा—उसकी सृजनात्मकता वहां है, वहां वह धनात्मक है। और इसे सदा स्मरण रखना: कभी भी किसी ऋणात्मक बिंदु पर चित्त को एकाग्र मत करना क्योंकि उसके पीछे हर नकारात्मक चीज चली आएगी। धनात्मक के पीछे ही विधायक चीज चली आएगी।

जब पुरुष और स्त्री का मिलन होता है, तो ये जो दो ध्रुव हैं—पुरुष का ऊर्ध्वभाग ऋणात्मक होता है और निम्न भाग धनात्मक होता है; स्त्री में ऋणात्मक भाग नीचे होता है और ऊर्ध्वभाग धनात्मक होता है—ऋणात्मक और धनात्मक, ये दो ध्रुव मिलते हैं और एक वर्तुल निर्मित हो जाता है। वह वर्तुल आनंदपूर्ण है, लेकिन सामान्यतः वह नहीं बनता। सामान्यतः काम-कृत्य में वर्तुल नहीं बनता—इसीलिए सेक्स से तुम इतने

आकर्षित भी होते हो, और विकर्षित भी। उसके लिए तुम इतनी इच्छा करते हो, इतनी जरूरत तुम्हें महसूस होती है, इतनी तुम उसकी मांग करते हो, लेकिन जब वह तुम्हें दे दिया जाता है, जब वह उपलब्ध होता है, तो तुम निराश हो जाते हो—कुछ भी होता नहीं। यह तभी संभव है जब दोनों शरीर अत्यंत शिथिल हों, बिना किसी भय और बिना किसी प्रतिरोध के एक-दूसरे के प्रति खुले हों; इतना समग्र स्वीकार हो कि दोनों विद्युत आपस में मिलकर एक वर्तुल बन सकें।

फिर एक अद्भुत घटना घटती है...तंत्र ने इसका उल्लेख किया है, और तुमने शायद इस घटना के विषय में सुना भी न हो—यह सबसे अद्भुत घटना है—जब दो प्रेमी वास्तव में मिलते हैं और एक वर्तुल बनता है, तो एक त्वरित घटना घटती है।

एक क्षण के लिए प्रेमी प्रेमिका बन जाता है और प्रेमिका प्रेमी बन जाती है, और अगले क्षण, प्रेमी फिर से प्रेमी बन जाता है और प्रेमिका फिर से प्रेमिका बन जाती है। पुरुष एक क्षण के लिए स्त्री बन जाता है, और तब स्त्री एक क्षण के लिए पुरुष बन जाती है—क्योंकि वर्तुल घूम रहा है, ऊर्जा गति कर रही है और एक वर्तुल बन गई है।

तो ऐसा होगा कि कुछ मिनट के लिए पुरुष सक्रिय होगा और फिर वह शिथिल हो जाएगा और स्त्री सक्रिय हो जाएगी। इसका अर्थ हुआ कि अब पुरुष ऊर्जा स्त्री के शरीर में प्रवेश कर गई और वह सक्रिय

हो जाएगी, और पुरुष निष्क्रिय हो जाएगा। और यह चलता रहेगा। साधारणतः तुम पुरुष होते हो या स्त्री होते हो। गहन प्रेम में, गहन संभोग में, ऐसा होगा कि कुछ क्षण के लिए तुम स्त्री बन जाओगे, और स्त्री पुरुष बन जाएगी। और यह अनुभूति होगी, सघन अनुभूति होगी, और इसका बोध होगा कि निष्क्रियता परिवर्तन लाती है।

जीवन में एक लय है; हर चीज में लय है। तुम एक श्वास लेते हो, श्वास भीतर जाती है—फिर कुछ सैकेंड के लिए वह रुक जाती है, कोई गति नहीं होती। तब फिर वह चलती है, बाहर जाती है—और फिर रुकती है, एक अंतराल आता है, कोई गति नहीं होती, उसके बाद फिर गति होती है। गति, अ-गति, गति। तुम्हारा हृदय धड़क रहा है—एक धड़कन, अंतराल; दूसरी धड़कन, अंतराल। धड़कन का अर्थ है—सक्रियता; अंतराल का अर्थ है—निष्क्रियता। धड़कन का अर्थ है—पुरुष, धड़कन न होने का अर्थ है स्त्री।

जीवन लय है। जब स्त्री और पुरुष मिलते हैं तो एक वर्तुल बन जाता है: दोनों के लिए ही बीच में अंतराल आएंगे। तुम एक स्त्री हो और अचानक एक अंतराल आएगा, तुम स्त्री नहीं रहोगी, पुरुष बन जाओगी। तुम पुरुष और फिर स्त्री और फिर पुरुष बनते रहोगे। और जब ये अंतराल महसूस हों तो तुम अनुभव कर सकते हो कि तुमने एक वर्तुल उपलब्ध कर लिया।²

शि व ने कहा: जब ऐसे
आलिंगन में तुम्हारी इंद्रियां
पत्तों की तरह कंपने लगें तो इस कंपन में
प्रवेश करो।

“जब ऐसे आलिंगन में”... अपनी
प्रेमिका या अपने प्रेमी के साथ ऐसे प्रगाढ़
मिलन में... “तुम्हारी इंद्रियां पत्तों की तरह
कंपने लगें तो इस कंपन में प्रवेश करो।”

हम तो भयभीत हो गए हैं: संभोग करते
समय भी तुम अपने शरीरों को बहुत गति

संभोग में कंपना

नहीं करने देते, क्योंकि तुम्हारे शरीरों को
यदि बहुत गतिशील होने दिया जाए तो
काम-कृत्य तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल
जाएगा। जब वह काम-केंद्र तक ही
सीमित हो तो तुम उसे नियंत्रण कर सकते
हो। मन नियंत्रक बना रह सकता है। जब
वह पूरे शरीर पर फैल जाता है, तब
तुम उसे नियंत्रित नहीं कर सकते। शायद
तुम कंपने लगो, शायद तुम चीखने लगो,
और एक बार शरीर नियंत्रण अपने हाथ
में ले ले तो फिर तुम शरीर को नियंत्रित

नहीं कर सकोगे।

हम गतियों का दमन कर लेते हैं।
विशेषकर स्त्रियों के लिए सारे संसार भर
में हमने सारी गति, सारे कंपन का निषेध
किया है। वे लाश की तरह पड़ी रहती हैं।
तुम उनके साथ कुछ कर रहे हो, वे तुम्हारे
साथ कुछ भी नहीं कर रहीं। वे तो बस
निष्क्रिय साझेदार हैं। ऐसा क्यों हो रहा है?
संसार भर में पुरुष स्त्री को इस तरह क्यों
दबाता है? कारण भय है—क्योंकि एक
बार स्त्री का शरीर आविष्ट हो जाए तो

अकेले एक पुरुष के लिए उसे संतुष्ट कर
पाना बहुत कठिन है क्योंकि स्त्री एक
शृंखला में अनेक बार यौन-सुख के
शिखर को उपलब्ध हो सकती है। पुरुष
ऐसा नहीं कर सकता। पुरुष एक बार ही
यौन-सुख के शिखर को छू सकता है, स्त्री
अनेक बार यह शिखर छू सकती है।

स्त्रियों के ऐसे अनुभव के कई विवरण
मिले हैं। कोई भी स्त्री एक शृंखला में
तीन-तीन बार शिखर-अनुभव को प्राप्त
हो सकती है, लेकिन पुरुष को यह अनुभव

एक ही बार प्राप्त हो सकता है। और पुरुष के संभोग के शिखर-अनुभव पर पहुंचने से स्त्री और-और शिखर-अनुभव के लिए उत्तेजित होती है, तैयार होती है। तब बात कठिन हो जाती है। फिर कैसे इसे संभाला जाए?

कंपो! तरंगायित होओ! अपने शरीर के अणु-अणु को नाचने दो, और यह नृत्य दोनों के लिए हो। प्रेमिका भी नाच रही हो, हर अणु तरंगायित हो रहा हो। तभी तुम दोनों का मिलन हो सकता है, और तब वह मिलन बौद्धिक नहीं होगा। वह तुम्हारी जैविक ऊर्जाओं का मिलन होगा।

कंपना बिलकुल अद्भुत है क्योंकि जब अपने संभोग में तुम कंपते हो तो ऊर्जा पूरे शरीर में बहने लगती है, ऊर्जा पूरे शरीर में तरंगायित होती है। तब शरीर की हर कोशिका उसमें भाग लेती है। हर कोशिका जीवित हो जाती है क्योंकि हर कोशिका काम-कोशिका है।

जब तुम पैदा हुए थे, तो दो यौन कोशिकाओं का मिलन हुआ और तुम्हारा होना घटित हुआ, तुम्हारे शरीर का निर्माण हुआ। वे दो काम-कोशिकाएं तुम्हारे शरीर में सब ओर हैं। वे प्रतिगुणित होती गईं और प्रतिगुणित होती गईं, लेकिन तुम्हारी

बुनियादी इकाई यौन-कोशिका ही रहती है। जब तुम पूरे शरीर में कंपते हो तो यह तुम्हारा और तुम्हारी प्रेमिका का ही मिलन नहीं रह जाता। तुम्हारे भीतर भी हर कोशिका अपनी विपरीत कोशिका से मिल रही है। कंपन से इसका पता चलता है। यह कंपन पाशविक लगेगा, लेकिन मनुष्य एक पशु ही तो है, और इसमें कोई गलत बात नहीं है।

इस कंपन में प्रवेश करो, और कंपते समय अलग मत रहो। दर्शक मत बने रहो, क्योंकि मन दर्शक है। अलग मत खड़े रहो! कंपन ही हो जाओ, कंपन ही बन जाओ। सब भूल जाओ और कंपन ही बन जाओ। ऐसा नहीं कि तुम्हारा शरीर कंप रहा है: तुम कंप रहे हो, तुम्हारे पूरे प्राण कंप रहे हैं। तुम कंपन मात्र ही बन जाओ। फिर दो शरीर, दो मन नहीं रहते। शुरू-शुरू में दो कंपती हुई ऊर्जाएं होती हैं, लेकिन अंत में बस एक वर्तुल बचता है—दो नहीं।

इस वर्तुल में क्या होगा? एक: तुम एक अस्तित्वगत शक्ति के हिस्से हो जाओगे—सामाजिक मन के नहीं वरन अस्तित्वगत शक्ति के। तुम पूरे ब्रह्मांड के हिस्से हो जाओगे। उस कंपन में तुम पूरे

ब्रह्मांड के हिस्से हो जाओगे। वह क्षण विराट सृजन का है। ठोस शरीरों की भांति तुम विलीन हो गए। और तुम तरल हो गए—एक-दूसरे में बहने लगे। मन खो गया, भेद खो गया। तुम एकरूपता को पा गए।

यह अद्वैत है। और यदि तुम इस अद्वैत को अनुभव न कर पाओ तो अद्वैत के सभी दर्शनशास्त्र व्यर्थ हैं। वे शब्द मात्र हैं। जब तुम अद्वैत के इस अस्तित्वगत क्षण को जान जाओ, तभी उपनिषदों को समझ सकते हो। तभी तुम ऋषियों को समझ सकते हो—कि जब वे ब्रह्मांडीय अद्वैत की, पूर्णता की बात करते हैं तो क्या कह रहे हैं। फिर तुम जगत से भिन्न नहीं होते, विजातीय नहीं होते। फिर अस्तित्व तुम्हारा घर बन जाता है। और जब यह भाव पैदा हो जाए कि “अब अस्तित्व मेरा घर है,” फिर सब चिंताएं खो जाती हैं। फिर कोई दुख, कोई संघर्ष, कोई द्वंद्व नहीं रहता। इसी को लाओत्सू ताओ कहते हैं, शंकर अद्वैत कहते हैं। इसके लिए तुम अपना शब्द चुन ले सकते हो, लेकिन गहन आलिंगन के द्वारा इसे अनुभव करना सरल है। जीवंत होओ, कंपो, और कंपन मात्र ही बन जाओ।³

शि व ने कहा: मिलन का स्मरण करने से भी, आलिंगन के बिना ही रूपांतरण होता है।

एक बार तुम पिछली दो विधियों को जान जाओ तो साथी की भी जरूरत नहीं है। तुम यौन-कृत्य का स्मरण करने भर से ही उसमें प्रवेश कर सकते हो। लेकिन पहले तुम्हें अनुभूति होनी चाहिए। तुम्हें अनुभूति हो जाए तो साथी के बिना भी तुम

प्रेम का आत्म-वर्तुल

कृत्य में प्रवेश कर सकते हो। यह थोड़ा कठिन है, लेकिन यह घटित होता है। और जब तक ऐसा न हो जाए, तुम निर्भर ही रहते हो: एक निर्भरता निर्मित हो जाती है। ऐसा कई कारणों से होता है।

यदि तुम्हें अनुभूति हो गई हो, यदि तुमने उस क्षण को जान लिया हो जब तुम नहीं थे वरन एक तरंगाघित ऊर्जा ही थी—तुम एक हो गए थे, और साथी के साथ एक वर्तुल बन गया था—उस क्षण में साथी था ही नहीं। उस क्षण में केवल

तुम होते हो, और तुम्हारे साथी के लिए तुम नहीं होते: केवल वही होता है या होती है। वह अद्वैत तुम्हारे भीतर केंद्रित हो गया; साथी अब नहीं बचा। और स्त्रियों के लिए इसे अनुभव करना सरल है क्योंकि वे सदा आंखें बंद करके ही संभोग करती हैं।

इस विधि को करते हुए, अच्छा हो यदि तुम अपनी आंखें बंद कर लो। तब वर्तुल का एक अंतर्भाव ही होता है, अद्वैत का एक अंतर्भाव ही होता है। फिर बस उसका

स्मरण करो। अपनी आंखें बंद कर लो; लेट जाओ जैसे कि तुम अपने प्रेमी या प्रेमिका के साथ हो। बस स्मरण करो और अनुभव करने लगो। तुम्हारा शरीर कंपने और तरंगाघित होने लगेगा। इसे होने दो! बिल्कुल भूल जाओ कि दूसरा व्यक्ति साथ नहीं है। ऐसे गति करो जैसे कि दूसरा मौजूद हो। बस शुरू में ही यह 'जैसे कि' होता है। एक बार तुम जान जाओ तो यह 'जैसे कि' नहीं रहता। फिर दूसरा मौजूद होता है।

ऐसे गति करो, जैसे कि तुम सच ही संभोग कृत्य में उतर रहे हो। वह सब कुछ करो जो तुमने अपने साथी के साथ किया होता। चीखो, हिलो, कंपो: जल्दी ही ऊर्जा का वर्तुल बन जाएगा, और यह वर्तुल चमत्कारिक है। जल्दी ही तुम्हें लगेगा कि वर्तुल बन गया, लेकिन अब यह वर्तुल किसी पुरुष या स्त्री के साथ नहीं बना। यदि तुम पुरुष हो तो पूरा जगत स्त्री बन जाएगा; यदि तुम स्त्री हो तो पूरा जगत पुरुष बन जाएगा। अब तुम स्वयं अस्तित्व के साथ एक गहन मिलन में हो, और दूसरा, जो द्वार है, अब मौजूद नहीं है।

दूसरा बस एक द्वार है। किसी स्त्री से संभोग करते हुए, वास्तव में तुम अस्तित्व से ही संभोग कर रहे हो। स्त्री बस एक द्वार है, पुरुष बस एक द्वार है। दूसरा व्यक्ति समग्र के लिए एक द्वार ही है, लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें कभी इसका बोध ही नहीं होता। यदि तुम मिलन में बने रहो, घंटों तक गहन आलिंगन में आबद्ध रहो, तो तुम दूसरे को भूल जाओगे और वह बस समग्र का ही विस्तार बन जाएगा। एक बार इस विधि का पता चल जाए तो तुम अकेले भी इसका उपयोग कर सकते हो, और अकेले इसका उपयोग कर सको तो यह तुम्हें एक नई स्वतंत्रता दे देती है—दूसरे से स्वतंत्रता।

वास्तव में, ऐसा होता है कि पूरा

अस्तित्व ही तुम्हारी प्रेमिका, तुम्हारा प्रेमी बन जाता है—और तब इस विधि का उपयोग लगातार किया जा सकता है, और व्यक्ति अस्तित्व के साथ सतत मिलन में रह सकता है। और फिर तुम इस प्रयोग को दूसरे आयामों में भी कर सकते हो। सुबह टहलते हुए तुम इसे कर सकते हो। फिर तुम्हारा हवा से, और उगते हुए सूरज से, और सितारों से, और वृक्षों से मिलन होता है। रात सितारों को एक टुकड़ा देखते हुए तुम यह प्रयोग कर सकते हो। चांद की ओर देखते हुए तुम यह प्रयोग कर सकते हो। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे यह होता है तो तुम पूरे अस्तित्व के साथ संभोग में उतर सकते हो।

लेकिन मनुष्यों के साथ शुरू करना अच्छा है क्योंकि वे तुम्हारे निकटतम हैं—ब्रह्मांड के निकटतम अंश हैं। लेकिन वे परिहार्य हैं। तुम एक छलांग ले सकते हो और द्वार को बिलकुल भूल सकते हो। “मिलन का स्मरण करने से भी रूपांतरण होता है।” और तुम रूपांतरित हो जाओगे: तुम नए हो जाओगे।

तंत्र कहता है: इसमें समग्रता से प्रवेश करो। अपने को, अपनी सभ्यता को, अपने धर्म को, अपनी संस्कृति को, अपनी धारणाओं को बस भूल जाओ; सब कुछ भूल जाओ। बस संभोग में उतर जाओ: उसमें समग्रता से चले जाओ; कुछ भी बाहर मत छोड़ो। बिलकुल निर्विचार हो जाओ। तभी यह बोध होता है कि तुम

किसी के साथ एक हो गए हो। और तब एकरूपता का यह भाव साथी से मुक्त किया जा सकता है और पूरे अस्तित्व के साथ उपयोग में लाया जा सकता है। तुम किसी वृक्ष के साथ, चांद के साथ, किसी भी चीज के साथ काम-कृत्य में हो सकते हो। एक बार तुम जान जाओ कि इस वर्तुल को कैसे निर्मित करना है, तो यह किसी भी चीज के साथ निर्मित किया जा सकता है—बिना किसी चीज के भी निर्मित किया जा सकता है।

यह वर्तुल तुम अपने ही भीतर निर्मित कर सकते हो क्योंकि पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्री दोनों हैं और स्त्री भी स्त्री व पुरुष दोनों हैं। तुम दोनों ही हो, क्योंकि तुम दो के द्वारा पैदा हुए थे। तुम पुरुष और स्त्री दोनों के द्वारा निर्मित हुए थे, इसलिए तुम्हारा आधा हिस्सा विपरीत ध्रुव का रहता है। तुम सब कुछ पूरी तरह से भूल सकते हो, और वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित किया जा सकता है। एक बार वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित हो जाए—तुम्हारा पुरुष तुम्हारी स्त्री के साथ मिले, भीतर की स्त्री भीतर के पुरुष के साथ मिले—तो तुम अपने भीतर ही आलिंगनबद्ध हो गए। और जब यह वर्तुल निर्मित होता है तभी वास्तविक ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। वरना तो सब ब्रह्मचर्य केवल विकृतियाँ हैं, और तब वे अपनी स्वयं की समस्याएं निर्मित कर लेते हैं। जब भीतर यह वर्तुल निर्मित होता है, तो तुम मुक्त हो जाते हो।⁴

ध्यान में बाधाएं

दो कठिनाइयां

ध्यान के मार्ग पर केवल दो कठिनाइयां हैं: एक है अहंकार। समाज के द्वारा, परिवार के द्वारा, स्कूल के द्वारा, चर्च के द्वारा, अपने आसपास हर किसी के द्वारा तुम सतत अहंकारी होने के लिए तैयार किए जाते हो। आधुनिक मनोविज्ञान भी अहंकार को मजबूत करने पर ही आधारित है।

अहंकार

आधुनिक मनोविज्ञान और आधुनिक शिक्षा की पूरी धारणा ही यह है कि जब तक व्यक्ति के पास बहुत ही मजबूत अहंकार न हो तब तक वह जीवन में संघर्ष नहीं कर पाएगा, जहां इतना संघर्ष है कि यदि तुम विनम्र हो तो कोई भी तुम्हें एक ओर धकेल देगा; तुम हमेशा पीछे ही रहोगे। इस प्रतियोगी संसार में लड़ने के लिए तुम्हें लोहे-सा मजबूत अहंकार चाहिए; तभी तुम सफल हो

सकते हो। किसी भी क्षेत्र में—चाहे व्यापार हो, चाहे राजनीति हो, कोई भी व्यवसाय हो—तुम्हें अत्यंत आक्रामक व्यक्तित्व की जरूरत है, और हमारा पूरा समाज बच्चे में आक्रामक व्यक्तित्व निर्मित करने में लगा हुआ है। प्रारंभ से ही हम उसे कहना शुरू कर देते हैं, “अपनी कक्षा में प्रथम आओ।” जब बच्चा कक्षा में प्रथम आ जाता है तो हर कोई उसकी प्रशंसा करता है। तुम क्या कर रहे हो? तुम शुरू से ही उसके अहंकार को पोषित कर रहे हो। तुम उसे एक निश्चित महत्वाकांक्षा दे रहे हो: “तुम देश के

राष्ट्रपति बन सकते हो, देश के प्रधानमंत्री बन सकते हो।” इन विचारों को लेकर वह यात्रा शुरू करता है और जैसे-जैसे वह सफल होता है, उसका अहंकार बड़े से बड़ा होता जाता है।

हर तरह से अहंकार सबसे बड़ा रोग है जो मनुष्य को लग सकता है। यदि तुम सफल हो जाओ तो तुम्हारा अहंकार बढ़ा हो जाता है—यह खतरा है, क्योंकि तब तुम्हें एक बड़ी चट्टान हटानी होगी जो कि रास्ता रोके हुए है। या यदि अहंकार छोटा है, तुम सफल नहीं हुए, तुम असफल सिद्ध हुए, तब तुम्हारा अहंकार एक घाव बन जाएगा। फिर वह दुखता है, फिर वह हीनता की एक ग्रंथि निर्मित कर देता है—तब फिर उससे एक समस्या पैदा हो जाती है। तुम किसी भी चीज में जाने से, ध्यान से भी, सदा भयभीत रहते हो, क्योंकि तुम जानते हो कि तुम असफल व्यक्ति हो, कि तुम असफल ही होओगे—यह तुम्हारा मन बन गया है। तुम हर जगह असफल हुए हो, और ध्यान तो इतनी बड़ी चीज है...तुम सफल हो ही नहीं सकते।

यदि इस धारणा के साथ तुम ध्यान में प्रवेश करो—कि असफलता हाथ लगेगी ही, कि यही तुम्हारी नियति है, कि यह तुम्हारा भाग्य है—तब निश्चित ही तुम सफल नहीं हो सकते। यदि अहंकार बड़ा हो तो तुम्हें बाधा देता है। और अहंकार बहुत छोटा हो तो एक घाव बन जाता है, फिर वह भी बाधा देता है। दोनों ही बातों में अहंकार एक समस्या है।

मां के गर्भ में हर बच्चा बिलकुल आनंदित होता है। निश्चित ही वह उससे बेखबर होता है, उसका उसे कोई बोध नहीं होता। वह अपने आनंद के साथ इतना एकरूप होता है कि पीछे जानने वाला कोई नहीं बच रहता। आनंद उसका स्वभाव होता है, और ज्ञाता व ज्ञेय के बीच कोई भेद नहीं होता। तो निश्चित ही बच्चे को बोध नहीं होता कि वह आनंदित है। तुम्हें बोध तभी होता है जब तुम कुछ खो देते हो।

यह ऐसा ही है। बिना कुछ खोए, उसे जानना बहुत कठिन है क्योंकि जब तुमने उसे खोया ही नहीं तो तुम उसके साथ पूरी तरह एकरूप हो। कोई भेद ही नहीं है: द्रष्टा और दृश्य एक हैं; ज्ञाता और ज्ञेय एक हैं।

हर बच्चा गहन आनंदपूर्ण दशा में होता है। मनोवैज्ञानिक भी इससे सहमत होते हैं। वे कहते हैं कि धर्म की पूरी खोज मां के गर्भ को फिर से खोज लेने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वे इसे धर्म की आलोचना की तरह उपयोग करते हैं,

लेकिन मेरे लिए यह बिलकुल भी आलोचना नहीं है। यह तो सीधा-सादा सत्य है। हां, धर्म की खोज फिर से गर्भ की खोज है। धर्म की खोज फिर से इस पूरे अस्तित्व को ही एक गर्भ बना लेने की खोज है।

बच्चा मां के साथ पूरी तरह लय में होता है। बच्चे की मां के साथ लय कभी नहीं टूटती। बच्चे को मां से भिन्न होने का बोध नहीं होता। यदि मां स्वस्थ है तो बच्चा स्वस्थ है; यदि मां बीमार है तो बच्चा बीमार है। यदि मां उदास है तो बच्चा उदास है; यदि मां प्रसन्न है तो बच्चा प्रसन्न है। यदि मां नाच रही है तो बच्चा नाच रहा है; यदि मां शांत बैठी हुई है तो बच्चा शांत है। बच्चे की अभी अपनी स्वयं की सीमाएं नहीं हैं। यह शुद्धतम आनंद है, लेकिन इसे खोना पड़ता है।

बच्चा पैदा होता है, और अचानक वह केंद्र से परे फेंक दिया जाता है। अचानक वह धरती से, मां से उखड़ जाता है। उसके सहारे खो जाते हैं, और उसे पता नहीं होता कि वह कौन है। जब वह मां के साथ था तो जानने की कोई जरूरत भी नहीं थी—वह सब कुछ था, और जानने की कोई जरूरत नहीं थी, कोई भेद नहीं था। कोई 'तू' नहीं था, इसलिए किसी 'मैं' का कोई प्रश्न नहीं था। सत्य अविभाजित था। अद्वैत था, शुद्ध अद्वैत था।

लेकिन एक बार बच्चा पैदा हो जाए, और उसकी नाभि के तंतु काट दिए जाएं और वह अपने आप से श्वास लेने लगे तो अचानक उसके पूरे प्राण यह जानने की

अभीप्सा बन जाते हैं कि वह कौन है। यह स्वाभाविक है। अब उसे अपनी सीमाओं का बोध होने लगता है—अपने शरीर का, अपनी जरूरतों का। कभी वह सुखी होता है, कभी दुखी होता है; कभी वह तृप्त होता है, कभी अतृप्त होता है; कभी उसे भूख लगी होती है, वह रो रहा होता है और मां का कोई पता नहीं होता; कभी वह मां के स्तनों से लगा होता है, और फिर से मां के साथ एकरूपता का आनंद लेता है। लेकिन अब कई भाव, और कई दशाएं हैं, और धीरे-धीरे वह अलगाव अनुभव करने लगेगा। एक अलगाव हो गया, गठबंधन टूट गया। मां के साथ उसका पूरी तरह गठबंधन था; अब वह हमेशा अलग रहेगा। और उसे खोजना होगा कि वह कौन है। जीवन भर व्यक्ति यही खोजने का प्रयास करता रहता है कि वह कौन है। यह सबसे बुनियादी प्रश्न है।

बच्चे को पहले 'मेरे' का बोध होता है, फिर 'मुझ' का, फिर 'तू' का, और फिर 'मैं' का। ऐसे बात आगे चलती है। ठीक ऐसी प्रक्रिया है, ठीक इसी शृंखला में। पहले उसे 'मेरे' का अनुभव होता है। इस पर ध्यान दो, क्योंकि यही तुम्हारी, तुम्हारे अहंकार की संरचना है। पहले बच्चे को 'मेरे' का बोध होता है—'यह खिलौना मेरा है, यह मां मेरी है।' वह कब्जा करने लगता है। कब्जे वाला मन पहले प्रवेश करता है; कब्जे का भाव बुनियादी है। इसीलिए सभी धर्म कहते हैं: अपरिग्रही हो जाओ, क्योंकि परिग्रह के साथ ही नरक शुरू हो जाता है।

छोटे बच्चों को देखो: कितने द्वेषपूर्ण, कितने पकड़ के बैठे हैं! हर बच्चा बाकी सब से सब कुछ खींच लेने की और दूसरों से अपने खिलौनों को बचाने की चेष्टा कर रहा है। और तुम्हें ऐसे बच्चे मिलेंगे जो बहुत हिंसक हैं, दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति लगभग उदासीन। यदि एक बच्चा अपने खिलौने के साथ खेल रहा हो और कोई दूसरा बच्चा आ जाए तो तुम अडोल्फ हिटलर को, चंगेज खान को, नादिरशाह को देख सकते हो। वह अपने खिलौने को पकड़ लेगा; अब वह चोट करने को तैयार है, लड़ने को तैयार है। यह साम्राज्य का प्रश्न है, आधिपत्य का प्रश्न है।

मालकियत का भाव पहले आता है; यही बुनियादी विष है। और बच्चा कहने लगता है, “यह मेरा है।”

एक बार ‘मेरा’ प्रवेश कर जाए तो तुम सबके प्रतिस्पर्द्धी बन जाते हो। एक बार ‘मेरा’ प्रवेश कर जाए, तो तुम्हारा जीवन प्रतिस्पर्द्धा, संघर्ष, द्वंद्व, हिंसा और आक्रमण का जीवन हो जाएगा।

‘मेरे’ के बाद का चरण है ‘मुझ’ का। जब तुम्हारे पास ऐसा कुछ हो जिस पर तुम अपना दावा कर सको, तो अचानक यह विचार खड़ा होता है कि तुम अपनी सारी मालकियत के केंद्र हो। तुम्हारी मालकियत तुम्हारा साम्राज्य बन जाती है, और उस मालकियत के द्वारा ‘मुझ’ का एक नया विचार खड़ा होता है।

एक बार तुम ‘मुझ’ में व्यवस्थित हो जाओ, तो तुम स्पष्ट देख सकते हो कि तुम्हारी एक सीमा है, और जो उस सीमा से

बाहर हैं, वे ‘तू’ हैं। दूसरा स्पष्ट हो जाता है; अब चीजें विभाजित होने लगती हैं।

जगत एक है, जगत एकता है। कुछ भी विभक्त नहीं है। हर चीज बाकी दूसरी चीजों से जुड़ी हुई है; यह एक गहन संबद्धता है।

तुम पृथ्वी से जुड़े हो, वृक्षों से जुड़े हो, सितारों से जुड़े हो; सितारे तुमसे जुड़े हैं, सितारे वृक्षों से जुड़े हैं, नदी से जुड़े हैं, पर्वतों से जुड़े हैं। सबकुछ अंतर्संबंधित है। कुछ भी अलग-थलग नहीं है; कुछ भी अलग नहीं हो सकता। अलगाव संभव ही नहीं है।

हर क्षण तुम श्वास ले रहे हो—श्वास भीतर लेते हो, श्वास बाहर छोड़ते हो—अस्तित्व के साथ एक सतत सेतु बना हुआ है। तुम खाते हो, तो अस्तित्व तुममें प्रवेश करता है; तुम मल-त्याग करते हो, वह खाद बन जाता है—वृक्ष पर लगा हुआ सेब कल तुम्हारे शरीर का हिस्सा बन जाएगा, और तुम्हारे शरीर का कुछ हिस्सा बाहर निकलेगा और खाद बन जाएगा, वृक्ष के लिए भोजन बन जाएगा... एक सतत आदान-प्रदान है। यह एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता! जब यह रुकता है, तो तुम मर जाते हो।

मृत्यु क्या है?—विभाजन है मृत्यु। एकात्मता में होना जीवन है, और एकात्मता में से बाहर निकल जाना मृत्यु है। तो जितना तुम सोचते हो, “मैं अलग हूँ,” उतने ही तुम कम संवेदनशील और अधिक मृत, मंद व दीन हो जाओगे। जितना तुम भाव करो कि तुम संबंधित हो,

उतना ही यह पूरा अस्तित्व तुम्हारा हिस्सा हो जाएगा, और तुम पूरे अस्तित्व के हिस्से हो जाओगे। एक बार तुम समझ जाओ कि हम एक-दूसरे के सदस्य हैं, तो अचानक दृष्टि बदल जाती है। तब ये वृक्ष विजातीय नहीं रहते; वे लगातार तुम्हारे लिए भोजन तैयार कर रहे हैं। जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो ऑक्सीजन भीतर लेते हो, जब तुम श्वास छोड़ते हो तो कार्बन डाई ऑक्साइड छोड़ते हो; वृक्ष कार्बन डाई ऑक्साइड भीतर लेते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं—एक अहर्निश मिलन घट रहा है। हम एक लय में हैं। सत्य एक इकाई है; और ‘मुझ’ व ‘तू’ के विचार के साथ ही हम सत्य से बाहर निकल गिरते हैं। और एक बार भीतर कोई गलत धारणा बैठ जाए तो, तुम्हारी पूरी दृष्टि ही उलटी हो जाती है।...

पहले ‘मुझ’ फिर ‘तू’, और तब फिर एक प्रतिबिंब की भांति ‘मैं’ उठता है। ‘मैं’ मालकियत का सबसे सूक्ष्मतम और सुगठित रूप है। एक बार तुमने ‘मैं’ कह दिया तो समझो पाप कर दिया। एक बार तुमने ‘मैं’ कह दिया तो तुम अस्तित्व से पूरी तरह टूट गए—वास्तव में टूटोगे नहीं, बरना तो तुम मर ही जाओगे; लेकिन अपने विचारों में तुम सत्य से बिल्कुल टूट चुके हो। अब तुम सत्य के साथ सदा एक संघर्ष में रहोगे। तुम अपनी ही जड़ों से लड़ने लगोगे। तुम अपने ही साथ लड़ने लगोगे।

इसीलिए बुद्ध कहते हैं: “बहते हुए तिनके की भांति हो जाओ।” बहता हुआ

तिनका तो तुम तभी हो सकते हो जब 'मैं' के विचार को बिलकुल छोड़ दो—अन्यथा तुम बहता हुआ तिनका नहीं हो सकते; संघर्ष चलता रहेगा। यही कारण है कि जब तुम ध्यान के लिए आते हो तो बहुत कठिनाई होती है। यदि मैं शांत बैठने के लिए कहूँ, तो तुम नहीं बैठ सकते—और कितनी सरल बात है। कोई सोचेगा, यह तो सबसे सरल काम है; इसको तो सिखाने की भी जरूरत नहीं होनी चाहिए। बस व्यक्ति बैठे और बना रहे। लेकिन तुम बैठ नहीं रह सकते क्योंकि 'मैं' तुम्हें विश्राम का एक क्षण भी नहीं दे सकता।

एक बार विश्राम का एक क्षण मिल जाए तो तुम सत्य को देख पाओगे। एक बार सत्य जान लिया गया, तो 'मैं' को गिरा दिया जाना होगा। तब वह बना नहीं रह सकता। तो 'मैं' तुम्हें कभी छुट्टी नहीं देता। तुम किसी पहाड़ पर, किसी ग्रीष्म सैरगाह पर चले जाओ तो वहां भी 'मैं' तुम्हें छुट्टी नहीं लेने देगा। तुम अपना रेडियो ले जाते हो, अपना टी वी सेट ले जाते हो; अपनी सभी समस्याएं तुम ले जाते हो और तुम व्यस्त बने रहते हो। वहां तुम विश्राम करने गए थे, लेकिन अपना दर्ज़ा वैसा का वैसा जारी रखते हो। तुम विश्राम नहीं करते।

'मैं' विश्राम नहीं कर सकता। वह जीता ही तनाव पर है। वह नए-नए तनाव निर्मित कर लेगा, नई-नई चिंताएं खड़ी कर लेगा; लगातार नई से नई परेशानियां पैदा करता रहेगा, वह तुम्हें विश्राम नहीं करने देगा। विश्राम का एक क्षण भर मिल जाए

और 'मैं' का पूरा भवन ढहने लगता है—क्योंकि वास्तविकता इतनी सुंदर है और 'मैं' इतना असुंदर।

व्यक्ति व्यर्थ ही संघर्ष किए चला जाता है। तुम उन चीजों के लिए लड़ रहे हो जो अपने आप से होने ही वाली हैं। व्यर्थ ही तुम लड़ रहे हो। तुम ऐसी चीजों की चाह कर रहे हो जो बिना चाहे भी तुम्हारी होने वाली हैं। वास्तव में, चाहने से तो तुम उनको खो दोगे। इसीलिए तो बुद्ध कहते हैं: "धारा के साथ बहो। उसे तुम्हें सागर की ओर ले जाने दो।"

'मेरा', 'मुझ', 'तू', 'मैं'—यह जाल है। और यह जाल दुख, विक्षिप्तता और पागलपन पैदा करता है।

अब समस्या यह है: कि बच्चे को इससे गुजरना होगा, क्योंकि वह कौन है, यह उसको पता नहीं और उसे कुछ पहचान चाहिए—चाहे झूठी पहचान ही सही, पर वह भी पहचान न होने से तो बेहतर है। उसे कोई पहचान चाहिए। उसे जानना है कि ठीक-ठीक वह है कौन, तो एक झूठा केंद्र निर्मित हो जाता है। 'मैं' तुम्हारा वास्तविक केंद्र नहीं है। वह एक झूठा केंद्र है—उपयोगी है, लेकिन काल्पनिक, तुम्हारे द्वारा ही बनाया हुआ। उसका तुम्हारे वास्तविक केंद्र से कुछ लेना-देना नहीं है।

तुम्हारा जो वास्तविक केंद्र है वही समष्टि का भी केंद्र है। तुम्हारा वास्तविक स्व सभी का स्व है। केंद्र पर, पूरा अस्तित्व एक है—ठीक वैसे ही जैसे प्रकाश के स्रोत पर, सूर्य में, सभी किरणें

एक हैं। वे जितनी दूर चली जाती हैं, उतनी ही एक-दूसरे से भी दूर हो जाती हैं।

तुम्हारा वास्तविक केंद्र केवल तुम्हारा ही केंद्र नहीं है, वह समस्त का केंद्र भी है। लेकिन हमने अपने स्वयं के छोटे-छोटे केंद्र बना लिए हैं—होममेड, स्वनिर्मित। उनकी जरूरत है, क्योंकि बच्चा पैदा होता है बिना किसी सीमा के, बिना किसी खयाल के कि वह है कौन। यह जिंदा रहने के लिए एक अनिवार्यता है। वह जिंदा कैसे रहेगा? उसे कोई नाम देना होगा; वह कौन है—इस बात का उसे खयाल देना होगा। निश्चित ही यह खयाल बाहर से आता है: कोई कहता है तुम सुंदर हो, कोई कहता है तुम बुद्धिमान हो, कोई कहता है तुम कितने जीवंत हो। लोग जो कहते हैं, वे खबरें तुम इकट्ठी कर लेते हो।

लोग तुम्हारे बारे में जो कहते हैं, उस सबको इकट्ठा करके तुम एक निश्चित छवि बना लेते हो। तुम कभी अपने भीतर, उसकी ओर नहीं झांकते जो तुम हो। यह छवि तो झूठी होने ही वाली है—क्योंकि कोई और नहीं जान सकता कि तुम कौन हो, कोई और नहीं बता सकता कि तुम कौन हो। तुम्हारी अंतर्वास्तविकता तुम्हारे अतिरिक्त किसी और के लिए उपलब्ध नहीं है। तुम्हारी अंतर्वास्तविकता तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी के लिए अभेद्य है। वहां बस तुम ही जा सकते हो।

जिस दिन तुम्हें बोध होता है कि तुम्हारी पहचान झूठी है, जोड़-जाड़ कर इकट्ठी की हुई है, कि तुमने लोगों की धारणाएं इकट्ठी कर ली हैं... कभी जरा सोचो; बस शांत

बैठ जाओ और सोचो कि तुम कौन हो। कई खयाल उठेंगे। बस उन्हें देखते रहो कि वे कहां से आ रहे हैं और तुम स्रोत को खोज ले पाओगे। कुछ बातें तुम्हारी मां से आई हैं—काफी बातें, लगभग अस्सी से नब्बे प्रतिशत। कुछ तुम्हारे पिता से आता है, कुछ तुम्हारे स्कूल के शिक्षकों से आता है, कुछ तुम्हारे मित्रों से आता है, कुछ समाज से आता है। बस देखो: तुम सब चीजों को अलग-अलग कर पाओगे कि वे कहां से आ रही हैं। कुछ भी तुम से नहीं आता, एक प्रतिशत भी तुम से नहीं आता। यह कैसी पहचान है, जिसमें तुम्हारा जरा भी योगदान नहीं? और एक तुम ही हो जो योगदान कर सकते थे—वास्तव में, सौ का सौ प्रतिशत।

जिस दिन तुम यह समझ जाते हो, धर्म महत्वपूर्ण हो जाता है। जिस दिन तुम्हें यह बोध होता है तुम अपनी स्व-सत्ता में प्रवेश करने की कोई विधि, कोई उपाय खोजने लगते हो, कि कैसे पता चले ठीक-ठीक, वास्तव में अस्तित्वगत रूप से कि तुम कौन हो। अब बाहर से कोई छवि तुम जमा नहीं करते, दूसरों से अपनी वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करने की मांग नहीं करते—बल्कि सीधे ही, तत्क्षण उससे साक्षात्कार करने के, अपने स्वभाव में प्रवेश करके वहां उसे अनुभव करने के उपाय खोजने लगते हो।

किसी को पूछने की क्या जरूरत है? और किससे तुम पूछ रहे हो? वे अपने विषय में उतने ही अज्ञानी हैं जितने कि अपने विषय में तुम। वे स्वयं को ही नहीं

जानते, तुम्हें किस तरह जान सकते हैं?

जरा देखो सब कैसे चल रहा है, कैसे सब चलता रहता है, कैसे चीजें घटती रहती हैं: एक झूठ दूसरे झूठ की ओर ले जाता है। तुम करीब-करीब ठगे जाते हो, छले जाते हो। तुम ठगे जाते हो और जिन्होंने तुम्हें ठगा है उन्होंने शायद जानकर ऐसा न किया हो। शायद वे दूसरों द्वारा ठगे गए हों। तुम्हारे पिता, तुम्हारी मां, तुम्हारे शिक्षक दूसरों के द्वारा छले गए हैं—अपने पिताओं, अपनी माताओं, अपने शिक्षकों के द्वारा। और बदले में उन्होंने तुम्हें छला है। क्या तुम अपने बच्चों के साथ भी यही करने वाले हो?

एक बेहतर संसार में जहां लोग अधिक प्रतिभाशाली और अधिक सजग होंगे, वे अपने बच्चों को बताएंगे कि पहचान बनाने का खयाल झूठा है: "उसकी जरूरत है, और हम तुम्हें दे रहे हैं, लेकिन यह तब तक के ही लिए है, जब तक तुम स्वयं ही न खोज लो कि तुम कौन हो।"

वह तुम्हारी वास्तविकता होगी। और जितनी जल्दी तुम खोज लो कि तुम कौन हो, उतना ही अच्छा। इस विचार को तुम जितनी जल्दी गिरा दो, उतना ही अच्छा क्योंकि उसी क्षण से तुम सच में जन्मोगे, और सच में ही तुम वास्तविक व प्रामाणिक होओगे। तुम एक स्वतंत्र व्यक्ति हो जाओगे।

जो खयाल हम दूसरों से इकट्ठे कर लेते हैं वे हमें एक व्यक्तित्व देते हैं, और अपने भीतर से जो जानना हमें मिलता है वह हमें वैयक्तिकता देता है। व्यक्तित्व झूठ है,

वैयक्तिकता वास्तविक है। व्यक्तित्व उधार है; वास्तविकता, वैयक्तिकता, तुम्हारी प्रामाणिकता कभी उधार नहीं हो सकती। कोई नहीं बता सकता कि तुम कौन हो।

कम से कम एक काम कोई दूसरा नहीं कर सकता—कि तुम्हें इस बात का उत्तर दे दे, कि तुम कौन हो। नहीं, तुम्हें, ही जाना होगा, तुम्हें ही अपनी अंतः-सत्ता में गहरे खोदना होगा। पहचान की, झूठी पहचान की पत-दर-पत को तोड़ना होगा।

जब व्यक्ति स्वयं में प्रवेश करता है तो भय लगता है, क्योंकि भीतर दुर्व्यवस्था मच जाती है। किसी तरह तो तुम अपनी झूठी पहचान बना पाए हो; उसके साथ तालमेल बिठाया है। तुम जानते हो तुम्हारा नाम यह है कि वह है; तुम्हारे पास कुछ प्रतिष्ठापत्र हैं, यूनिवर्सिटी के, कॉलेज के प्रमाणपत्र हैं, मान-मर्यादा है, धन है, जायदाद है। स्वयं को परिभाषित करने के कुछ उपाय हैं तुम्हारे पास। तुम्हारी एक निश्चित परिभाषा है—भले कुछ ही काम की हो, लेकिन काम करती है। भीतर जाने का अर्थ है: इस कारगर परिभाषा को छोड़ना...तो अराजकता होगी।

इससे पहले कि तुम अपने केंद्र पर पहुंच सको, तुम्हें बड़ी अराजक दशा से गुजरना होगा। इसीलिए भय उठता है। कोई भी भीतर नहीं जाना चाहता। लोग सिखाते चले जाते हैं: "स्वयं को जानो;" हम सुनते हैं, लेकिन फिर भी कभी नहीं सुनते। हम इसकी कोई परवाह नहीं लेते। मन में एक खयाल-सा है कि एक

दुर्व्यवस्था हो जाएगी और तुम उसमें खो जाओगे, तुम उसमें फंस जाओगे। अराजकता के भय से हम बाहर की किसी भी चीज को पकड़े रहते हैं। लेकिन यह अपने जीवन को व्यर्थ करना ही है।²

वाचाल मन

ध्यान के मार्ग पर दूसरी बाधा है—तुम्हारा लगातार बड़बड़ाने वाला मन। तुम एक मिनट के लिए भी चुप नहीं बैठ सकते, मन बोलता चला जाता है: संगत-असंगत, अर्थपूर्ण-अर्थहीन विचार चलते रहते हैं। यह ट्रैफिक लगातार चलता रहता है और सदा ही भीड़-भाड़ बनी रहती है।³

तुम एक फूल को देखते हो और उसे शब्द दे देते हो। तुम किसी व्यक्ति को सड़क पार करते देखते हो और इस घटना को शब्द दे देते हो। मन हर अस्तित्वगत चीज को एक शब्द में अनुवादित कर लेता है, हर चीज शब्द में बदल दी जाती है। ये शब्द अवरोध खड़ा करते हैं, ये शब्द एक कारागृह बन जाते हैं। चीजों को, अस्तित्व को शब्दों में रूपांतरित करने की ओर का यह जो प्रवाह है, यही अवरोध है। ध्यानपूर्ण चित्त के लिए यह बाधा है।

तो ध्यानपूर्ण विकास की ओर पहली अनिवार्यता है अपने सतत शब्दीकरण के प्रति सजग होना, और उसे रोकने में सक्षम

होना। चीजों को बस देखो; उन्हें शब्द मत दो। उनकी उपस्थिति के प्रति सजग होओ, लेकिन उन्हें शब्दों में मत बदलो।

चीजों को बिना भाषा के रहने दो; लोगों को बिना भाषा के रहने दो, परिस्थितियों को बिना भाषा के रहने दो। यह असंभव नहीं है; यह संभव और स्वाभाविक है। परिस्थिति जैसी अब है नकली है, बनाई हुई है, लेकिन हम उसके इतने आदी हो गए हैं, वह इतनी यांत्रिक हो गई है कि अनुभव का शब्दों में जो रूपांतरण है, जो अनुवाद है उसका हमें पता भी नहीं चलता।

जैसे सूर्योदय है। उसे देखने और उसे शब्द देने के बीच का जो अंतराल है उसका तुम्हें कभी बोध नहीं होता। तुम सूर्य को देखते हो, उसको अनुभव करते हो, और तत्क्षण उसको शब्द दे देते हो। देखने और शब्द देने के बीच का जो भेद है वह खो जाता है; उसका कभी अनुभव ही नहीं होता। उस अंतराल में, उस भेद में व्यक्ति को सजग हो जाना चाहिए। उसे इस तथ्य के प्रति सजग होना चाहिए कि सूर्योदय कोई शब्द नहीं है। यह एक तथ्य है, एक उपस्थिति है, एक परिस्थिति है। मन अनुभवों को यांत्रिक रूप से ही शब्दों में बदल लेता है। ये शब्द इकट्ठे हो जाते हैं और फिर अस्तित्व और चेतना के बीच अवरोध की तरह आते हैं।

ध्यान का अर्थ है: शब्दों के बिना जीना, भाषारहित होकर जीना। फिर ये जो इकट्ठी की हुई स्मृतियां हैं, भाषागत स्मृतियां हैं, ये ध्यानपूर्ण विकास में बाधा

बन जाती हैं। ध्यान का अर्थ है: शब्दों के बिना जीना, किसी परिस्थिति में भाषारहित होकर जीना। कई बार सहज ही ऐसा हो जाता है। जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो ऐसा होता है। यदि तुम सच ही प्रेम में हो, तो उपस्थिति महसूस होती है—कोई भाषा नहीं होती। जब भी दो प्रेमी एक-दूसरे के साथ बहुत घनिष्ठता में होते हैं तो वे बहुत शांत हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि अभिव्यक्त करने को कुछ है नहीं; बल्कि अभिव्यक्त करने को तो अतिरेक में भाव है। लेकिन वहां कभी भी शब्द नहीं होते; और हो भी नहीं सकते। शब्द तभी आते हैं जब प्रेम जा चुकता है।

यदि दो प्रेमी कभी शांत न हों, यदि वे सदा बात ही कर रहे हों, तो यह इस बात का संकेत है कि प्रेम मर चुका। अब वे शब्दों से उस रिक्तता को भर रहे हैं। जब प्रेम जीवित होता है तो शब्द नहीं होते, क्योंकि प्रेम की उपस्थिति ही इतनी अभिभूत करने वाली, और इतनी भेदक होती है कि भाषा और शब्दों के सभी बंध पार हो जाते हैं। और साधारणतया वे प्रेम में ही पार होते हैं।

ध्यान प्रेम का शिखर है: वह प्रेम है एक व्यक्ति की बजाय समस्त अस्तित्व के प्रति। मेरे देखे, ध्यान उस अस्तित्व के साथ तुम्हारा जीवंत संबंध है जो तुम्हें चारों ओर से घेरे है। यदि तुम किसी भी परिस्थिति के साथ प्रेम में हो सको, तो तुम ध्यान में हो।...

समाज तुम्हें भाषा देता है, वह भाषा के बिना नहीं रह सकता; उसको भाषा की

जरूरत है। लेकिन अस्तित्व को भाषा की जरूरत नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि तुम भाषा के बिना जिओ। उसका उपयोग तो तुम्हें करना ही पड़ेगा, लेकिन शब्द देने की जो प्रक्रिया है, उसका जो मैकेनिज़्म है वह ऐसा होना चाहिए जिसे तुम शुरू भी कर सको और बंद भी कर सको।

जब तुम सामाजिक प्राणी की तरह जिओ, तो भाषा के मैकेनिज़्म की जरूरत है; उसके बिना तुम समाज में नहीं जी सकते। लेकिन जब तुम अस्तित्व के साथ अकेले हो, तो मैकेनिज़्म को बंद कर देना चाहिए; उसको बंद करने की तुम्हारी क्षमता होनी चाहिए। यदि तुम उसे बंद न कर सको तो मैकेनिज़्म विक्षिप्त हो गया—यदि वह चालू ही रहे, चालू ही रहे और तुम उसे बंद न कर सको, तो मैकेनिज़्म ने तुम्हारी डोर संभाल ली। तुम उसके गुलाम हो गए। मन तो एक यंत्र ही होना चाहिए, मालिक नहीं। लेकिन वह मालिक बन गया है।

जब मन मालिक होता है, तो गैर-ध्यान की एक अवस्था होती है। जब तुम मालिक होते हो, तुम्हारी चेतना मालिक होती है तो एक ध्यानपूर्ण अवस्था होती है। तो ध्यान का अर्थ है: मैकेनिज़्म पर मालिकियत, मैकेनिज़्म का मालिक हो जाना।

मन, और मन का भाषाई कार्य अंतिम नहीं है। तुम उसके पार हो और अस्तित्व उसके पार है। चेतना भाषा के पार है; अस्तित्व भाषा के पार है। जब चेतना और अस्तित्व एक हो जाते हैं, तो उनका मिलन होता है। इसी अवस्था को ध्यान कहते हैं।

चेतना और अस्तित्व के मिलन को ध्यान कहते हैं।

भाषा तो छोड़नी ही होगी। मेरा यह अर्थ नहीं कि तुम्हें उसे धकेल कर एक ओर कर देना है, कि तुम्हें उसका दमन करना है या उसका निषेध करना है। मेरा यह अभिप्राय है कि समाज में जिस चीज की जरूरत है, वह तुम्हारी चौबीस घंटे की आदत बन गई है और वैसे उसकी कोई जरूरत नहीं है।

जब तुम चलते हो, तो तुम्हें पांव हिलाने की जरूरत होती है लेकिन बैठे हुए तुम्हें अपने पांव नहीं हिलाने चाहिए। यदि बैठे हुए भी तुम्हारे पांव चलते रहें तो तुम पागल हो, तो पांव विक्षिप्त हो गए हैं। तुममें उन्हें रोकने की क्षमता होनी चाहिए। उसी तरह, जब तुम किसी से भी बोल नहीं रहे, तो भीतर भाषा नहीं होनी चाहिए। वह बात करने का एक यंत्र है, बात करने के लिए एक विधि है; जब तुम कोई बात कर रहे हो तो भाषा का उपयोग होना चाहिए; लेकिन जब तुम किसी से भी बात नहीं कर रहे, तब भीतर भाषा नहीं होनी चाहिए।

यदि तुम यह कर सको—और यह तभी संभव है जब तुम इसे समझते होओ—तब तुम ध्यान में विकसित हो सकते हो। मैं कहता हूँ “तुम विकसित हो सकते हो” क्योंकि जीवन की प्रक्रियाएं कभी मृत संकलन नहीं होतीं, वे सदा ही विकासमान प्रक्रियाएं होती हैं। तो ध्यान एक विकासमान प्रक्रिया है, कोई विधि नहीं। विधि सदा मृत होती है; वह तुममें जोड़ी जा सकती है, लेकिन प्रक्रिया सदा जीवंत होती है। वह विकसित होती है, वह

फैलती है।

भाषा की जरूरत है, वह अनिवार्य है, लेकिन फिर तुम्हें हमेशा उसी में नहीं बने रहना चाहिए। ऐसे क्षण भी होने चाहिए जब तुम बस अस्तित्वगत हो रहो और भीतर कोई शब्द न सरक रहे हों। जब तुम बस होते हो—और इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारा जीवन निष्प्राण हो जाए—तो चेतना होती है, और वह अधिक तीव्र, अधिक जीवंत हो जाती है, क्योंकि भाषा चेतना को मंद कर देती है। भाषा तो पुनरुक्तिपूर्ण होने को बाध्य है लेकिन अस्तित्व में कोई पुनरुक्ति नहीं है। तो भाषा ऊब पैदा करती है। भाषा तुम्हारे लिए जितनी महत्वपूर्ण होगी, तुम्हारा मन जितना ज्यादा भाषा-उन्मुख होगा, उतने ही तुम ज्यादा ऊबोगे। भाषा एक पुनरुक्ति है, अस्तित्व पुनरुक्ति नहीं है।

जब तुम एक गुलाब को देखते हो, तो वह कोई पुनरुक्ति नहीं है। वह एक नया, एक बिलकुल नया गुलाब है। न तो वह पहले कभी हुआ और न फिर कभी होगा। वह पहली बार और अंतिम बार मौजूद है।

लेकिन जब हम कहते हैं कि यह एक गुलाब है, तो ‘गुलाब’ शब्द एक पुनरुक्ति है: वह सदा से है, और सदा रहेगा। तुमने पुराने शब्द से नए को मार डाला।

अस्तित्व सदा युवा है, और भाषा सदा बूढ़ी। भाषा के कारण तुम अस्तित्व को चूक जाते हो, भाषा के कारण तुम जीवन को चूक जाते हो, क्योंकि भाषा मृत है। भाषा में तुम जितने प्रसित होओगे उतने ही तुम ज्यादा निजीव होते जाओगे। पंडित

बिल्कुल मुरदा होता है क्योंकि भाषा और शब्द के अतिरिक्त वह और कुछ भी नहीं होता। सार्त्र ने अपनी आत्मकथा लिखी है। उसका नाम उसने दिया है: "वर्ड्स", शब्द।

ध्यान का अर्थ है: जीना, समग्रता से जीना, और समग्रता से तुम तभी जी सकते हो जब शांत होओ। शांत होने से मेरा अर्थ बेहोश होना नहीं है। तुम शांत और बेहोश हो सकते हो लेकिन वह शांति जीवंत नहीं होगी—और तुम फिर से चूक जाओगे। 4

तो क्या करना है? प्रश्न संगत है। देखते रहो—रोकने की कोशिश मत करो। मन के विरुद्ध कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। पहली बात, यह काम करेगा कौन? यह तो मन ही मन के साथ संघर्ष करेगा। तुम अपने मन को दो खंडों में बांट लोगे: एक तो वह जो धाक जमाने की, ऊपर चढ़ने की चेष्टा कर रहा है, अपने ही दूसरे खंड को मारने का प्रयास कर रहा है—जो कि अर्थहीन है, यह एक मूढ़तापूर्ण खेल है। यह तुम्हें विक्षिप्त कर देगा। मन को या सोच-विचार को रोकने की चेष्टा मत करो—उसे बस देखो, उसे होने दो। उसे पूरी स्वतंत्रता दो। जितनी तेज वह दौड़ना चाहे उसे दौड़ने दो। तुम किसी भी तरह उसे नियंत्रित करने की कोशिश मत करो। तुम तो बस एक साक्षी हो जाओ। यह सुंदर है।

मन सुंदरतम यंत्रों में से एक है। विज्ञान अभी भी मन के समानांतर कुछ बना पाने में सक्षम नहीं हुआ है। मन अभी भी

सर्वश्रेष्ठ है—बहुत जटिल है, बहुत शक्तिशाली है, और जिसमें बड़ी संभावनाएं हैं। उसे देखो! उसका आनंद लो! और किसी शत्रु की भांति मत देखो, क्योंकि मन को यदि तुम शत्रु की भांति देखो, तो नहीं देख सकोगे। तुम पहले ही पूर्वाग्रह से भर गए; तुम पहले से ही उसके खिलाफ हो गए। तुमने पहले से ही निर्णय ले लिया कि मन में कुछ गड़बड़ है—तुमने पहले ही निष्कर्ष निकाल लिया। और जब भी तुम किसी की ओर शत्रु की तरह देखते हो तो बहुत गहरे नहीं देखते। फिर तुम कभी आंखों में नहीं झांकते, तुम बचते हो।

मन को देखने का अर्थ है: उसकी ओर गहन प्रेम से, गहन सम्मान से, श्रद्धा से देखो—वह परमात्मा का उपहार है तुम्हें! स्वयं मन में तो कुछ भी गड़बड़ नहीं है। स्वयं विचार में कुछ गलत नहीं है। अन्य प्रक्रियाओं की तरह यह भी एक सुंदर प्रक्रिया है। आकाश में विचरते हुए बादल सुंदर होते हैं—तो अंतराकाश में विचरते हुए विचार क्यों नहीं? वृक्षों पर उगते हुए फूल सुंदर होते हैं—तो तुम्हारे प्राणों में खिलते हुए विचार क्यों नहीं? सागर की ओर दौड़ती हुई नदी सुंदर होती है—तो कहीं अज्ञात नियति की ओर दौड़ती यह विचारों की धारा क्यों नहीं? क्या यह सुंदर नहीं है?

गहन श्रद्धा से भरकर देखो। योद्धा मत बनो, प्रेमी बनो। मन के सूक्ष्म संवेगों को देखो; उसके अकस्मात और सुंदर परिवर्तनों को, उसकी छलांगों को देखो;

उन चालों को देखो जो मन खेलता चला जाता है, सपने जो वह बुनता है—कल्पना, स्मृति; हजारों प्रक्षेपण जो मन निर्मित करता है—देखो—अलग से, दूर खड़े होकर, बिना उसमें सम्मिलित हुए; और धीरे-धीरे तुम्हें लगने लगेगा...

जैसे-जैसे तुम्हारा साक्षीभाव गहराता है, तुम्हारा होश गहरा होता है, तो दूरी बनने लगती है, अंतराल आने लगते हैं। एक विचार गया, दूसरा अभी आया नहीं; एक अंतराल है, एक बादल गुजर गया, दूसरा आ रहा है; बीच में अंतराल है।

उन अंतरालों में पहली बार तुम्हें अ-मन की झलकें मिलेंगी, अ-मन का स्वाद मिलेगा। इसे ज्ञेय का स्वाद कह लो, या ताओ का स्वाद कह लो, या योग का स्वाद कह लो। उन छोटे-छोटे अंतरालों में आकाश अचानक स्पष्ट हो जाता है और सूर्य चमकने लगता है। संसार अचानक चमत्कार से भर उठता है क्योंकि सभी अवरोध छूट गए। तुम्हारी आंखों पर परदा न रहा। तुम स्पष्ट देखते हो, आर-पार देखते हो, पूरा अस्तित्व पारदर्शी हो उठता है।

शुरू में तो ये क्षण विरले ही होंगे, बीच-बीच में कभी-कभार आ जाएंगे। लेकिन वे तुम्हें इसकी झलक दे देंगे कि समाधि क्या है। मौन के छोटे-छोटे कुंड आएं और विलीन हो जाएंगे। लेकिन अब तुम जानते हो कि तुम ठीक रास्ते पर हो—तुम फिर से देखने लगते हो।

जब एक विचार गुजरता है, तो तुम

उसको देखते हो; जब एक अंतराल गुजरता है, तो तुम उसको भी देखते हो। बादल सुंदर हैं, सूर्य की रोशनी भी सुंदर है। अब तुम चुनाव करने वाले न रहे। अब तुम्हारे पास एक जड़ मन नहीं है। तुम यह नहीं कहते कि “मैं तो केवल अंतराल पसंद करूंगा”। वह मूढ़ता होगी—क्योंकि एक बार तुम अंतराल की चाह से ही आसक्त हो गए, तो तुमने फिर से विचार के विरुद्ध निर्णय ले लिया। और फिर वे अंतराल खो जाएंगे। वे तभी घटते हैं जब तुम बहुत दूर और तटस्थ होते हो। वे घटते हैं, उन्हें लाया नहीं जा सकता। वे घटते हैं, तुम उन्हें घटाने को मजबूर नहीं कर सकते। वे स्वस्फूर्त घटनाएं हैं।

देखते रहो। विचारों को आने-जाने दो—जहां भी वे जाना चाहें—कोई गलती नहीं है। नियंत्रित करने की और दिशा देने की चेष्टा मत करो; विचारों को पूरी स्वतंत्रता से चलने दो। फिर और बड़े-बड़े अंतराल आएंगे। तुम छोटी-छोटी सतोरियों के, लघु सतोरियों के आशीष से धन्य हो जाओगे। कई बार तो मिनटों बीत जाएंगे और कोई विचार नहीं आएगा; कोई ट्रैफिक नहीं होगी—एक परिपूर्ण और

निर्विघ्न मौन होगा।

जब बड़े अंतराल आएंगे, तो तुम्हारे पास बस संसार में झांकने की ही सुस्पष्टता नहीं होगी—बड़े अंतरालों के साथ तुममें एक नई सुस्पष्टता का प्रादुर्भाव होगा; तुम अंतर्जगत में भी झांक पाओगे। पहले अंतरालों से तुम संसार में झांक पाओगे: वृक्ष अभी जैसे दिखाई पड़ते हैं उससे ज्यादा हरे हो जाएंगे। तुम एक अनंत संगीत से, अलौकिक संगीत से घिर जाओगे। अचानक तुम परमात्मा की उपस्थिति में होओगे—अकथनीय, रहस्यमय, तुम्हें छूती हुई, फिर भी तुम उसे पकड़ न पाओगे; तुम्हारी पहुंच में होते हुए भी जो तुम्हारी पहुंच से पार होगी। बड़े अंतरालों के साथ भीतर भी ऐसा ही होगा। परमात्मा केवल बाहर ही नहीं होगा, तुम अचानक चकित रह जाओगे कि वह तुम्हारे भीतर भी है। वह केवल दृश्य में ही नहीं है; वह द्रष्टा में भी है—भीतर भी और बाहर भी। लेकिन उसके साथ भी आसक्त मत हो जाओ।

आसक्ति मन के लिए भोजन है कि वह चलता रह सके। अनासक्त साक्षीभाव बिना उसे रोकने का प्रयास किए उसको

रोकने का उपाय है। और जब तुम उन आनंदपूर्ण क्षणों का आनंद लेने लगते हो, तो तुममें लंबे समय तक उनको बनाए रखने की क्षमता आ जाती है।

अंत में, अंततः, एक दिन तुम मालिक हो जाते हो। फिर जब तुम सोचना चाहते हो तो सोचते हो; यदि विचार की जरूरत है तो तुम उसका उपयोग करते हो; यदि विचार की जरूरत न हो तो तुम उसको विश्राम करने देते हो। ऐसा नहीं कि अब मन नहीं रहता—मन तो रहता है, लेकिन तुम उसका उपयोग कर भी सकते हो, और उपयोग नहीं भी कर सकते। अब यह तुम्हारा निर्णय है। बिल्कुल पांवों की तरह; तुम दौड़ना चाहो तो उनका उपयोग कर सकते हो; यदि तुम दौड़ना नहीं चाहते तो बस विश्राम करते हो—पांव तो अब भी हैं। ठीक उसी तरह मन भी हमेशा रहता है।

अ-मन मन के विपरीत नहीं है; अ-मन मन के पार है। अ-मन मन को मारकर और नष्ट करके पैदा नहीं होता; अ-मन तो तब जन्मता है जब तुम मन को इतनी समग्रता से समझ लेते हो कि सोच-विचार की कोई जरूरत नहीं रहती। तुम्हारी समझ उसका स्थान ले लेती है।⁵

झूठी विधियां

ध्यान एकाग्रता नहीं है

ध्यान गलत हो सकता है। उदाहरण के लिए कोई भी ध्यान की विधि जो तुम्हें गहरी एकाग्रता में ले जाती हो, वह गलत है। इससे तो तुम खुले हुए होने के बदले अधिकाधिक बंद हो जाओगे। यदि तुम अपनी चेतना को संकरा करके किसी चीज पर एकाग्र करते हो, यदि तुम शेष सारे अस्तित्व से संबंध तोड़ कर एक बिंदु पर एकाग्र हो जाते हो तो यह तुम्हारे भीतर ज्यादा से ज्यादा तनाव निर्मित करेगा। इसलिए अंग्रेजी का शब्द है 'अटेंशन'। इसका दूसरा अर्थ 'एट-टेंशन' होता है। एकाग्रता—कंसंट्रेशन—इस शब्द की ध्वनि भी तुम्हें तनाव का भाव देती है।

एकाग्रता के अपने उपयोग हैं लेकिन वह ध्यान नहीं है। वैज्ञानिक शोध के लिए प्रयोगशाला में तुम्हें एकाग्रता की जरूरत होगी। तुम्हें एक खास समस्या पर एकाग्र होने के लिए शेष सब संसार से संबंध तोड़ लेना होगा—यह संबंध विच्छेद इतना गहरा हो सकता है कि शेष सारे वातावरण के प्रति तुम लगभग

मूर्च्छित ही हो जाते हो। जिस विषय पर तुम एकाग्र हो रहे हो वही तुम्हारा एक मात्र संसार रह जाता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक अधिकतर भुलक्कड़ हो जाते हैं। अधिक एकाग्रता साधने वाले लोग भुलक्कड़ हो जाते हैं क्योंकि वे नहीं जानते कि समग्र अस्तित्व के प्रति कैसे संवेदनशील और खुले रहा जाए।

“मैं एक मेंढक लाया हूं,” उत्साह से भरे जीवशास्त्र के एक प्रोफेसर ने अपनी कक्षा में घोषित किया। “इसे तालाब से ताजा-ताजा निकाल लाया हूं ताकि हम इसकी बाहरी बनावट का अध्ययन करके फिर इसकी शल्यक्रिया कर सकें।”

उसने साथ लाए पैकेट को सावधानी से खोला और भीतर से निकला सफाई से बनाया गया एक हैम सेंडविच। प्रोफेसर महाशय ने आश्चर्य से भर कर उसे देखा।

“गजब हो गया!” वह बोला, “मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने अपना लंच ले लिया है।”

वैज्ञानिकों के साथ ऐसी घटनाएं होती ही रहती हैं। वे एक बिंदु पर एकाग्र हो जाते हैं और उनका पूरा मन बहुत सीमित क्षेत्र में फोकस हो जाता है। निश्चित ही एकाग्रता में बंध गए मन की अपनी उपयोगिताएं हैं: वह ज्यादा बेधक हो जाता है, वह एक सुई जैसा नोकीला हो जाता है, वह ठीक लक्ष्य-बिंदु पर चोट करता है, लेकिन अपने चारों ओर फैले हुए विराट जीवन से वह वंचित ही रह जाता है।

बुद्धपुरुष एकाग्रता वाले व्यक्ति नहीं हैं; वे होश वाले व्यक्ति हैं। वे अपनी चेतना को संकीर्ण बनाने का प्रयास नहीं करते रहे हैं, इसके विपरीत वे सभी बाधाओं को गिरा देने का प्रयास करते रहे हैं ताकि वे अस्तित्व के प्रति परिपूर्ण रूप से खुले हो सकें।

देखो, अस्तित्व में सब कुछ एक साथ उपस्थित है। मैं यहां बोल रहा हूं साथ ही साथ ट्रैफिक की आवाज भी गूंज रही है। ट्रेन की आवाज, पक्षियों के गीत, वृक्षों से गुजरती हुई हवा—इस क्षण सारा अस्तित्व घुल-मिल रहा है। मेरा तुमसे कुछ कहना, तुम्हारा मुझे सुनना—और लाखों घटनाओं का चारों ओर होना—यह सब कितना ऐश्वर्यशाली है!

एकाग्रता तुम्हें एक स्थान में आबद्ध कर देती है लेकिन एक बहुत बड़ी कीमत पर: जीवन का निन्यानबे प्रतिशत हिस्सा छोड़कर। यदि तुम गणित का एक सवाल हल कर रहे हो तो पक्षियों की आवाजों को सुनना एक बाधा होगी, एक विक्षेप होगा। आसपास खेलते हुए बच्चे, सड़क पर भाँकते हुए कुत्ते—वे सब विक्षेपजनक होंगे।

एकाग्रता की साधना के कारण ही लोगों ने जीवन से पलायन किया—हिमालय जाने के लिए, किसी गुफा में जाने के लिए, एकांत में रहने के लिए—ताकि वे परमात्मा पर चित्त को एकाग्र कर सकें। लेकिन परमात्मा कोई विषयवस्तु नहीं है; परमात्मा है यह समग्र अस्तित्व, यह क्षण; परमात्मा है समष्टि। इस कारण ही विज्ञान

परमात्मा को कभी जान न पाएगा। विज्ञान की मूल प्रक्रिया है एकाग्रता और इसी विधि के कारण विज्ञान कभी भी परमात्मा को नहीं जान पाएगा।

फिर क्या किया जाए? किसी मंत्र का जप या ट्रांसडेंटल मेडिटेशन आदि कोई सहायता न देंगे। भावातीत ध्यान (ट्रांसडेंटल मेडिटेशन) अमेरिका में बहुत महत्वपूर्ण बन गया है—वस्तुगत पद्धति होने के कारण—वैज्ञानिक बुद्धि को जंचने के कारण। यही एक प्रक्रिया है जिस पर वैज्ञानिक शोध की जा सकती है। वह ध्यान नहीं है; वह पूर्णतः एकाग्रता है, इसी कारण वह वैज्ञानिक चित्त के लिए सुबोध है। विश्वविद्यालयों में, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में, मनोवैज्ञानिक शोधों में टी एम के बारे में अनेक अनुसंधान कार्य हो रहे हैं, क्योंकि टी एम ध्यान नहीं है। यह एकाग्रता है; यह एकाग्रता की एक विधि है। टी एम वैज्ञानिक एकाग्रता की श्रेणी में ही आता है। उन दोनों के बीच एक सेतु है। लेकिन ध्यान से इसका कोई संबंध नहीं है।

ध्यान इतना विशाल है, अनंत है कि उस पर वैज्ञानिक शोध संभव नहीं है। जब व्यक्ति स्वयं करुणा का सागर बन जाता है तभी यह पता चलता है कि वह ध्यान को उपलब्ध हुआ है या नहीं। अल्फा तरंग की उत्पत्ति ज्यादा सहायक न होगी क्योंकि वे मन के ही अंग हैं और ध्यान मन की घटना नहीं है; ध्यान मन के पार का रहस्य है।

इसलिए मैं तुम्हें कुछ मूलभूत बातें कहता हूं। एक: ध्यान एकाग्रता

नहीं—विश्राम है; व्यक्ति बस स्वयं में विश्राम करता है। जितने तुम विश्रामपूर्ण होते हो उतने ही तुम अपने को खुला हुआ और ग्रहणशील पाते हो—उतनी ही कम जड़ता तुममें होती है। तुम बहुत तरल हो जाते हो और अचानक अस्तित्व तुममें प्रवेश करने लगता है। अब तुम पत्थर की तरह ठोस न रहे; सब ओर से तुम एक खुलापन हो गए हो।

विश्राम का अर्थ है: स्वयं को एक ऐसी अवस्था में उतरने देना जहां तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो क्योंकि यदि तुम कुछ कर रहे हो तो तनाव जारी रहेगा। यह कुछ न करने की एक दशा है; तुम बस विश्रामपूर्ण होते हो और तुम विश्राम के अनुभव का आनंद लेते हो।

स्वयं में विश्रामपूर्ण हो जाओ; आंखें बंद कर लो और चारों ओर जो हो रहा है उसकी आवाजें सुनते रहो। किसी भी बात को विक्षेप की तरह मत देखो। जिस क्षण तुम किसी बात को विक्षेप मानते हो, तुम परमात्मा का इनकार कर रहे हो।

इस क्षण में परमात्मा एक पक्षी की तरह तुम्हारे पास आया है—उसका इनकार मत करो। उसने एक पक्षी की तरह तुम्हारे द्वार पर दस्तक दी है। दूसरे क्षण वह एक भाँकते हुए कुत्ते की तरह आया है, या एक रोते और चीखते हुए बच्चे की तरह आया है, या एक हंसते हुए पागल आदमी की तरह आया है। इनकार मत करो; निषेध मत करो—स्वीकार करो, क्योंकि यदि तुमने इनकार किया तो तुम तनावपूर्ण हो जाओगे। सभी अस्वीकार तनाव निर्मित

करते हैं। स्वीकार करो।

यदि तुम विश्रामपूर्ण होना चाहते हो तो स्वीकार मार्ग है। चारों ओर जो कुछ घटित हो रहा है उसे स्वीकार करो; उन्हें एक जीवंत समग्रता बनने दो। वह ऐसा है—तुम जानो या न जानो—सब कुछ अंतर्संबंधित है। ये पक्षी, ये वृक्ष, यह आकाश, यह सूर्य, यह पृथ्वी, तुम, मैं—सब परस्पर जुड़े हैं। यह एक जीवंत एकत्व है।

यदि सूर्य नष्ट हो जाए तो वृक्ष खो जाएंगे, पक्षी खो जाएंगे; यदि पक्षी और वृक्ष खो जाएं, तो तुम भी यहां नहीं हो सकते, तुम भी खो जाओगे। यह पर्यावरण विज्ञान है। हर चीज आपस में गहराई से जुड़ी हुई है।

इसलिए किसी चीज का इनकार मत करो, क्योंकि जिस क्षण तुम इनकार करते हो, तुम स्वयं के भीतर की ही किसी चीज का इनकार कर रहे हो। यदि तुम इन चहकते हुए पक्षियों का इनकार करते हो, तो तुम्हारे भीतर भी कुछ इनकार कर दिया गया।

यदि तुम शिथिल होते हो तो तुम स्वीकार के भाव में होते हो। अस्तित्व का स्वीकार विश्रामपूर्ण होने का एक मात्र उपाय है। यदि छोटी-छोटी बातें तुम्हें क्षुब्ध करती हैं तो वास्तव में यह तुम्हारा दृष्टिकोण है जो तुम्हें क्षुब्ध करता है।

मौन बैठो; चारों ओर जो घटित हो रहा है उसे सुनो और शिथिल हो जाओ। स्वीकार करो, शिथिल हो जाओ और अचानक तुम अपने भीतर एक विराट

ऊर्जा उठती हुई अनुभव करोगे।

और जब मैं कहता हूं कि देखो, तब तुम देखने का प्रयास मत करना अन्यथा तुम फिर से तनावपूर्ण हो जाओगे और तुम एकाग्रता शुरू कर दोगे। बस शिथिल हो जाओ, विश्रामपूर्ण और ढीले बने रहो और देखो... क्योंकि तुम और क्या कर सकते हो? तुम बस यहां हो; करने के लिए कुछ नहीं है; सब कुछ स्वीकृत है; कुछ भी निषेध के लिए, इनकारने के लिए नहीं है। कोई संघर्ष नहीं, कोई लड़ाई नहीं, कोई द्वंद्व नहीं। तुम बस देखो। स्मरण रहे: बस देखो। ६

ध्यान आत्मपरीक्षण नहीं है

आत्मपरीक्षण है स्वयं के बारे में सोचना। आत्मस्मरण सोचना बिलकुल ही नहीं है; यह है स्वयं के प्रति बोधपूर्ण होना। फर्क बारीक है, लेकिन बहुत बड़ा है।

पश्चिमी मनोविज्ञान आत्मपरीक्षण पर जोर देता है और पूर्वी मनोविज्ञान आत्मस्मरण पर जोर देता है। आत्मपरीक्षण करते समय तुम करते क्या हो? उदाहरण के लिए, तुम क्रोधित हो, तो तुम क्रोध के बारे में सोचना शुरू कर देते हो कि क्रोध किस कारण निर्मित हुआ। तुम विश्लेषण करने लगते हो कि क्रोध का कारण क्या है। तुम निर्णय लेने लगते हो कि क्रोध अच्छा है कि बुरा। तुम व्याख्या करने लगते हो कि तुम क्रोधित

हुए क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी थी। तुम क्रोध का चिंतन करते हो, तुम क्रोध का विश्लेषण करते हो, लेकिन चेतना का फोकस क्रोध पर है, स्व पर नहीं। तुम्हारी सारी चेतना का फोकस क्रोध पर है: तुम निरीक्षण कर रहे, विश्लेषण कर रहे, तालमेल बिठा रहे, उसके बारे में विचार कर रहे; तुम यह पता लगाने की कोशिश कर रहे हो कि क्रोध से कैसे बचा जाए, उससे कैसे मुक्त हुआ जाए, कैसे वह दोबारा न आए। यह विचार की प्रक्रिया है। तुम निर्णय लोगे कि यह बुरा है, क्योंकि यह विश्वसात्मक है। तुम शपथ लोगे कि “अब दूसरी बार मैं यह गलती न करूंगा।” तुम क्रोध को संकल्प से नियंत्रित करने का प्रयास करोगे। यही कारण है कि पश्चिमी मनोविज्ञान विश्लेषणात्मक बन गया है—विश्लेषण करना, काटना-छांटना।

पूरब का मनोविज्ञान कहता है: “होशपूर्ण रहो। क्रोध के विश्लेषण का प्रयास मत करो; उसकी कोई जरूरत नहीं है। उसे बस देखो, लेकिन होश से भर कर देखो। सोचना शुरू मत करो।” वास्तव में यदि तुमने सोचना शुरू कर दिया, तो यह सोचना क्रोध को देखने में एक बाधा बन जाएगा। तब सोचना क्रोध पर हावी हो जाएगा तब सोचना एक बादल की तरह क्रोध को आच्छादित कर लेगा; स्पष्टता खो जाएगी। सोचो बिलकुल ही मत। निर्विचार दशा में रहो, और देखो।

जब क्रोध और तुम्हारे बीच विचार की एक तरंग भी नहीं है, तब क्रोध का

सामना हुआ, क्रोध से साक्षात्कार हुआ। तुम क्रोध की चीर-फाड़ नहीं करते। तुम उसके स्रोत तक जाने की चिंता नहीं लेते, क्योंकि स्रोत तो अतीत में है। तुम उसके संबंध में कोई निर्णय नहीं लेते, क्योंकि निर्णय लेने के क्षण से ही सोच-विचार शुरू हो जाता है। तुम कोई शपथ भी नहीं लेते कि "मैं अब क्रोध नहीं करूंगा।" क्योंकि शपथ लेना तुम्हें भविष्य में ले जाता है। होशपूर्ण होने में तुम क्रोध की घटना के साथ होते हो—अभी और यहां। क्रोध को बदलने में तुम्हारी कोई रुचि नहीं है, उसके बारे में सोच-विचार करने में तुम्हारी कोई रुचि नहीं है। तुम्हारी तो रुचि है कि तुम क्रोध को सीधे, तत्काल, आमने-सामने देख भर लो। तब यह है आत्मस्मरण।

और इसका यह सौंदर्य है कि यदि तुम क्रोध को देख भर सको तो क्रोध विलीन हो जाता है। न केवल क्रोध उस क्षण विलीन हो जाता है—वरन् तुम्हारे गहरे देखने से

उसका विलीन हो जाना तुम्हें एक कुंजी दे देता है कि संकल्प का उपयोग करने की कोई जरूरत नहीं है; भविष्य के लिए कोई निर्णय लेने की जरूरत नहीं है और न ही क्रोध के मूल स्रोत तक जाने की कोई जरूरत है। यह सब अनावश्यक है। अब तो तुम्हारे पास कुंजी है: क्रोध को देखो और क्रोध विलीन हो जाता है। यह देखना सदा उपलब्ध है। जब कभी क्रोध आए, तुम उसे देख सकते हो। फिर यह देखना गहराता जाता है।

होशपूर्वक देखने के तीन चरण हैं। पहला: जब क्रोध घटित हो कर जा चुका है, जैसे तुम क्रमशः विलीन होती पूंछ को देखते हो—हाथी जा चुका है, केवल पूंछ दिख रही है। जब क्रोध घटित हो रहा था, तब तुम उसमें इतनी गहराई से ग्रस्त हो गए थे कि तुम होशपूर्ण हो ही न सके थे। जब क्रोध करीब-करीब विलीन हो चुका है, निन्यानबे प्रतिशत जा चुका है—केवल एक प्रतिशत, क्रोध का आखिरी हिस्सा

अभी-अभी जा रहा है, दूर क्षितिज में विलीन हो रहा है—तब तुम होशपूर्ण हो जाते हो। यह है होशपूर्ण होने का पहला चरण। यह अच्छा है, लेकिन पर्याप्त नहीं है।

दूसरा चरण है—जब पूरा हाथी ही सामने है, पूंछ मात्र नहीं—जब क्रोध की घटना पकी हुई है; तुम क्रोध के शिखर पर हो—उबलते हुए, जलते हुए—तब तुम सजग हो जाते हो।

तब फिर एक तीसरा चरण भी है: क्रोध पूरा प्रकट नहीं हुआ है, प्रकट होना शुरू हो रहा है—हाथी का सिर प्रकट हो रहा है, पूंछ नहीं। क्रोध बस तुम्हारी चेतना के दायरे में प्रविष्ट हो रहा है—और तुम सजग हो जाते हो, तब क्रोध का हाथी कभी घटित ही नहीं होता। तुमने उसे जन्म के पहले ही मार डाला। यह है जन्म-निरोध। क्रोध की घटना घटी ही नहीं; फिर यह पीछे कोई निशान भी नहीं छोड़ती है। 7

मन की चालबाजियां

अनुभूतियों के द्वारा मत ठगे जाओ

सभी अनुभूतियां मन की ही चालबाजियां हैं, हर अनुभव एक पलायन है। ध्यान कोई अनुभूति नहीं, एक बोध है। ध्यान कोई अनुभूति नहीं, वरन, सब अनुभूतियों का समाप्त हो जाना है।

अनुभव तुमसे बाहर है। अनुभोक्ता तुम्हारी अंतर्सत्ता है। और वास्तविक तथा मिथ्या आध्यात्मिकता में यही भेद है: यदि तुम अनुभूतियों के पीछे दौड़ रहे हो, तो आध्यात्मिकता झूठी है; यदि अनुभोक्ता में तुम्हारा रस है, तो फिर तुम्हारी आध्यात्मिकता वास्तविक है। फिर न तो तुम्हारा रस कुंडलिनी में होगा, न चक्रों में होगा; इन सब बातों में कोई रस ही नहीं होगा। वह सब घटेगा तो, लेकिन

तुम्हारा रस उनमें नहीं होगा, तुम इन पगडंडियों पर भटक न जाओगे। तुम तो उस अंतर्केंद्र की ओर बढ़ते चले जाओगे जहां तुम्हारे एकांत को छोड़कर और कुछ भी शेष नहीं रहता। केवल चेतना बच रहती है बिना किसी विषय के।

विषय है अनुभव; अनुभव जो भी हो, वह विषय है। मुझे दुख का अनुभव होता है तो दुख मेरी चेतना का विषय हुआ। फिर मुझे सुख का अनुभव होता है तो सुख

चेतना का विषय हुआ। मुझमें ऊब उठे तो ऊब विषय हो गई। तुम्हें मौन का भी अनुभव हो सकता है, तब मौन एक विषय बन जाएगा। तुम्हें आनंद का अनुभव हो सकता है, तब आनंद एक विषय होगा। तो तुम विषय बदलते चले जा सकते हो—अनंत रूप से यह क्रम चल सकता है—लेकिन यह असली बात नहीं है।

वास्तविक तो वह है जिसको ये सारे अनुभव होते हैं—जिसे ऊब होती है, जिसे आनंद होता है। आध्यात्मिक खोज 'क्या होता है' के लिए नहीं, 'किसे होता है' के लिए है। फिर अहंकार के उठने की कोई संभावना नहीं है। *

मन पुनः प्रवेश कर सकता है

ध्यान में कभी-कभी तुम्हें एक प्रकार की शून्यता का अनुभव होता है जो कि वास्तव में शून्यता नहीं है। मैं इसे "एक प्रकार की शून्यता" कहता हूँ। जब तुम ध्यान में होते हो तो किन्हीं क्षणों में कुछ पल के लिए तुम्हें लगेगा कि विचार की धारा रुक गई है। शुरू-शुरू में ये

अंतराल उभरेंगे। लेकिन क्योंकि तुम्हें ऐसा 'लग' रहा है कि विचार की प्रक्रिया रुक गई, तो यह भी एक विचार हो गया, एक बहुत ही सूक्ष्म विचार हो गया। तुम क्या कर रहे हो? तुम भीतर कह रहे हो, "विचार की प्रक्रिया रुक गई है।" लेकिन यह क्या है? यह तो दूसरी विचार प्रक्रिया शुरू हो गई। और तुम कहते हो, "यह शून्यता है।" तुम कहते हो, "अब कुछ होने वाला है।" यह क्या है? फिर से एक विचार प्रक्रिया शुरू हो गई।

फिर कभी ऐसा हो तो इसके शिकार मत होना। जब तुम्हें लगे कि एक मौन उतर रहा है, तो उसका शब्दीकरण शुरू मत करना, क्योंकि उससे तुम मौन को नष्ट कर दोगे। प्रतीक्षा करो—किसी के लिए नहीं—बस प्रतीक्षा मात्र करो। कुछ करो मत। मत कहो कि "यह शून्यता है।" जिस क्षण तुमने यह कहा, तुमने उसे नष्ट कर दिया। बस इसे देखो, इसमें प्रवेश करो, इसका साक्षात्कार करो—लेकिन रुको, इसको शब्द मत दे देना। ऐसी जल्दी भी क्या है? शब्द देकर मन दूसरे दरवाजे से प्रवेश कर गया, और तुम छल लिए गए। मन की इस चाल के प्रति जागो रहो।

शुरू-शुरू में तो यह होगा ही, तो जब भी ऐसा हो, प्रतीक्षा करो। जाल में मत फंसो। कुछ भी मत कहो, मौन रह जाओ। फिर तुम शून्यता में प्रवेश करोगे, और फिर यह घटना क्षणिक नहीं होगी, क्योंकि एक बार तुम्हें वास्तविक शून्यता का पता चल जाए तो फिर उसे खो नहीं सकते। वास्तविक को खोया नहीं जा सकता; यही

तो उसकी विशेषता है।

एक बार तुमने भीतर की संपदा का अनुभव कर लिया, एक बार तुम अपने अंतर्गत के संपर्क में आ गए, फिर तुम कृत्य में जा सकते हो, फिर तुम जो चाहो कर सकते हो, फिर तुम साधारण सांसारिक जीवन जी सकते हो, लेकिन शून्यता बनी रहेगी। उसे तुम भूल नहीं सकते। वह भीतर बनी रहेगी। उसका संगीत सुनाई देता रहेगा। तुम जो भी करोगे, वह करना परिधि पर ही रहेगा, भीतर तो तुम शून्य रहोगे।^१

मन तुम्हें छल सकता है

ऐसे ढांचे हैं जिनमें साधक फंस जाता है।

पहली बात: अधिकांश साधक इस भ्रामक धारणा में भटक जाते हैं कि वे पहुंच गए। यह ऐसे स्वप्न की तरह है जिसमें तुम्हें लगे कि तुम जागे हुए हो। अभी भी तुम सपना देख रहे हो—जागे हुए होने का यह भाव तुम्हारे स्वप्न का हिस्सा है। ऐसा ही साधक के साथ होता है।

मन यह भ्रम खड़ा करने में सक्षम है कि "अब तो कहीं और जाने को नहीं रहा, मैं पहुंच गया।" मन धोखेबाज है। और ऐसी परिस्थिति में सद्गुरु का कार्य यह है कि तुम्हें सचेत करे कि यह वास्तविकता नहीं है; यह सपना भर है और अभी तुम कहीं पहुंचे नहीं हो।

ऐसा फिर-फिर, बहुत बार हो सकता है। और शिष्य गुरु से बहुत विशुद्ध हो सकता है कि जब भी उसे लगे कि उसे मिल गया है, तो गुरु वह सब उससे वापस छीन लेता है और उसको अज्ञानी अवस्था में वापस फेंक देता है।

उदाहरण के लिए एक जर्मन संन्यासी के साथ लगातार ऐसा हो रहा था—उसे बार-बार लगता कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया है। और भ्रम की प्रगाढ़ता ऐसी थी कि वह उसे अपने तक ही नहीं रख सकता था, वह दूसरों को भी बताता।

वह बहुत निश्चयात्मक था। तीन बार ऐसा हुआ, और अपनी निश्चयात्मकता के कारण ही मेरे आशीष लेने के लिए वह भारत आया। अब इससे पता चलता है कि उसे कितना विश्वास था—वह मेरे आशीष तक लेने के लिए आ गया।

हर बार मुझे उससे कहना पड़ता, "तुम स्वयं के मन द्वारा ही छले जा रहे हो। कुछ भी तुम्हें हुआ नहीं है, तुम वही पुराने मनुष्य हो—नया मनुष्य अभी प्रकट नहीं हुआ है। और जो भी तुम कर रहे हो—सरकारों को, संयुक्तराष्ट्र को जो पत्र लिख रहे हो—ये सब अहंकार के उपाय हैं। तुम अहंकार की पकड़ में हो।"

सुंदर स्वप्न में जीना बहुत सरल है। वास्तविकता से अपने सपनों को चकनाचूर होते देख पाना बहुत कठिन है।

पूर्व के प्राचीन ग्रंथों में इसे माया की शक्ति कहते हैं। मन के पास कोई भी भ्रम पैदा कर लेने की सम्मोहन शक्ति है। यदि बड़ी उत्कट आकांक्षा से तुम किसी चीज

के पीछे भाग रहे हो तो यह मन का कार्य है कि वह तुम्हारे उद्वेग को रोके। स्वप्न में लगभग रोज यह सबके साथ होता है, लेकिन लोग कुछ सीखते ही नहीं।

यदि रात तुम भूखे सो जाओ, तो उस रात तुम्हें स्वादिष्ट भोजन करने के सपने आएंगे। मन तुम्हारी मदद करने की कोशिश कर रहा है ताकि तुम्हारी नींद में बाधा न पड़े; वरना तो तुम भूखे हो और भूख से तुम्हारी नींद टूट जाएगी—मन तुम्हें एक स्वप्न देता है कि तुम अपनी पसंद का कोई स्वादिष्ट भोजन कर रहे हो, जो तुम्हारे मन को तृप्त कर देता है। भूख तो बनी रहती है लेकिन नींद में कोई बाधा नहीं पड़ती। भूख स्वप्न के भ्रम में दब जाती है; इससे तुम्हारी नींद की रक्षा हो

जाती है। नींद में तुम्हें लगता है कि तुम्हें पेशाब आ रही है। यदि मन यह सपना पैदा न करे कि तुम उठकर पेशाब करने गए, फिर वापस आए और सो गए, तो तुम्हारी नींद टूट जाएगी—और नींद तो शरीर की बड़ी जरूरत है। मन इस बात का खयाल रख रहा है कि बार-बार तुम्हारी नींद न टूटे, कि तुम आराम से देर तक सो सको, ताकि सुबह तुम तरोताजा होकर उठ सको।

यह मन की सामान्य प्रक्रिया है; फिर ऊंचे तल पर भी यही बात होती है। एक तो है साधारण नींद, और दूसरा है साधारण जागरण जिसकी मन रक्षा करता है। साधना के पथ पर महानिद्रा और महाजागरण हैं। लेकिन मन तो प्रशिक्षित

है—मन तो एक यंत्र है। यह बिना कोई चिंता किए अपना काम करता है, क्योंकि इसके सामने यह जानने का तो उपाय ही नहीं है कि यह नींद साधारण नींद है या आध्यात्मिक नींद है, साधारण जागरण है या आध्यात्मिक जागरण है।

मन के लिए तो सब बराबर है। इसका प्रयोजन ही यह है कि तुम्हारी नींद को बनाए रखे और तुम्हारी नींद में बाधा डालने वाली हर चीज का प्रतिरोध करे। तुम भूखे हो तो मन तुम्हें भोजन दे देता है; तुम सत्य की तीव्र खोज में हो, तो वह तुम्हें बुद्धत्व तक दे देता है। तुम कुछ भी मांगो, और मन तुम्हें वह देने को तैयार है। मन किसी भी वास्तविकता का भ्रम पैदा कर सकता है—यही इसकी शक्ति है। 10

ध्यान तुम्हारा 'मास्टर-कार्ड' है

ओशो का एक यहूदी शिष्य एक शानदार स्त्री को रात्रि-भोज के लिए बाहर ले जाता है। वे पूना के सबसे ज्यादा खर्चीले रेस्तरां में जाते हैं और भोजन में इटालियन स्पैगेटी, जापानीज सूसी तथा फ्रेंच शराब लेते हैं। पूर्णाहुति के मिष्ठान के लिए वे जर्मन चाकलेट केक चुनते हैं और ब्राजीलियन कॉफी से रात्रि-भोज की समाप्ति करते हैं। जब वेटर उन्हें बिल लाकर देता है, तब गोल्डस्टीन महाशय को पता लगता है कि वह अपना पर्स तो घर पर भूल आया है। इसलिए वह अपनी जेब से ओशो का चित्र निकाल कर वेटर को थमा देता है।

“यह क्या है?” वेटर ने मांग की।

“मेरा मास्टरकार्ड—मेरी जीवन-संपदा!” गोल्डस्टीन उत्तर देता है। ॥

ओशो से प्रश्नोत्तर

केवल साक्षी ही नृत्य कर सकता है

आप हमें सतत समझाते हैं कि
“होशपूर्ण होओ,”
कि “साक्षी बनो।”

लेकिन साक्षी चेतना क्या
वास्तव में गीत गा सकती है,
नृत्य कर सकती है और जीवन
का स्वाद ले सकती है?

या कि साक्षी चेतना कभी भी
जीवन में सहभागी नहीं बन पाती
और वह मात्र एक तमाशबीन,
एक दर्शक बनी रहती है?

मन यह प्रश्न देर-अबेर उठाने ही
वाला है क्योंकि तुम्हारे साक्षी होने
की संभावना से मन बहुत ही भयभीत होता
है। तुम्हारे साक्षी होने से मन क्यों इतना
ज्यादा भयभीत होता है?—क्योंकि साक्षी
का आना मन की मृत्यु है।

मन एक कर्ता है—वह कुछ न कुछ
करते ही रहना चाहता है—और साक्षी है
न-करने की अवस्था। मन भयभीत है कि
“यदि तुम साक्षी हो गए, तो मेरी कोई
जरूरत ही न रह जाएगी!” और एक अर्थ
में मन ठीक ही सोचता है।

जैसे ही तुम्हारे भीतर साक्षी का
आविर्भाव होता है, मन को विलीन हो
जाना पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे कि
अपने अंधेरे कमरे में रोशनी लाओ और
अंधेरे को बिदा लेनी पड़े। यह अपरिहार्य
है। मन जी सकता है यदि तुम गहरी मूर्च्छा
में बने रहो क्योंकि मन सपनों का एक

प्रवाह है और सपने नींद में ही
अस्तित्ववान हो सकते हैं।

एक साक्षी होकर तुम निद्रा में नहीं
रहते; तुम जाग जाते हो। तुम जागरूकता
ही हो जाते हो—स्फटिकवत् स्पष्ट, बहुत
युवा, बहुत ताजे, बहुत प्राणवान और
सक्षम। तुम एक प्रचंड लपट बन जाते हो
जैसे मशाल दोनों छोरों से जल रही हो।
प्रगाढ़ता की उस अवस्था में, उस प्रकाश
और चैतन्य में मन मर जाता है, मन
आत्मघात कर लेता है।

यही कारण है कि मन भयभीत है, और
मन तुम्हारे लिए कई समस्याएं खड़ी
करेगा। वह अनेक प्रश्न उठाएगा। अज्ञात
में छलांग लगाने के प्रति वह तुम में एक
दुविधा, एक हिचक पैदा करेगा; वह तुम्हें
वापस ज्ञात में खींचने की कोशिश करेगा।
वह तुम्हें विश्वास दिलाएगा: “मेरे साथ
होने में रक्षा है, सुरक्षा है; मेरे साथ होकर

तुम पूर्णतः आरक्षित हो और सुरक्षा की छायातले जी रहे हो। मैं तुम्हारी पूरी देखभाल रखता हूँ। मेरे साथ तुम सक्षम और कुशल बनते हो। जिस क्षण तुम मुझे छोड़ते हो, तुम्हें अपनी समस्त जानकारीयाँ छोड़नी पड़ेंगी, अपनी सभी सुरक्षाएँ खोनी होंगी। तुम्हें अपने सुरक्षा-कवच छोड़ देने होंगे और तुम अज्ञात में प्रवेश कर रहे होओगे। बिना किसी भी कारण के अनावश्यक ही तुम खतरा मोल ले रहे हो।”

मन सुंदर-सुंदर तर्काभास देने की कोशिश करेगा। यह प्रश्न भी मन द्वारा दिए गए तर्काभासों में से एक है।

यह तुम नहीं हो—यह, जो प्रश्न पूछ रहा है; यह तुम्हारा मन है—तुम्हारा दुश्मन—जो तुम्हारे माध्यम से प्रश्न पैदा कर रहा है। अब यह मन ही है जो पूछ रहा है: “भगवान, आप हमें सतत समझाते हैं कि ‘होशपूर्ण होओ,’ कि ‘साक्षी बने’ लेकिन साक्षी चेतना क्या वास्तव में गीत गा सकती है, नृत्य कर सकती है और जीवन का स्वाद ले सकती है?”

हां! वास्तव में, केवल साक्षी चेतना ही गीत गा सकती है, नृत्य कर सकती है और जीवन का स्वाद ले सकती है। यह विरोधाभासी प्रतीत होगा—यह है!—लेकिन वह सब जो सत्य है वह हमेशा विरोधाभासी है। स्मरण रखो: यदि सत्य विरोधाभासी नहीं है तो वह बिलकुल ही सत्य नहीं है, तब वह कुछ और ही है।

विरोधाभास सत्य का एक आधारभूत और अंतरस्थ गुण है। इस बात को अपने

हृदय में हमेशा के लिए उतर जाने दो कि सत्य मात्र ही विरोधाभासी है। यद्यपि सभी विरोधाभास सत्य नहीं हैं, लेकिन सभी सत्य विरोधाभास हैं। सत्य को एक विरोधाभास होना ही है क्योंकि उसे निगेटिव और पॉजिटिव दोनों ध्रुव एक साथ होना है—फिर भी वह एक अतिक्रमण है। सत्य को जीवन भी होना है और मृत्यु भी—और भी कुछ अधिक—‘प्लस’। ‘कुछ और अधिक’—‘प्लस’ से मेरा अर्थ है: दोनों का अतिक्रमण—दोनों, और दोनों नहीं। यह है परम विरोधाभास।

जब तुम मन से ग्रसित हो, तब तुम कैसे गीत गा सकते हो? मन दुख निर्मित करता है, और दुख से गीत नहीं उठ सकते। जब तुम मन से बंधे हो, तब तुम कैसे नृत्य कर सकते हो? हां, तुम कुछ खाली-खाली मुद्राओं से गुजर कर उसे नृत्य कह सकते हो, लेकिन वह वास्तविक नृत्य नहीं है।

केवल मीरा जानती है कि वास्तविक नृत्य क्या है—या कृष्ण, या चैतन्य; ये हैं वे लोग जो जानते हैं वास्तविक नृत्य। अन्य दूसरे तो नृत्य की टेक्नीक मात्र ही जानते हैं, लेकिन उनमें कुछ भी अतिरेक से नहीं बहता; उनकी ऊर्जाएँ अप्रवाहित डबरा बन गई हैं। जो लोग मन में जीते हैं, वे अहंकार में जी रहे हैं, और अहंकार नृत्य नहीं कर सकता। वह एक प्रदर्शन या दिखावा कर सकता है, लेकिन नृत्य नहीं।

वास्तविक नृत्य तो केवल तभी घटता है जब तुम साक्षी बन जाते हो। तब तुम इतने आनंदित हो उठते हो कि स्वयं आनंद ही

तुमसे अतिरेक में बहने लगता है—यही नृत्य है। यह आनंद ही गीत गा उठता है; अपने आप ही एक गीत का आविर्भाव होता है। और जब तुम साक्षी होते हो तभी तुम जीवन का स्वाद ले सकते हो।

मैं तुम्हारे प्रश्न को समझ सकता हूँ। तुम चिंतित हो कि एक साक्षी बन कर तुम शायद जीवन के एक तमाशबीन, एक दर्शक मात्र बन जाओगे। नहीं, तमाशबीन होना एक बात है और साक्षी होना बिलकुल ही अलग बात है, वह गुणात्मक रूप से भिन्न है। तमाशबीन व्यक्ति तटस्थ और निष्क्रिय होता है; वह ढीला होता है, वह एक प्रकार की नींद में है। वह जीवन में भागीदार नहीं होता। वह भयभीत है; वह एक कायर है। वह किनारे पर खड़ा रहता है और दूसरों को जीवन जीते हुए देखता रहता है। यही तो तुम पूरे जीवन कर रहे हो—चलचित्र में दूसरा अभिनय करता है और तुम देखते हो। तुम एक तमाशबीन भर हो!

लोग लगातार घंटों तक टेलीविजन के सामने चिपके हुए हैं—तमाशबीन! कोई दूसरा व्यक्ति गा रहा है—तुम सुन रहे हो। कोई दूसरा व्यक्ति नृत्य कर रहा है—तुम मात्र एक दर्शक हो। कोई दूसरा प्रेम कर रहा है—और तुम बस देख रहे हो; तुम भागीदार नहीं हो। तुम्हें जो स्वयं करना चाहिए था उसे व्यवसायी लोग कर रहे हैं।

एक साक्षी हुआ व्यक्ति तमाशबीन नहीं है।

तब साक्षी क्या है? वह व्यक्ति साक्षी है, जो भागीदार होता है, लेकिन फिर भी

सजग बना रहता है। साक्षी हुआ व्यक्ति वेई-वू-वेई की अवस्था में है। यह लाओत्सू का शब्द है; इसका अर्थ है—अक्रिया से निकली हुई क्रिया। साक्षी वह व्यक्ति नहीं है जिसने जीवन से पलायन किया है। वह जीवन को जीता है—कहीं अधिक समग्रता से, कहीं अधिक संप्राण, लेकिन कहीं गहरे में एक साक्षी बना रहता है, वह सतत स्मरण रखता है: “मैं चैतन्य हूँ।”

इसका प्रयोग करो। सड़क पर चलते हुए स्मरण रखो कि तुम चैतन्य हो। चलना तो जारी रहता है और एक नई बात जुड़ जाती है—एक नया सौंदर्य, एक नया ऐश्वर्य जुड़ जाता है। बाह्य कृत्य में एक आंतरिक गुणवत्ता जुड़ जाती है। तुम चेतना की एक लपट बन जाते हो, और तब चलने में एक नया ही आनंद आ जाता है: तुम पृथ्वी पर हो लेकिन तुम्हारे पैर पृथ्वी को बिलकुल नहीं छूते।

यही तो बुद्ध ने कहा है: नदी से गुजरो, लेकिन पानी तुम्हारे पैरों को न छूए।

पूरब के प्रतीक कमल का यही अर्थ है। तुमने बुद्ध की मूर्तियाँ या चित्र देखे होंगे—कमल के फूल पर विराजमान; यह एक रूपक है। कमल एक ऐसा फूल है जो पानी में रहता है, लेकिन पानी उसे स्पर्श नहीं कर सकता। कमल किसी हिमालय की गुफा में पलायन नहीं करता; वह पानी में रहता है और फिर भी पानी से बहुत-बहुत दूर बना रहता है। बीच बाजार में रहना लेकिन बाजार को अपने अंतः में प्रविष्ट न होने देना; संसार में होना,

लेकिन संसार के न होना: यह है साक्षी चेतना का अर्थ।

यही है मेरा अर्थ तुम्हें बार-बार यह कहने का कि जागरूक रहो। मैं कृत्य के विरोध में नहीं हूँ लेकिन तुम्हारे कृत्य होश से आलोकित होने चाहिए। वे लोग जो कर्म के विरोध में हैं, वे दमनकारी ही होने वाले हैं, और सब प्रकार के दमन तुम्हें रुग्ण बनाते हैं—स्वस्थ नहीं, संपूर्ण नहीं।

मठों में रहने वाले भिक्षु—चाहे वे कैथोलिक हों या हिंदू, जैन साधु हों या बौद्ध भिक्षु—जो जीवन को छोड़कर उससे पलायन कर गए हैं—वे सच्चे संन्यासी नहीं हैं। उन्होंने अपनी इच्छाओं का दमन कर लिया है, और वे संसार से, कर्म के संसार से दूर हट गए हैं। यदि तुम कर्म के संसार से ही दूर हट गए हो, तो तुम फिर कहां साक्षी बन पाओगे। होशपूर्ण होने के लिए कर्म का संसार ही सबसे अच्छा अवसर है। वह तुम्हें चुनौती देता है; वह सतत एक चुनौती बना रहता है। या तो तुम मूर्च्छा में पड़ जाओ और एक कर्ता बन जाओ—तब तुम एक संसारी व्यक्ति, एक स्वप्न देखने वाले, भ्रान्तियों के एक शिकार हो—और या तुम साक्षी बन जाओ और संसार में रहना जारी रखो। तब तुम्हारे कर्म की एक अलग ही गुणवत्ता होती है—वह सच में ही कृत्य होता है। जो होशपूर्ण नहीं हैं, उनके कृत्य वास्तव में क्रियाएं नहीं हैं लेकिन प्रतिक्रियाएं हैं। वे केवल प्रतिक्रियाएं करते रहते हैं।

कोई तुम्हारा अपमान कर देता है और

तुम तुरंत प्रतिक्रिया करते हो। तुम बुद्ध का अपमान करो—वे प्रतिक्रिया नहीं करते, वे कृत्य करते हैं। प्रतिक्रिया दूसरे पर आधारित है: कोई दूसरा तुम्हारा एक बटन दबाता है और तुम बस एक शिकार हो, एक गुलाम; तुम एक मशीन की तरह व्यवहार करते हो।

एक सच्चा व्यक्ति जो जानता है कि होश क्या है, वह प्रतिक्रिया कभी नहीं करता है; वह अपने स्वयं के होश के आधार पर कृत्य करता है। उसका कृत्य दूसरे के कर्म पर आधारित नहीं होता; कोई दूसरा व्यक्ति उसका बटन नहीं दबा सकता। यदि उसे सहजता से लगता है कि यह करना सही है तो वह उसे करता है; यदि उसे लगता है कि यह अनावश्यक है, तो वह शांत और निष्क्रिय बना रहता है। वह दमनकारी वृत्ति का नहीं है; वह हमेशा खुला हुआ और अभिव्यक्ति-उन्मुख है। उसकी अभिव्यक्ति बहु-आयामी है। गीत में, काव्य में, नृत्य में, प्रेम में, प्रार्थना में, करुणा में वह बहता है।

यदि तुम होशपूर्ण नहीं होते, तब केवल दो संभावनाएं रहती हैं: या तो तुम दमनात्मक होते हो, या फिर अति-भोग में रत होते हो। दोनों ही हालत में तुम बंधन में बने रहते हो।

मठ के बाहर ही एक भिक्षुणी पर बलात्कार कर दिया गया था। अंततः जब इस घटना का पता चला, तब वह भिक्षुणी मठ के अंदर ले जाई गई और पास के एक डॉक्टर को बुलाया गया।

डॉक्टर आया, देखा, हाथ उठाया और बोला, “इस काम के लिए तो प्लास्टिक सर्जन की जरूरत है!”

प्लास्टिक सर्जन बुलाया गया। जब

उसने उस बेचारी भिक्षुणी को देखा तो दया से बोला, “हे परमात्मा! सब कितना छिन्न-भिन्न है! मुझे कहां से शुरू करना चाहिए?”

मदर सुपीरियर ने उत्तर दिया, “ओह, यह सरल है। लेकिन सबसे पहले तुम उसके चेहरे पर अंकित मुस्कराहट को हटाओ!”।

स्वीकार और साक्षी से मन का अतिक्रमण

जब कभी मेरे मन का अंधेरा हिस्सा ऊपर आता है, तो वह मुझे बहुत डरा देता है। मेरे लिए यह स्वीकार करना बहुत कठिन है कि यह मेरे मन के उजले हिस्से का एक दूसरा ध्रुव मात्र है। मैं अपने आपको गंदा और अपराधी अनुभव करता हूँ और आपकी निर्मल और पावन उपस्थिति में आपके निकट बैठने के लिए मैं स्वयं को सुपात्र नहीं लगता। मैं अपने मन के सभी पहलुओं का साक्षात्कार करना चाहता हूँ क्योंकि मैं आपको बहुधा यह कहते हुए सुनता हूँ कि मन का अतिक्रमण करने का सूत्र है: उसका स्वीकार करना। कृपया क्या आप स्वीकारभाव पर बोलेंगे?

समझने के लिए आधारभूत बात यह है कि तुम मन नहीं हो—न तो उजले हिस्से और न अंधेरे हिस्से। यदि तुम मन के सुंदर हिस्से से तादात्म्य कर लेते हो, तो फिर मन के कुरूप हिस्से से अपना तादात्म्य तोड़ लेना तुम्हारे लिए असंभव है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम पूरा सिक्का फेंक सकते हो या पूरा सिक्का रख सकते हो, लेकिन तुम उसे दो हिस्सों में विभाजित नहीं कर सकते।

और मनुष्य की सारी चिंता यह है कि वह उन सब बातों को चुन लेना चाहता है जो सुंदर और उजली लगती हैं। वह काले बादलों को छोड़कर सभी चमकीली रेखाओं को चुन लेना चाहता है। लेकिन वह नहीं जानता कि काले बादलों के बिना चमकीली रेखाओं का अस्तित्व ही नहीं हो सकता। काले बादल तो पृष्ठभूमि निर्मित करते हैं और वे अनिवार्यरूपेण जरूरी हैं ताकि चमकीली रेखा दिखाई पड़ सके।

चुनाव करना ही चिंता है। चुनाव करने

का अर्थ है: स्वयं के लिए मुसीबतें निर्मित करना।

चुनावरहित होने का अर्थ है: तुम्हारे पास मन है और उसका एक हिस्सा अंधकारपूर्ण है और दूसरा हिस्सा उज्ज्वल है—ऐसा है—इसमें समस्या क्या है? इसका तुमसे क्या लेना-देना है? इसके लिए तुम्हें क्यों चिंतित होना चाहिए?

जिस क्षण तुम चुनाव नहीं कर रहे होते, सब चिंताएं विलीन हो जाती हैं; एक गहन स्वीकारभाव का उदय होता है कि मन का ऐसा स्वभाव ही है—कि मन को ऐसा ही होना है। और वास्तव में यह तुम्हारी समस्या नहीं है क्योंकि तुम मन नहीं हो। यदि तुम मन मात्र ही होते तो भी कोई समस्या न हुई होती, क्योंकि तब कौन चुनता और अतिक्रमण के लिए कौन अभीप्सा करता? फिर कौन स्वीकार करने का या स्वीकार को समझने का प्रयास करता?

तुम भिन्न हो, बिल्कुल भिन्न हो। तुम

साक्षी हो और कुछ भी नहीं। तुम एक देखने वाले हो जो किसी भी सुखद बात से तादात्म्य कर लेता है और भूल जाता है कि सुखद के पीछे उसकी छाया की तरह दुःखद भी चला आ रहा है।

तुम मन के सुखद हिस्से से तकलीफ नहीं पाते—तुम तो उसका मजा लेते हो। तकलीफ आती है जब विपरीत ध्रुव सक्रिय हो जाता है; तब तुम टूट-फूट जाते हो। लेकिन तुमने ही सारे तकलीफ की शुरुआत की थी। एक साक्षी होने से गिर कर तुमने तादात्म्य बना लिया।

अदम और ईव के पतन की बाइबिल वाली कहानी मात्र एक कल्पना है, लेकिन यह है वास्तविक पतन : साक्षी होने की अवस्था से नीचे गिर कर किसी चीज से तादात्म्य कर लेना और अपना साक्षित्व खो बैठना।

कभी प्रयोग करके देखो : मन जो भी है उसे वैसा ही रहने दो। स्मरण रखो : तुम मन नहीं हो। और तुम एक बड़े आश्चर्य का सामना करने वाले हो। जैसे-जैसे तुम्हारा मन से तादात्म्य कम होने लगता है, मन कम शक्तिशाली होने लगता है क्योंकि उसकी शक्ति तुम्हारे तादात्म्य से आती है; वह तुम्हारा खून चूसता है। लेकिन जब तुम दूर और तटस्थ खड़े होने लगते हो, मन छोटा होने लगता है।

जिस दिन मन से तुम्हारा तादात्म्य टूटता है—एक क्षण के लिए भी—तब एक रहस्योद्घाटन होता है : मन मर जाता है, मन बच नहीं रहता। जहां वह इतना भरपूर था, इतना सतत चल ही रहा था—दिन

रात, जागते-सोते वह सदा सक्रिय रहा है—अचानक वह विलीन हो जाता है।

तुम चारों ओर देखते हो और सब खाली है, सब शून्य है। और मन के साथ ही अहंकार भी विलीन हो जाता है।

फिर बच रहती है चैतन्य की एक गुणवत्ता जिसमें कोई 'मैं' नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा तुम उसे "हूँ-पन" से मिलता हुआ कह सकते हो, लेकिन "मैं-पन" नहीं कह सकते। इसे "है-पन" कहना और भी ज्यादा सही होगा, क्योंकि "हूँ-पन" में भी "मैं" की कुछ न कुछ छाया बनी ही रहती है। जिस क्षण तुम इसके "है-पन" को जान लेते हो, उस क्षण यह ब्रह्मांडीय हो जाता है।

मन के विलीन होते ही "मैं" भी विलीन हो जाता है। साथ ही और भी अनेक चीजें विलीन हो जाती हैं, जो तुम्हारे लिए बहुत महत्वपूर्ण थीं, जो तुम्हारे लिए बहुत तकलीफदेह थीं। तुम उन्हें हल करने की कोशिश कर रहे थे और वे अधिक से अधिक जटिल बनती जा रही थीं; हर बात एक समस्या थी, एक चिंता थी, और उससे छुटकारे का कोई रास्ता नहीं दिखता था।

मैं तुम्हें एक बोधकथा का स्मरण दिलाऊंगा जिसका शीर्षक है—“हंस मुक्त हो गया है।” इसका संबंध तुम्हारे मन और तुम्हारे 'है-पन' से है।

एक जैन सद्गुरु अपने शिष्य से एक कोआन, एक पहेली पर ध्यान करने को कहते हैं। हंस का एक छोटा-सा बच्चा एक बोतल के अंदर डाल दिया जाता है, फिर उसे बोतल के भीतर ही

खिलाया-पिलाया जाता है। वह बच्चा धीरे-धीरे बड़ा होता चला जाता है और अंततः पूरे बोतल को अपनी आकृति से भर डालता है। अब वह इतना बड़ा हो गया है कि वह बोतल के मुँह से बाहर नहीं निकल सकता; बोतल का मुँह अब छोटा पड़ गया है। और पहेली यह कहती है कि तुम्हें हंस को बाहर निकालना है—बिना बोतल को तोड़े और बिना हंस को मारे।

अब यह बुद्धि चकराने वाली बात है। तुम क्या कर सकते हो? हंस बहुत बड़ा हो गया है, और तुम उसे बिना बोतल को तोड़े बाहर नहीं निकाल सकते, लेकिन तुम्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं है। या तुम उसे मार कर बाहर निकाल सकते हो; तब तुम इस बात की चिंता नहीं करते कि हंस मर गया है। लेकिन उसे मारने की भी अनुमति नहीं है।

दिन-ब-दिन शिष्य इस पहेली पर ध्यान करता है; कोई रास्ता नहीं निकाल पाता। हर पहलू से विचार करता है, लेकिन वास्तव में इसका कोई हल नहीं है। थक गया, बिलकुल निर्जीव-सा हो गया—अचानक एक अंतर्दृष्टि धटित होती है। अचानक वह समझ पाता है कि सद्गुरु की रुचि बोतल में या हंस में नहीं हो सकती; शायद ये किसी दूसरी चीज के प्रतीक हैं।

मन बोतल है और तुम हंस हो...लेकिन साक्षी की साधना से इस पहेली का हल हो जाता है। तुम मन से इतना ज्यादा तादात्म्य कर सकते हो कि तुम अनुभव करना शुरू कर दो कि तुम

मन में कैद हो, जबकि वास्तव में तुम मन में कैद हो नहीं।

वह शिष्य दौड़ता हुआ सद्गुरु के पास आता है—यह कहने के लिए कि हंस बाहर आ गया है। और सद्गुरु कहते हैं: “तुमने बात समझ ली है। अब हंस को बाहर ही रखो। वह कभी बोतल में बंद रहा ही नहीं है।”

यदि तुम हंस और बोतल से संघर्ष करते ही रहे, तो तुम्हारे लिए इस पहेली को हल करने की कोई संभावना नहीं है। यह एक अंतर्बोध है कि “हंस और बोतल किसी दूसरी बात के प्रतीक होने चाहिए अन्यथा सद्गुरु मुझे यह पहेली न देते। और ये प्रतीक क्या हैं?” क्योंकि सद्गुरु और शिष्य के बीच की सारी प्रक्रिया, सारा व्यवहार मन और सजगता के संबंध में ही है।

सजगता है वह हंस जो मन की बोतल में बंद नहीं है। लेकिन तुम सोच रहे हो कि हंस बोतल में बंद है और हर किसी से पूछ रहे हो कि उसे कैसे बाहर निकाला जाए। और ऐसे मूढ़ मौजूद हैं जो तुम्हें विधियों से सहायता करने को तैयार हैं—कि तुम कैसे बाहर निकलो। मैं उन्हें मूढ़ कहता हूँ क्योंकि वे इस बात को बिलकुल ही नहीं समझते।

हंस मुक्त ही है और कभी भी बोतल के भीतर नहीं रहा, इसलिए उसे बाहर लाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मन विचारों का एक काफिला भर है जो मस्तिष्क के परदे पर तुम्हारे सामने से गुजरता है। तुम एक द्रष्टा हो। लेकिन तुम सुंदर बातों से तादात्म्य बनाने लगते

हो—वे घुंस की तरह हैं। एक बार तुम सुंदर चीजों द्वारा पकड़ लिए गए, तो फिर तुम कुरूप चीजों से भी पकड़ लिए जाओगे, क्योंकि बिना द्वैत के मन जी ही नहीं सकता है। द्वैत में सजगता जी नहीं सकती और मन नहीं जी सकता द्वैत के बिना।

सजगता है अद्वैतात्मक, और मन है द्वंद्व। इसलिए बस देखो।

मैं तुम्हें “कोई हल” नहीं सिखाता। मैं तुम्हें “एक मात्र हल” सिखाता हूँ। बस थोड़ा पीछे हट जाओ और देखो। अपने मन और स्वयं के बीच एक दूरी निर्मित करो। चाहे वह अच्छा हो—सुंदर हो, सुस्वादु हो, ऐसा कुछ हो जिसका तुम गहराई से मजा लेना चाहते हो—या वह कुरूप हो: तुम हमेशा मन से जितने दूर रह सको, रहो। उन्हें उसी तरह देखो जैसे तुम एक चलचित्र देखते हो। लेकिन लोग तो चलचित्रों में भी तादात्म्य कर लेते हैं।

मैंने देखा है, जब मैं युवा था—पिछले बहुत समय से मैंने कोई चलचित्र नहीं देखा है—लेकिन मैंने देखा है लोगों को रोते हुए... आंसू बह रहा है...। यह अच्छा है कि सिनेमागृहों में अंधेरा होता है; यह उन्हें सहायक होता है ताकि वे कोई उलझन अनुभव न करें—और यथार्थ में कुछ भी नहीं घट रहा है।

मैं अपने पिताजी से पूछता था, “क्या आपने देखा? वह व्यक्ति जो आपके बाजू में बैठा था, वह रो रहा था।”

वे बोले, “पूरा हॉल रो रहा था। दृश्य ही कुछ ऐसा था।”

“लेकिन,” मैंने कहा, “वहां तो केवल एक परदा है और कुछ भी नहीं। कोई भी मारा नहीं गया; कोई दुखद घटना नहीं घट रही है—बस एक फिल्म का प्रक्षेपण है। बस कुछ चित्र परदे पर गुजर रहे हैं—और लोग हंसते हैं, लोग रोते हैं और तीन घंटों के लिए वे करीब-करीब खो जाते हैं। वे चलचित्र के ही हिस्से ही हो जाते हैं; वे किसी अभिनेता से तादात्म्य कर लेते हैं।”

मेरे पिताजी ने मुझसे कहा, “यदि तुम लोगों की प्रतिक्रियाओं पर प्रश्न उठाते रहोगे, तो तुम चलचित्र का आनंद ही नहीं उठा सकते।”

मैंने कहा, “मैं फिल्म का आनंद ले सकता हूँ, लेकिन मैं रोना नहीं चाहता। मैं उसमें कोई हर्ष नहीं देखता। मैं इसे एक फिल्म की तरह देख सकता हूँ, लेकिन मैं उसका एक अंग नहीं बन सकता। ये सब लोग तो चलचित्र के अंग ही बने जा रहे हैं।”

तुम किसी भी बात से तादात्म्य बना लेते हो। लोग दूसरे व्यक्तियों से तादात्म्य बना लेते हैं फिर वे स्वयं के लिए दुख निर्मित कर लेते हैं। वे चीजों से तादात्म्य कर लेते हैं, फिर यदि वह वस्तु खो जाए तो वे दुखी हो जाते हैं।

तुम्हारे दुख का मूल कारण तादात्म्य है। और प्रत्येक तादात्म्य मन से तादात्म्य है। मन से किनारे हट जाओ; मन को गुजर जाने दो। फिर शीघ्र ही तुम देख पाओगे कि कोई समस्या ही नहीं है—हंस मुक्त ही है।

तुम्हें बोतल तोड़नी नहीं है और न ही तुम्हें हंस को मार डालना है।²

शिखर पर खड़ा द्रष्टा

लगता है कि
मैं न तो बिलकुल पूरी तरह
संसार में हूँ, और न ही
पर्वत शिखर पर
द्रष्टा की तरह खड़ा हूँ।
एक ही जगह
किस प्रकार हुआ जाए ?
मुझे लगता है
मैं जो कुछ भी करता हूँ
उसके बीच मझधार में ही होता हूँ।

तो ठीक वही स्थान है, जहां तुम्हें
होना चाहिए।

तुम समस्याएं ही खड़ी किए चले जाते हो। जहां भी तुम हो, वहीं रहो। शिखर पर द्रष्टा बन कर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। कोई 'चाहिए' नहीं होना चाहिए। एक बार 'चाहिए' जीवन में प्रवेश कर गया तो तुम विषाक्त हो ही गए। कोई लक्ष्य नहीं होना चाहिए। कोई सही-गलत नहीं होना चाहिए। यही एक पाप है : विभाजन की, मूल्यों की, निंदा और प्रशंसा की भाषा में सोचना।

जहां भी तुम हो... शिखर पर खड़े द्रष्टा और सांसारिक मनुष्य के बीच की दशा में कोई गलत बात नहीं है। ठीक वहीं तुम्हें होना चाहिए। और मैं कहता हूँ : तुम जहां भी हो, यदि उसको स्वीकार कर सको, तो तभी और वहीं तत्क्षण तुम शिखर पर खड़े

द्रष्टा बन जाते हो। नरक में भी, यदि तुम उसको स्वीकार कर लो, तो नरक समाप्त हो जाता है। क्योंकि नरक केवल तुम्हारी अस्वीकृति में ही बना रह सकता है। नरक विलीन हो जाता है और स्वर्ग प्रकट होता है। जो कुछ भी तुम स्वीकार कर लेते हो वह स्वर्गिक हो जाता है, और जो कुछ भी तुम अस्वीकृत कर देते हो वह नरक बन जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि किसी संत को नरक में नहीं डाला जा सकता क्योंकि वह उसे रूपांतरित कर लेने की कीमिया जानता है। तुमने सुना है कि पापी नरक जाते हैं और संत स्वर्ग जाते हैं—लेकिन तुमने गलत सुना है। बात इससे ठीक उलटी है : पापी जहां भी जाते हैं वहां नरक बना लेते हैं, और संत जहां भी जाते हैं वहां स्वर्ग बना लेते हैं। संतों को स्वर्ग भेजा नहीं

जाता। भेजने-करने के लिए कोई बैठा हुआ नहीं है—कोई भी नहीं है। लेकिन जहां भी वे जाते हैं, यह उनके होने का ढंग है: वे अपना स्वर्ग बना लेते हैं। अपना स्वर्ग वे अपने साथ, अपने भीतर लेकर चलते हैं। और पापी?—तुम उन्हें स्वर्ग में भेज सकते हो: वे नरक बना लेंगे। वे और कुछ कर भी नहीं सकते।

तो एक संत या पापी की परिभाषा क्या है? मेरी परिभाषा है: संत वह है जो हर चीज को स्वर्ग में बदल लेने की कीमिया का राज जानता है। और पापी वह है जो चीजों को सुंदर अस्तित्व में रूपांतरित कर लेने का राज नहीं जानता। बल्कि वह चीजों को असुंदर ही करता चला जाता है।

तुम जो भी हो तुम्हारे चारों ओर वही प्रतिबिम्बित होगा। तो कुछ और होने की चेष्टा मत करो। और न ही किसी और स्थान पर होने की चेष्टा करो। यही वह रोग है जिसे मनुष्य कहते हैं: उसे हमेशा कुछ और बनना है, कहीं और होना है; जो है उसे वह सदा अस्वीकृत करेगा, और जो नहीं है उसके पीछे दौड़ेगा। यही वह रोग है जिसे मनुष्य कहते हैं।

सचेत हो जाओ। क्या तुम्हें यह दिखाई पड़ता है? यह तो सीधी-सी देखने की बात है। मैं इसके बारे में कोई सैद्धांतिक व्याख्या नहीं कर रहा हूँ; मैं कोई दार्शनिक नहीं हूँ। मैं तो एक स्पष्ट और नग्न सत्य की ओर संकेत कर रहा हूँ—कि तुम चाहे जहां भी हो, यदि इस क्षण में जी सको और भविष्य को, लक्ष्यों को, कुछ और बनने के खयाल को भूल सको तो तत्क्षण तुम्हारे

चारों ओर का संसार रूपांतरित हो जाता है। तुम एक रूपांतरणकारी शक्ति बन गए।

स्वीकार—एक गहन और समग्र स्वीकारभाव ही सारा का सारा धर्म है।

अ चाहता है ब बनना; ब चाहता है स बनना। फिर बनने का रोग पैदा होता है।

तुम एक बनने की प्रक्रिया नहीं हो; तुम एक होना हो। तुम पहले से ही वही हो जो तुम हो सकते हो, जो तुम कभी भी हो सकते हो—तुम पहले से ही वही हो। तुम्हारे बाबत और ज्यादा कुछ भी नहीं किया जा सकता। तुम एक पूर्ण निर्मित घटना हो।

इस कहानी को, कि परमात्मा ने संसार का सृजन किया, मैं यही अर्थ देता हूँ: जब पूर्ण सृजन करता है तो सृष्टि भी परिपूर्ण होती है। जब परमात्मा सृजन करता है, तो तुम उसमें सुधार कैसे कर सकते हो? जरा इस बात की पूरी मूढ़ता पर विचार तो करो; पूरी बात ही मूढ़तापूर्ण है।

तुम परमात्मा के किए पर सुधार करने की चेष्टा कर रहे हो; तुम सुधार नहीं कर सकते। तब बस इतना ही है कि तुम दुखी हो सकते हो। और व्यर्थ ही पीड़ित हो सकते हो। और ऐसी बीमारियां तुम्हें झेलनी पड़ेंगी जो तुम्हारी कल्पना के अतिरिक्त और कहीं नहीं हैं। परमात्मा के सृजन करने का अर्थ है: पूर्णता से पूर्णता आती है।

तुम परिपूर्ण हो! और कुछ भी नहीं चाहिए। ठीक अभी, इसी क्षण अपने

भीतर झांको। सीधे ही भीतर देखो। किस चीज की जरूरत है? सब कुछ परिपूर्ण और सुंदर है। मैं एक बादल भी वहां नहीं देख सकता। बस अपने भीतर झांको—तुम्हारे अंतर्आकाश में एक बादल भी नहीं है। सब कुछ प्रकाश से परिपूर्ण है।

लेकिन देर-अबेर मन कुछ और होने को, कहीं और चलने को, बनने को कहेगा। मन तुम्हें 'होने' की आज्ञा नहीं देता। मन है 'बनना', और तुम्हारी आत्मा है 'होना'। इसलिए बुद्धपुरुष कहे चले जाते हैं, "जब तक तुम सब इच्छाओं को नहीं त्याग देते, तब तक उपलब्ध नहीं हो सकते!"

इच्छा का अर्थ है बनना। इच्छा का अर्थ है कुछ और होना। इच्छा का अर्थ है अपने को जैसे हो वैसा स्वीकार न करना, एक पूर्ण 'हो' की दशा में न होना—चाहे कैसे भी परिस्थिति क्यों न हो।

जीवन को "हो" कहना ही धार्मिक होना है; जीवन को "न" कहने का अर्थ है अधार्मिक होना। और जब भी तुम किसी चीज की इच्छा करते हो तो तुम "न" कह रहे हो। तुम कह रहे हो कि इससे कुछ बेहतर संभव है।

वृक्ष खुश हैं, पक्षी खुश हैं और बादल खुश हैं—क्योंकि उनमें कुछ बनने की कामना नहीं है। वे जो हैं, सो हैं।

गुलाब की झाड़ी कमल होने की चेष्टा नहीं कर रही है। नहीं, गुलाब की झाड़ी गुलाब की झाड़ी होने में ही बिलकुल प्रसन्न है। गुलाब की झाड़ी को तुम फुसला नहीं

सकते। कमल का तुम कितना ही विज्ञापन क्यों न करो, तुम गुलाब की झाड़ी की बुद्धि भ्रष्ट नहीं कर सकते कि वह कमल बन जाए। वह तो हंस पड़ेगी—क्योंकि गुलाब की झाड़ी गुलाब की झाड़ी है। वह अपने होने में थिर और केंद्रित है। यही कारण है कि पूरी प्रकृति किसी भी तरह के रोग से मुक्त है: शांत और मौन और निश्चल। और स्थिर।

केवल मानव मन ही अराजकता में है, क्योंकि हर व्यक्ति कुछ और बनने की लालसा से भरा हुआ है। हजारों जन्मों से तुम यही कर रहे हो। और यदि तुम अब नहीं जागते, तो तुम कब सोचते हो कि

जागोगे? जागने के लिए तुम परिपक्व हो।

इसी क्षण से जीना, आनंदित होना और आह्लादित होना शुरू करो। चाहना छोड़ो! जो तुम हो, उसका आनंद लो।

अपने होने में आह्लादित होओ। और फिर अचानक समय मिट जाता है, क्योंकि समय इच्छा के कारण ही होता है। भविष्य इच्छा के कारण ही होता है।

फिर तुम पक्षियों की भांति हो जाओगे; सुनो उनको। फिर तुम वृक्षों की भांति हो जाओगे; ताजगी को, हरियाली को, फूलों को देखो।

जहां हो कृपया वहीं हो रहो। मैं यहां तुममें कोई नई इच्छा पैदा करने के लिए

नहीं हूं; मैं तो यहां तुम्हें इच्छा की पूरी निरर्थकता का बोध दिलाने के लिए हूं। इच्छा संसार है।

इच्छा की निरर्थकता को समझ लेना ही संबुद्ध होना है। जिसने यह खोज लिया कि जो वह सदा से होना चाहता था वह पहले से ही है, तो वह बुद्ध हुआ। और तुम सब बुद्ध हो, चाहे कितनी ही गहरी नींद में क्यों न सोए होओ। और खरोंटे भर रहे होओ उससे कोई भेद नहीं पड़ता।

भुझे अपना अलार्म बन जाने दो। अपनी आंखें खोलो। बहुत देर तुम सो लिए। अब जागने का समय हुआ। सुबह तुम्हारे द्वार पर दस्तक देती है।³

मन को भटकने दो : तुम बस देखो

ध्यान करते समय भी मेरा मन पांच सौ मील प्रति घंटा की रफ्तार से दौड़ता रहता है। मौन का मुझे कभी अनुभव नहीं होता, और जो भी साक्षीभाव घटता है वह एक चौंध के जैसा क्षणिक होता है। क्या मैं अपना समय व्यर्थ कर रहा हूँ?

तुम्हारा मन तो बहुत मंद-गति है। पांच सौ मील प्रति घंटा, बस? और इसे तुम रफ्तार मानते हो? तुम तो बहुत ही मंदगति हो। मन तो इतनी तेज दौड़ता है कि कोई गति नहीं जानता। वह तो प्रकाश से भी तेज है। प्रकाश एक सैकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की दूरी तय कर लेता है; मन उससे भी तेज है। लेकिन चिंता करने की कोई बात नहीं है—यही तो मन का सौंदर्य है, एक महान गुण है। इसे नकारात्मक रूप से लेने, या इससे लड़ने की अपेक्षा मन से मित्रता बनाओ।

तुम कहते हो: “ध्यान करते समय भी मेरा मन पांच सौ मील प्रति घंटा की रफ्तार से दौड़ता रहता है।”—उसे दौड़ने दो। और भी तेज दौड़ने दो। तुम द्रष्टा बने रहो। तुम मन को इतनी तेजी से, इतनी गति से चारों

ओर दौड़ता हुआ देखते रहो। इसका आनंद लो! मन के इस खेल का आनंद लो।

इसके लिए संस्कृत में हमारे पास एक विशेष शब्द है; इसे हम कहते हैं चिद्विलास—चेतना का खेल। इसका आनंद लो!—सितारों की ओर दौड़ते, तेजी से इधर-उधर डोलते और अस्तित्व भर में कूदते-फांदते मन के इस खेल का आनंद लो। इसमें गलत क्या है? इसे एक सुंदर नृत्य बन जाने दो। इसे स्वीकार करो।

मुझे लगता है कि तुम इसे रोकने की चेष्टा कर रहे हो—यह तुम नहीं कर सकते। मन को कोई नहीं रोक सकता! हां, मन एक दिन रुक जाता है, लेकिन उसे कोई रोक नहीं सकता। हां, मन एक दिन रुक जाता है, लेकिन वह तुम्हारे प्रयास से नहीं होता। मन तुम्हारी समझ से ही रुक जाता है।

तुम बस देखते रहो और यह देखने की चेष्टा करो कि क्या हो रहा है, यह मन क्यों दौड़ रहा है। यह बिना किसी कारण के नहीं दौड़ रहा है। यह देखने की चेष्टा करो कि यह मन क्यों दौड़ रहा है, किस ओर दौड़ रहा है—जरूर तुम महत्वाकांक्षी होओगे। यदि यह धन के विषय में सोचता है, तो समझने की कोशिश करो। सवाल मन का नहीं है। तुम धन का सपना लेने लगते हो, कि तुम्हारी कोई लाटरी निकल गई है या 'यह' हो गया और 'वह' हो गया, और फिर तुम योजना भी बनाने लगते हो कि उसे खर्च कैसे करना, क्या खरीदना है और क्या नहीं खरीदना। या, मन सोचने लगता है कि तुम कहीं के राष्ट्रपति बन गए, प्रधानमंत्री बन गए, और फिर तुम सोचने लगते हो कि अब क्या करना है, देश को या संसार को कैसे चलाना है। मन को बस देखो!—कि किस ओर जा रहा है।

तुममें जरूर कोई बहुत गहरा बीज होगा। जब तक वह बीज न मिट जाए तब तक तुम मन को नहीं रोक सकते। मन तो बस तुम्हारे अंतर्गत बीज के आदेश का अनुसरण कर रहा है। कोई सेक्स के, काम के विषय में सोच रहा है; तो जरूर कहीं दमित कामुकता होगी। देखो कि मन किस ओर दौड़ रहा है। अपने भीतर गहरे झाँको और खोजो कि बीज कहाँ हैं।

मैंने सुना है: एक पादरी बड़ा घबड़ाया हुआ था। "सुनो," उसने अपने चर्च के चौकीदार से कहा, "किसी ने मेरी साइकिल चुरा ली है।"

"आप उस पर बैठ कर कहां-कहां गए थे?" चौकीदार ने पूछा।

"बस गांव में लोगों के यहां पूजा इत्यादि करवाने गया था।"

चौकीदार ने सलाह दी कि सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि रविवार को पादरी टेन कमांडमेंट्स पर उपदेश दे। "जब आप 'चोरी नहीं करनी चाहिए' पर पहुंचेंगे तो हम दोनों मिल कर लोगों के चेहरों को देखेंगे—और जल्दी ही हमें पता चल जाएगा।"

रविवार आया, पादरी बड़े जोर-शोर से कमांडमेंट्स पर उपदेश देने लगा, और फिर बोलते-बोलते बीच में ही अटक गया और अपनी बात बदल ली।

चौकीदार बोला, "श्रीमान, मैं सोचता था आप 'वह' बात भी करेंगे..."

"अरे, जानता हूँ; जानता हूँ; लेकिन देखो जब मैं, 'व्यभिचार नहीं करना चाहिए' पर पहुंचा तो मुझे याद आ गया कि मैंने अपनी साइकिल कहां छोड़ी है।"

बस इतना ही देख लो कि तुम अपनी 'साइकिल' कहाँ छोड़ आए हो। मन कुछ विशेष कारणों से दौड़ रहा है।

मन को समझ की, होश की जरूरत है। उसे रोकने की कोशिश मत करो। यदि तुम उसे रोकने की कोशिश करते हो, तो पहली बात तो तुम सफल हो ही नहीं सकते; दूसरी बात, यदि तुम सफल हो सके—यदि वर्षों तक कोई कठोर और सतत प्रयास करता रहे तो सफल हो भी सकता है—यदि तुम सफल हो गए, तो

तुम मंद हो जाओगे। इससे कोई सतारी नहीं होगी।

पहली बात, तुम सफल नहीं हो सकते; और यह अच्छा ही है कि तुम इसमें सफल नहीं हो सकते। यदि तुम सफल हो सकते, यदि तुम किसी तरह सफल हो जाते, तो बड़े दुर्भाग्य की बात होती—तुम मंद हो जाते, प्रतिभा खो देते। उस रफ्तार के कारण ही प्रतिभा है, उस रफ्तार के कारण ही विचार, तर्क और प्रतिभा की तलवार पर सतत धार पड़ रही है। कृपया उसको रोकने की कोशिश मत करो। मैं मंदबुद्धियों के पक्ष में नहीं हूँ, और न ही मैं यहां किसी को मूढ़ बनने में सहयोग देने के लिए हूँ।

धर्म के नाम पर बहुत से लोग मूढ़ हो गए हैं, वे बिल्कुल जड़बुद्धि ही हो गए हैं—बिना इस बात को समझे कि मन इतनी तेज क्यों दौड़ रहा है, वे उसे रोकने के प्रयास में लगे हुए हैं। मन बिना किसी कारण के तो नहीं दौड़ सकता। उसके कारण में, उसकी तह में, अचेतन की गहरी तहों में जाए बिना ही वे मन को रोकने की कोशिश करते हैं। रोक तो वे सकते हैं, लेकिन उन्हें एक मूल्य चुकाना होगा, और मूल्य यह होगा कि उनकी प्रतिभा खो जाएगी।

भारत में चारों ओर घूमो, तुम्हें हजारों संन्यासी और महात्मा मिलेंगे; उनकी आंखों में झाँको—हां, वे अच्छे लोग हैं, भले हैं, लेकिन मूढ़ हैं। यदि तुम उनकी आंखों में झाँको तो वहां कोई प्रतिभा नजर नहीं आएगी, कोई चमक नजर नहीं

आएगी। वे अरचनात्मक लोग हैं; उन्होंने कुछ भी सृजन नहीं किया। वे बस बैठे रहते हैं। वे बस किसी तरह घिसट रहे हैं; वे जिंदा लोग नहीं हैं। उन्होंने संसार की किसी भी तरह कोई मदद नहीं की है। उन्होंने तो कोई चित्र या कोई कविता या कोई गीत तक नहीं रचा, क्योंकि कविता रचने के लिए भी तुम्हें प्रतिभा चाहिए, बुद्धि के गुण चाहिए।

मैं यह सलाह नहीं दूंगा कि तुम मन को रोको, बल्कि उसे समझो। समझने से एक चमत्कार घटता है। चमत्कार यह होता है कि समझने के कारण, धीरे-धीरे, जब कारण तुम्हें समझ में आ जाते हैं और तुम उन कारणों में गहरे झांकने लेते हो, तो उन कारणों में गहरे झांकने से ही, वे कारण मिट जाते हैं, और मन धीमा पड़ जाता है। लेकिन प्रतिभा नहीं खोती, क्योंकि इसमें मन पर जोर नहीं डाला जाता।

यदि तुम समझ के द्वारा कारणों को नहीं मिटाते तो तुम क्या कर रहे हो? उदाहरण के लिए, जैसे तुम एक कार चला रहे हो, उसका एक्सेलेरेटर दबाते चले जाओ और साथ ही साथ उसकी ब्रेक भी लगाते रहो। तुम कार का पूरा मैकेनिज़्म खराब कर दोगे। और हर संभावना है कि तुम्हारी कोई दुर्घटना होगी। दोनों काम एक साथ नहीं किए जा सकते। यदि ब्रेक लगा रहे हो तो एक्सेलेरेटर को मत छेड़ो; उसे दबाओ मत। और यदि एक्सेलेरेटर दबा रहे हो, तो ब्रेक मत लगाओ। दोनों काम एक साथ मत करो, वरना तुम पूरा मैकेनिज़्म खराब कर दोगे। तुम दो विरोधाभासी चीजें कर

रहे हो।

तुममें महत्वाकांक्षा है—और मन को रोकने की कोशिश करते हो? महत्वाकांक्षा गति पैदा करती है, तो तुम गति को बढ़ा रहे हो—और फिर मन पर ब्रेक लगाते हो। तुम मन के पूरे सूक्ष्म मैकेनिज़्म को नष्ट कर दोगे, और मन बड़ी नाजुक घटना है, पूरे अस्तित्व में सबसे नाजुक घटना है। तो इस बारे में कोई मूढ़ता मत करो।

मन को रोकने की कोई जरूरत नहीं है।

तुम कहते हो: “मुझे कभी मौन का अनुभव नहीं होता, और जो भी साक्षीभाव घटता है वह एक चौंध के जैसा क्षणिक होता है।” प्रसन्न होओ। इसका भी बड़ा मूल्य है। ये झलकें साधारण झलकें नहीं हैं। उन्हें ऐसे ही मत लो। लाखों लोग हैं जिन्हें वे छोटी-छोटी झलकें भी नहीं मिली हैं। वे जिएंगे और मर जाएंगे और उन्हें कभी पता भी नहीं चलेगा कि साक्षी क्या है—एक क्षण के लिए भी। तुम प्रसन्न होओ, तुम भाग्यशाली हो।

लेकिन तुम अनुगृहीत नहीं हो रहे हो। यदि तुम अनुगृहीत नहीं होओगे तो वे झलकें भी विलीन हो जाएंगी। अनुगृहीत होओ, और वे बढ़ेंगी। अनुग्रह से सब कुछ बढ़ता है। प्रसन्न होओ कि तुम धन्य हो—और वे झलकें बढ़ जाएंगी। उस विधायकता से चीजें विकसित होंगी।

“और जो भी साक्षीभाव घटता है वह क्षणिक होता है।”...

तो क्षणिक होने दो! यदि एक क्षण के छोटे से हिस्से के लिए भी साक्षीभाव घट सके, तो वह घटा; तुम्हें उसका स्वाद मिल

जाएगा। और उस स्वाद के कारण, धीरे-धीरे तुम अधिकाधिक परिस्थितियां निर्मित करोगे जिनमें वह और-और घटे।

“क्या मैं अपना समय व्यर्थ कर रहा हूँ?”

समय तो तुम व्यर्थ कर ही नहीं सकते, क्योंकि समय पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। तुम वही चीज व्यर्थ कर सकते हो जिस पर तुम्हारा अधिकार हो। समय पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। समय तो व्यर्थ होगा ही, चाहे तुम ध्यान करो या न करो—समय तो व्यर्थ होगा। समय दौड़ा जा रहा है। तुम कुछ भी करो, कुछ करो या कुछ न भी करो, समय चला जा रहा है। समय को तुम बचा नहीं सकते तो व्यर्थ किस तरह कर सकते हो? व्यर्थ तुम उसी चीज को कर सकते हो जिसको बचा सको। समय पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। इस बारे में भूल जाओ!

और समय का सबसे अच्छा उपयोग तुम ये छोटी-छोटी झलकें लेने में कर सकते हो—क्योंकि अंततः तुम पाओगे कि वे क्षण ही बचे जो साक्षी के क्षण थे और बाकी सबकुछ व्यर्थ गया। जो धन तुमने कमाया, जो प्रतिष्ठा तुमने अर्जित की, जो आदर-सम्मान कमाया, वह सब व्यर्थ गया। वही क्षण, केवल वही थोड़े से क्षण बचे जिनमें तुम्हें साक्षीभाव की झलकें मिलीं। जब तुम यह जीवन छोड़ोगे तो यही क्षण तुम्हारे साथ जाएंगे—केवल वे ही क्षण जा सकते हैं, क्योंकि वे क्षण शाश्वत के हैं, उनका संबंध समय से नहीं है।

आह्लादित होओ कि ऐसा घट रहा है।

यह सदा धीरे-धीरे ही घटता है। एक-एक
बूंद करके पूरा सागर भर सकता है। यह
बूंद-बूंद करके ही होता है। बूंदों में महा

सागर चला आ रहा है। तुम तो बस
अनुग्रह से, उत्सव से, धन्यवाद से भरकर
उसे ग्रहण करो।

और मन को रोकने की कोशिश मत
करो। मन को उसकी गति से चलने
दो—तुम देखते रहो।⁴

द्वंद्वों का निर्द्वंद्व साक्षी

दो पोलक आगे की सीट पर बैठकर कार में चले जा रहे थे। जब वे एक मोड़ के पास पहुंचे, तो जो कार चला रहा था उसने अपने मित्र से कहा, “बाहर देखकर बताओगे इंडिकेटर काम कर रहा है या नहीं?” उसने झट से सिर बाहर निकाला और इंडिकेटर लाइट को देखकर अपने मित्र से बोला, “हां कर रहा है—नहीं, नहीं कर रहा; हां कर रहा है—नहीं, नहीं कर रहा; हां, कर रहा है—नहीं, नहीं कर रहा।” भगवान, यदि मुझसे कोई पूछे कि मेरा साक्षित्व हो रहा है कि नहीं, तो मेरा उत्तर भी यही होगा: हां, हो रहा है; नहीं, नहीं हो रहा; हां, हो रहा है; नहीं, नहीं हो रहा। क्या परम घर तक की पूरी यात्रा ऐसी ही है?

नहीं, ऐसी नहीं है, क्योंकि जहां तक तुम्हारे साक्षित्व का संबंध है, वह आता-जाता रह सकता है, और तुम्हारा उत्तर बिल्कुल उस पोलक की तरह हो सकता है जो बोला, “इंडिकेटर काम कर रहा है, नहीं कर रहा है।” फिर बोला, “कर रहा है।”

इंडिकेटर का तो यही काम है—होना, न होना; होना, न होना। लेकिन बेचारे पोलक पर मत हंसो। जहां तक उसके होश का सवाल है वह पूरी तरह से होश में है। जब भी इंडिकेटर काम करता है तो वह कहता है “हां”; जब काम नहीं करता तो वह “नहीं” कहता है। इंडिकेटर के प्रति उसका होश सतत चल रहा है। इंडिकेटर बदलता रहता है लेकिन पोलक को पूरा होश है कि कब वह काम कर रहा है, कब नहीं कर रहा है; कब वह चालू है, कब बंद है। उसका होश सतत चल रहा है।

यदि तुम साक्षित्व के विषय में यही उत्तर

दे सको: “हां, मैं साक्षीभाव में हूं; नहीं, साक्षीभाव में नहीं हूं; हां, साक्षीभाव में हूं; नहीं, साक्षीभाव में नहीं हूं,” तो तुम्हें स्मरण रखना होगा कि साक्षीभाव के इन क्षणों के पीछे भी कुछ है जो इस पूरी प्रक्रिया को देख रहा है। इसका साक्षी कौन हो रहा है—कि कभी तुम साक्षीभाव में हो और कभी साक्षीभाव में नहीं हो? कुछ है जो अचल है।

तुम्हारा साक्षीभाव तो बस एक इंडिकेटर बन गया है; उसकी परवाह मत करो। तुम्हारा जोर होना चाहिए सनातन पर, शाश्वत पर, अहर्निश पर—और वह मौजूद है। और वह सबके भीतर है, हम बस उसको भूल गए हैं।

लेकिन जिस समय हम उसे भूल भी जाते हैं, तब भी वह अपनी परम संपूर्णता में मौजूद रहता है। वह एक दर्पण की भांति है जो सब कुछ प्रतिबिंबित कर सकता है, अभी ही सब कुछ प्रतिबिंबित कर रहा है,

लेकिन तुम दर्पण की ओर पीठ किए हुए खड़े हो। बेचारा दर्पण तुम्हारी पीठ को प्रतिबिम्बित कर रहा है।

पीछे मुड़ो, और वह तुम्हारे चेहरे को प्रतिबिम्बित करेगा। अपना हृदय खोलो, वह तुम्हारे हृदय को प्रतिबिम्बित कर देगा।

सब कुछ मेज पर बिछा दो, एक पत्ता भी मत छिपाओ और वह तुम्हारी पूरी वास्तविकता को प्रतिबिम्बित कर देगा।

लेकिन तुम यदि दर्पण की ओर पीठ किए खड़े रहो और संसार में चारों ओर देख देख कर लोगों से पूछते रहो, "मैं कौन हूँ?" तो यह तुम्हारे ऊपर है। क्योंकि ऐसे मूढ़ हैं जो आकर तुम्हें सिखाने लगेंगे कि "यह उपाय है। यह करो और तुम्हें पता लग जाएगा कि तुम कौन हो।"

किसी विधि की जरूरत नहीं है, बस 180 डिग्री के कोण पर पीछे मुड़ना है—और वह कोई विधि नहीं है।

और दर्पण तुम्हारी अंतः-सत्ता है।

शायद इस मजाक को तुमने इस कोण से न देखा हो। तुम किसी को यह मजाक सुनाओ तो वह हंसेगा कि पोलक कितना मूर्ख है, क्योंकि इंडिकेटर का तो काम ही यही है—जलना, बुझना, जलना, बुझना। लेकिन तुम मेरे पास यह चुटकुला ले आए हो—मैं बस इस पर हंस कर नहीं रह सकता क्योंकि मैं इसमें कुछ और भी देखता हूँ जो शायद कोई और न देखे।

पोलक निरंतर सजग है। वह एक भी बात, एक भी क्षण चूकता नहीं।

और जब भी तुम कहते हो "साक्षीभाव, हां" और फिर वह अदृश्य हो जाता है तो तुम कहते हो, "नहीं"—फिर वह दोबारा प्रकट होता है, तुम कहते हो, "हां"...। इससे पता चलता है कि साक्षीभाव के होने और न होने के इन सारे क्षणों के पीछे कुछ

है—असली साक्षी, जो उस पूरी प्रक्रिया को प्रतिबिम्बित कर रहा है जिसे तुम मानते हो कि साक्षीभाव है। यह असली साक्षी नहीं है, यह तो बस इंडिकेटर है।

इंडिकेटर को भूल जाओ।

प्रतिबिम्बित करने की सतत प्रक्रिया को याद रखो जो चौबीस घंटे तुम्हारे भीतर चल रही है, चुपचाप सब कुछ देखती हुई। धीरे-धीरे उसे साफ करो—उस पर बहुत-सी धूल जम गई है, सदियों की धूल जम गई है। धूल को पोछो।

और एक दिन, जब दर्पण पूरी तरह साफ हो जाएगा, तो साक्षी की उपस्थिति और अनुपस्थिति के वे क्षण समाप्त हो जाएंगे; तुम बस एक साक्षी रह जाओगे।

और जब तक तुम साक्षी की शाश्वतता को न जान लो, तब तक बाकी सब साक्षी मन के ही हिस्से हैं। उनका कोई मूल्य नहीं। 5

सब मार्ग पर्वत शिखर पर मिल जाते हैं

क्या होश
प्रेम से उच्चतर मूल्य है ?

उच्चतर शिखर सत्य, प्रेम, होश, प्रामाणिकता, समग्रता इन सब मूल्यों की पराकाष्ठा है। उच्चतम शिखर पर वे सब अविभाज्य हैं। हमारे अचेतन की अंधेरी खाइयों में ही वे भिन्न होते हैं। वे तभी भिन्न होते हैं जब प्रदूषित होते हैं, दूसरी चीजों के साथ मिश्रित होते हैं। जिस क्षण वे विशुद्ध होते हैं, वे एक हो जाते हैं; जितने विशुद्ध होते जाएंगे, उतने ही एक-दूसरे के करीब आएंगे।

जैसे, हर मूल्य कई-कई आयामों में मौजूद होता है; हर मूल्य बहुत से सोपानों वाली एक सीढ़ी है। प्रेम काम-वासना भी होता है—वह उसका निम्नतम सोपान है, जो नरक को छूता है; और प्रेम प्रार्थना भी है—उच्चतम सोपान, जो स्वर्ग को छूता है। और इन दो के बीच बहुत से आयाम हैं जिनमें सरलता से भेद किया जा सकता है।

काम-वासना में, प्रेम केवल एक प्रतिशत होता है: निन्यानबे प्रतिशत दूसरी चीजें होती हैं: ईर्ष्या, अहंकार के खेल, मालकियत, क्रोध, कामुकता। काम-वासना अधिक शारीरिक, अधिक रासायनिक होती है; इससे गहरा उसमें और कुछ भी नहीं होता। वह बहुत ही उथली होती है, चमड़ी जितनी गहरी भी नहीं।

जैसे-जैसे तुम ऊपर जाते हो, चीजें गहरी होने लगती हैं; उनमें नए आयाम जुड़ने लगते हैं। जो चीज केवल शारीरिक थी, उसमें मानसिक आयाम जुड़ने लगता है। जो शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं था वह मानसिकता बनने लगता है। शरीर तो हमारी तरह सब जानवरों के पास है; लेकिन मानसिकता हमारी तरह सब जानवरों के पास नहीं है।

जब प्रेम और ऊपर उठता है, या और गहरा जाता है—जो कि एक ही बात है—तो उसमें कुछ-कुछ अध्यात्म आने लगता है। वह आत्मविज्ञान बन जाता है। केवल बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट और उन जैसे अन्य लोग ही प्रेम के इस गुण से परिचित हैं।

प्रेम पूरे मार्ग पर फैला हुआ है, और यही बात दूसरे मूल्यों के विषय में है। जब प्रेम सौ प्रतिशत शुद्ध हो जाता है तो तुम प्रेम और होश में कोई भेद नहीं कर सकते; फिर वे दो नहीं रहते। तब तो तुम प्रेम और परमात्मा के बीच भी भेद नहीं कर सकते; वे अब दो नहीं रहते। इसीलिए जीसस का कथन है कि परमात्मा प्रेम है। वे दोनों को समानार्थी बना देते हैं। इसमें विराट अंतर्दृष्टि है।

परिधि पर तो सब कुछ एक-दूसरे से भिन्न लगता है, परिधि पर अस्तित्व अनेक है। जब तुम केंद्र के निकट आते हो, अनेकता पिघलने लगती है, तिरोहित होने लगती है, और एकता का प्रादुर्भाव होने लगता है। केंद्र पर सब कुछ एक है। तो तुम्हारा प्रश्न तभी ठीक होगा यदि तुम प्रेम और होश के उच्चतम गुण को न जानते होओ। यदि तुम्हें एवरेस्ट की, उच्चतम

शिखर की झलक मिल गई हो, तो यह प्रश्न असंगत हो जाता है।

तुम पूछते हो: “क्या प्रेम होश से उच्चतर मूल्य है?”

कुछ ऊपर और कुछ नीचे नहीं है; वास्तव में, मूल्य दो हैं ही नहीं। घाटी से दो मार्ग शिखर की ओर जाते हैं। एक मार्ग होश का, ध्यान का है; ज्ञान का मार्ग। दूसरा मार्ग है—प्रेम का, भक्तों का, सूफियों का। जब तुम यात्रा शुरू करते हो तो दोनों मार्ग भिन्न होते हैं; तुम्हें चुनाव करना होता है। जो भी मार्ग तुम चुनो, वह उसी शिखर पर ले जाएगा। और जब तुम शिखर के करीब आओगे तो हैरान होओगे: दूसरे मार्ग के यात्री भी तुम्हारे करीब आ रहे हैं। धीरे-धीरे मार्ग एक दूसरे में समाहित होने लगते हैं। जब तक तुम परम बिंदु पर पहुंचते हो वे एक हो चुकते हैं।

जो व्यक्ति होश के मार्ग पर चलता है वह प्रेम को अपने होश के परिणाम की तरह, उप-उत्पत्ति की तरह, छाया की तरह पाता है। और जो व्यक्ति प्रेम के मार्ग पर चलता है वह होश को प्रेम के परिणाम की तरह, उप-उत्पत्ति की तरह, छाया की तरह पाता है। वे दोनों एक ही सिक्के के दो

पहलू हैं।

और स्मरण रखो: यदि तुम्हारे होश में प्रेम नहीं है तो वह अभी अशुद्ध है; अभी तक उसने सौ प्रतिशत शुद्धता नहीं जानी। वह अभी तक वास्तव में होश नहीं है; अभी जरूर उसमें बेहोशी मिली हुई होगी। वह शुद्ध प्रकाश नहीं है; जरूर तुम्हारे भीतर अभी अंधकार काम करता होगा, सक्रिय होगा, तुम्हें प्रभावित करता होगा, नियंत्रित करता होगा। यदि तुम्हारा प्रेम होश से रिक्त है, तो वह अभी प्रेम नहीं है। वह जरूर कुछ निम्न घटना होगी, कुछ जो प्रार्थना की अपेक्षा वासना के अधिक करीब है।

तो इसे एक कसौटी बन जाने दो: यदि तुम होश के मार्ग पर चलते हो, तो प्रेम को कसौटी बन जाने दो। जब तुम्हारा होश अचानक प्रेम में खिल उठे, तो भली-भांति जानना कि होश घटा, समाधि उपलब्ध हुई। यदि तुम प्रेम के मार्ग पर चलते हो, तो होश को कसौटी का काम करने दो। जब अचानक, शून्य में से, तुम्हारे प्रेम के केंद्र पर से होश की एक ज्योति उठने लगती है, तो भली-भांति जानो...आह्लादित होओ! तुम घर आ पहुंचे। ६

रेचन के बाद सहज मौन और सृजन

कुछ वर्षों तक
रेचन ध्यान विधियों पर
कार्य करने के बाद
मैं अनुभव करता हूँ कि
मुझमें एक गहन आंतरिक
सुव्यवस्था, संतुलन और
केंद्रण घट रहा है।
लेकिन आपने कहा कि
समाधि की अंतिम अवस्था में
जाने से पहले व्यक्ति एक बड़ी
अराजकता में से गुजरता है।
मुझे कैसे पता चले कि
मैंने अराजक अवस्था
पार कर ली है या नहीं ?

पहली बात: हजारों जन्मों से तुम
अराजकता में रहते रहे हो। यह
कोई नई बात नहीं है। यह बहुत पुरानी बात
है। दूसरी बात: ध्यान की सक्रिय विधियाँ
जिनका कि आधार रेचन है, तुम्हारे भीतर
की अराजकता को बाहर निकल आने देती
हैं। इन विधियों का यही सौंदर्य है। तुम
चुपचाप नहीं बैठ सकते, तो भी तुम
सक्रिय या अव्यवस्थित ध्यान बहुत
आसानी से कर सकते हो। एक बार
अराजकता बाहर निकाल दी जाती है, तो
तुममें एक मौन घटना शुरू होता है। फिर
तुम मौनपूर्ण ढंग से बैठ सकते हो। यदि
ध्यान की रेचक विधियाँ ठीक से की गयी
हों, निरंतर की गई हों, तो वे तुम्हारी
अराजकता को एकदम विसर्जित कर देंगी
बाहरी आकाश में। तुम्हें पागल अवस्था में
गुजरने की जरूरत न रहेगी। यही तो इन
विधियों का सौंदर्य होता है। पागलपन तो

पहले से ही बाहर फेंका जा रहा होता है।
वह विधि में ही अंतर्गठित होता है।

जैसे पतंजलि सुझाएंगे, तुम वैसे शांत
नहीं बैठ सकते। पतंजलि के पास कोई
रेचक विधि नहीं है। ऐसा लगता है उसकी
कोई जरूरत ही न थी, उनके समय में।
लोग स्वभावतया ही बहुत मौन थे, शांत
थे, आदिम थे। मन अभी भी बहुत ज्यादा
क्रियाशील नहीं हुआ था। लोग ठीक से
सोते थे, पशुओं की भांति जीते थे; वे बहुत
सोच-विचार वाले, तार्किक, बौद्धिक न
थे; वे हृदय में केन्द्रस्थ थे, जैसे कि अभी
भी असभ्य लोग होते हैं। और जीवन ऐसा
था कि वह बहुत सारे रेचन स्वचालित रूप
से घटने देता था।

उदाहरण के लिए, एक लकड़हारे को
किसी रेचन की कोई जरूरत नहीं होती
क्योंकि लकड़ियाँ काटने भर से ही, उसकी
सारी हत्यारी प्रवृत्तियाँ बाहर निकल जाती

हैं। लकड़ी काटना पेड़ की हत्या करने जैसा ही है। पत्थर तोड़ने वाले को रेचनपूर्ण ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं होती। सारा दिन वह यही कर रहा होता है। लेकिन आधुनिक व्यक्ति के लिए चीजें बदल गयी हैं। अब तुम इतनी सुख-सुविधा में रहते हो कि तुम्हारे जीवन में रेचन की कहीं कोई संभावना नहीं है, सिवाय इसके कि तुम पागल ढंग से ड्राइव कर सको।

इसीलिए पश्चिम में हर साल किसी और चीज की अपेक्षा कार दुर्घटनाओं द्वारा ज्यादा लोग मरते हैं। वही है सबसे बड़ा रोग। न तो कैन्सर, न ही तपेदिक और न ही कोई और रोग इतनी मृत्यु देता है जिन्दगियों को जितना कि कार चलाना। दूसरे विश्वयुद्ध में, एक वर्ष में लाखों व्यक्ति मर गये थे। लेकिन सारी पृथ्वी पर हर साल उससे ज्यादा लोग मरते हैं पागल कार ड्राइवों द्वारा।

यदि तुम कार चलाते हो तो तुमने ध्यान दिया होगा कि जब तुम क्रोधित होते हो तब तुम कार स्पीड से चलाते हो। तुम एक्सेलेरेटर को दबाते जाते हो, तुम बिलकुल भूल ही जाते हो ब्रेक के बारे में। जब तुम बहुत घृणा में होते, चिढ़े हुए होते तब कार एक माध्यम बन जाती है अभिव्यक्ति का। अन्यथा तुम इतने आराम में रहते हो: किसी चीज के लिए शरीर द्वारा कम से कम काम लेते हो, मन में ही ज्यादा और ज्यादा रहते हो।

वे जो मस्तिष्क के ज्यादा गहरे केंद्रों के बारे में जानते हैं, कहते हैं कि जो लोग

अपने हाथों द्वारा कार्य करते हैं उनमें कम चिंता होती है, कम तनाव होता है। तब तुम ठीक से सोते हो क्योंकि तुम्हारे हाथ संबंधित हैं, गहनतम मन से, मस्तिष्क के गहनतम केंद्र से। तुम्हारा दायां हाथ संबंधित है बाएं मस्तिष्क से, तुम्हारा बायां हाथ संबंधित है दाएं मस्तिष्क से। जब तुम काम करते हो हाथों द्वारा, तब ऊर्जा मस्तिष्क से हाथों तक बह रही होती है और निर्मुक्त हो रही होती है। लोग जो अपने हाथों द्वारा कार्य करते हैं उन्हें रेचन की जरूरत नहीं होती है। लेकिन जो लोग मस्तिष्क द्वारा कार्य करते हैं, उन्हें ज्यादा रेचन की जरूरत होती है। क्योंकि वे ज्यादा ऊर्जा इकट्ठी कर लेते हैं और उनके शरीरों में कोई मार्ग नहीं होता, उसके बाहर जाने के लिए कोई द्वार नहीं होता। वह मन के भीतर ही चलती चली जाती है। मन पागल हो जाता है।

लेकिन हमारी संस्कृति और समाज में—ऑफिस में, फैक्टरी में, बाजार में लोग जो सिर के द्वारा यानी 'हेड' के द्वारा कार्य करते हैं 'हेड्ज' कहलाते हैं: हेड-क्लर्क, या हेड-सुपरिन्टेंडेंट; और लोग जो हाथों द्वारा कार्य करते हैं, वे 'हैंड्ज' कहलाते हैं। यह बात निंदात्मक हो जाती है। यह हैंड्स शब्द ही निंदात्मक बन गया है।

जब पतंजलि कार्य कर रहे थे इन सूत्रों पर, तो संसार पूर्णतया अलग था। लोग थे 'हैंड्ज'। विशेष रूप से रेचन की कोई जरूरत नहीं थी। जीवन स्वयं ही एक रेचन था। तब वे बड़ी आसानी से शांत होकर

बैठ सकते थे। लेकिन तुम नहीं बैठ सकते। इसीलिए मैं रेचक विधियों का आविष्कार करता रहा हूँ। केवल उन्हीं के बाद तुम शांति से बैठ सकते हो, उससे पहले नहीं।

'कुछ वर्षों तक रेचक विधियों पर कार्य करने के बाद, मैं अनुभव करता हूँ कि एक गहन आंतरिक सुव्यवस्था, संतुलन और केंद्रण मुझ में घट रहा है।'

अब झंझट मत खड़ी कर लेना; इसे होने देना। अब वही मन अपनी टांग अड़ा रहा है। मन कहता है, 'ऐसा कैसे घट सकता है? पहले मेरा अराजकता से गुजरना जरूरी है।' यह विचार अराजकता निर्मित कर सकता है। यही मेरे देखने में आता रहा है: लोग ललकते रहते हैं शांति के लिए, और जब वह घटने लगती है तो वे विश्वास नहीं कर सकते उस पर। यह इतना अच्छा होता है कि इस पर विश्वास ही नहीं आता। खास करके वे लोग जिन्होंने सदा निंदा की होती है अपनी, वे विश्वास नहीं कर सकते कि उन्हें वह सब घटित हो रहा है। 'असंभव! ऐसा घटा होगा बुद्ध को या कि जीसस को, लेकिन मुझको? नहीं, यह तो संभव नहीं है।' वे शांति द्वारा, मौन द्वारा, वैसा घटने द्वारा अशांत होकर मेरे पास चले आते हैं। 'यह सच है, या कि मैं कल्पना कर रहा हूँ इसकी?' क्यों चिंता करनी? यदि यह कल्पना भी है, तो क्रोध के बारे में कल्पना करने से यह बेहतर है; यह कामवासना के बारे में कल्पना करने से तो बेहतर है।

और मैं कहता हूँ तुमसे, कोई कल्पना

नहीं कर सकता शांति की। कल्पना को जरूरत रहती है किसी रूपाकार की; मौन के पास कोई आकार नहीं होता। कल्पना का अर्थ होता है बिम्ब में सोचना, और मौन का कोई प्रतिबिम्ब नहीं होता। तुम कल्पना नहीं कर सकते संबोधि की, सतोरी की, समाधि की, मौन की। नहीं। कल्पना को चाहिए कोई आधार, कोई आकार, और मौन होता है आकारविहीन, अनिर्वचनीय। किसी ने कभी नहीं बनाया इसका कोई चित्र; कोई नहीं बना सकता। किसी ने नहीं गढ़ी इसकी कोई मूर्त; कोई कर नहीं सकता ऐसा।

तुम मौन की कल्पना नहीं कर सकते। मन चालाकियां चल रहा है। मन तो कहेगा, 'यह जरूर कल्पना ही होगी। ऐसा संभव कैसे हो सकता है तुम्हारे लिए? तुम्हारे जैसा इतना मूढ़ व्यक्ति और मौन घट रहा है तुमको? जरूर यही होगा कि तुम कल्पना कर रहे हो।' या, 'इस आदमी ओशो ने सम्मोहित कर दिया है तुम्हें। कहीं कुछ तुम्हें धोखा हो रहा होगा।' ऐसी समस्याएं मत खड़ी कर लेना। ऐसे ही जीवन में काफी समस्याएं हैं। जब मौन घट रहा हो, तो उसमें आनंदित होना, उसका उत्सव मनाना। इसका अर्थ हुआ कि अराजक शक्तियां बाहर निकाली जा चुकी हैं। मन अपना अंतिम खेल खेल रहा है। वह बिलकुल अंत तक खेलता है; सर्वथा, पूर्णतया अंत तक वह खेलता ही जाता है, अंतिम घड़ी में जब संबोधि घटने को ही होती है, तब भी मन अंतिम चालाकी चलता है। यह अंतिम लड़ाई

होती है।

चिंता मत करना कि यह वास्तविक है या अवास्तविक है, या कि इसके बाद अराजकता आएगी या नहीं। इस ढंग से सोचने द्वारा अराजकता तो तुम ले ही आए हो। यह तुम्हारा विचार होता है जो कि निर्मित कर सकता है अराजकता। और जब वह निर्मित हो जाती है, तो मन कहेगा, 'अब सोच लो, मैंने तो ऐसा पहले ही कह दिया था तुमसे।'

मन बहुत स्वतः आपूरक होता है। पहले यह तुम्हें दे देता है बीज, और जब वह प्रस्फुटित होता है तो मन कहता है, 'देख लिया, मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि तुम्हें धोखा हुआ है।' अराजकता पहुंच चुकी और यह विचार द्वारा लायी गयी है। तो इस बारे में क्यों चिंता करनी कि भविष्य में अभी अराजकता आने को है या नहीं? कि वह गुजर गई है या नहीं? बिलकुल इसी घड़ी तुम मौन हो, क्यों उत्सव नहीं मनाते इस बात पर? और मैं कहता हूं तुमसे, यदि तुम उत्सव मनाते हो, तो वह बढ़ता है।

चेतना के इस संसार में और कुछ इतना सहायक नहीं है जितना कि उत्सव। उत्सव पौधों को पानी देने जैसी बात है। चिंता ठीक विपरीत है उत्सव के; यह जड़ों को काट देने जैसी बात है। प्रसन्नता अनुभव करो! मौन के साथ नृत्य करो! इस क्षण वह मौजूद है—पर्याप्त है। मांग क्यों करनी ज्यादा की? कल अपनी फिक्र अपने आप कर लेगा। यह क्षण ही बहुत काफी है; इसे क्यों नहीं जी लेते! क्यों नहीं इसका

उत्सव मनाते, इसे बांटते, इससे आनंदित होते? इसे बनने दो एक गान, एक नृत्य, एक कविता। इसे बनने दो सृजनात्मक। तुम्हारे मौन को होने दो सृजनात्मक; कुछ न कुछ करो इसका।

लाखों चीजें संभव होती हैं क्योंकि मौन से ज्यादा सृजनात्मक तो कुछ और नहीं होता। कोई जरूरत नहीं बहुत बड़ा चित्रकार बनने की, पिकासो की भांति संसार प्रसिद्ध होने की। कोई जरूरत नहीं हेनरी मूर बनने की; कोई जरूरत नहीं महान कवि बनने की। महान बनने की वे महत्वाकांक्षाएं मन की होती हैं, मौन की नहीं।

अपने ढंग से चित्र बनाना, चाहे कितना ही मामूली हो। तुम्हारे अपने ढंग से हाइकू रचना, चाहे वह कितना ही साधारण हो। कितना ही सामान्य हो—तुम्हारे अपने ढंग से गीत गाना; थोड़ा नृत्य करना, उत्सव मनाना। तुम पाओगे कि अगला ही क्षण ले आता है ज्यादा मौन। तुम जान जाओगे कि जितना ज्यादा तुम उत्सव मनाते हो, उतना ज्यादा तुम्हें दिया जाता है; जितना ज्यादा तुम बांटते हो, उतने ज्यादा तुम ग्रहण करने में सक्षम हो जाते हो। हर क्षण वह बढ़ता है, बढ़ता ही चला जाता है।

और अगला क्षण सदा ही इस क्षण से उत्पन्न होता है, तो फिक्र क्यों करनी उसकी! यदि यह वर्तमान क्षण शांतिपूर्ण है, तो अगला क्षण कैसे अराजक हो सकता है? कहां से आएगा वह? उसे इसी क्षण से ही उत्पन्न होना होता है। यदि मैं प्रसन्न हूं इस क्षण, तो कैसे मैं अप्रसन्न हो

सकता हूँ अगले क्षण में?

यदि तुम चाहते हो कि अगला क्षण अप्रसन्नता वाला हो, तो तुम्हें इसी क्षण अप्रसन्न होना होगा, क्योंकि अप्रसन्नता में से उत्पन्न होती है प्रसन्नता। जो कुछ तुम प्राप्त करना चाहते हो अगले क्षण में, तुम्हें उसे बोना होगा बिल्कुल अभी। एक बार चिंता को आने दिया जाता है और तुम सोचने लगते कि अराजकता आएगी, तो वह आएगी ही। तुम उसे ले ही आए हो। अब तुम्हें उसे पास रखना ही होगा; वह आ ही पहुँचती है। अगली घड़ी की प्रतीक्षा करने की कोई जरूरत नहीं; वह पहले से वहाँ है ही।

इसे जरा खयाल में ले लेना, और यह सचमुच ही कुछ अजीब बात है: जब तुम उदास होते हो तो तुम कभी नहीं सोचते कि यह बात काल्पनिक हो सकती है। कभी मैंने ऐसा आदमी नहीं देखा जो कि उदास हो और कहता हो मुझसे कि शायद यह बात काल्पनिक ही है। उदासी संपूर्णतया वास्तविक होती है। लेकिन प्रसन्नता?—तुरंत कुछ गलत हो जाता है और तुम सोचने लगते हो, 'शायद यह बात काल्पनिक ही है।' जब कभी तुम तनावपूर्ण होते हो, तो तुम कभी नहीं सोचते कि यह काल्पनिक बात है। यदि तुम सोच सकते हो कि तुम्हारा तनाव और पीड़ा काल्पनिक है, तो वह तिरोहित हो जाएगी। और यदि तुम सोचते हो कि तुम्हारी शांति और प्रसन्नता काल्पनिक हैं, तो वे तिरोहित हो जाएंगी।

जो कुछ वास्तविकता के रूप में धारण

किया जाता है, वह वास्तविक हो जाता है। जो कुछ अवास्तविकता के रूप में धारण किया जाता है, वह हो जाता है अवास्तविक। तुम्हीं हो निर्माता तुम्हारे चारों ओर के सारे संसार के; इस बात को खयाल में ले लेना। प्रसन्नता की, आनंद की घड़ी को पा लेना बहुत दुर्लभ होता है। इसे मत गंवा देना सोचने-विचारने में ही। लेकिन यदि तुम कुछ नहीं करते, तो चिंता के आने की संभावना है। यदि तुम कुछ नहीं करते—यदि तुम नृत्य नहीं करते, यदि तुम गीत नहीं गाते, यदि तुम बांटते नहीं, तो वैसी संभावना होती है। वही ऊर्जा जो सृजनात्मक हो सकती है, वह सृजन कर देगी चिंता का। वह भीतर नए तनाव बनाना शुरू कर देगी।

ऊर्जा को होना है सृजनात्मक। यदि तुम उसका उपयोग प्रसन्नता के लिए नहीं करते, तो वही ऊर्जा प्रयुक्त हो जाएगी अप्रसन्नता के लिए। और अप्रसन्नता के लिए तुम्हारे पास इतने गहरे रूप से बद्धमूल हुई आदतें हैं कि उसके लिए ऊर्जा-प्रवाह बहुत मुक्त और स्वाभाविक होता है। प्रसन्नता लाने के लिए यह एक श्रमसाध्य कार्य होता है।

तो पहले कुछ दिन तुम्हें निरंतर रूप से जागरूक रहना होगा। जब कभी कोई प्रसन्नता की घड़ी आए, तो होने दो उसकी पकड़ तुम पर, करने दो तुम्हें वशीभूत। इतनी समग्रता से उसका आनंद मनाओ कि अगली घड़ी कुछ अलग तरह की न हो सके। कहां से होगी वह अलग? कहां से आएगी वह?

तुम्हारा समय निर्मित होता है तुम्हारे भीतर। तुम्हारा समय मेरा समय नहीं है। उतने ही समानांतर समय अस्तित्व रखते हैं जितने कि मन होते हैं। कोई एक समय नहीं है। यदि एक समय होता, तो कठिनाई हो गई होती। तब सारी दुखी मानव-जाति के बीच, कोई बुद्ध नहीं हो सकता था, क्योंकि हम संबंधित होते एक ही समय से। नहीं, वह एक ही नहीं होता है। मेरा समय आता है मुझसे—वह मेरा सृजन है। यदि यह क्षण सुन्दर है, तो अगला क्षण जन्मता है ज्यादा सुन्दर—यह है मेरा समय। यदि यह क्षण उदास होता है तुम्हारे लिए, तो और ज्यादा उदास क्षण जन्मता है तुममें से—यह है तुम्हारा समय।

समय की लाखों समानांतर रेखाएं अस्तित्व रखती हैं। और कुछ लोग हैं जो अस्तित्व रखते हैं बिना समय के, वे जिन्होंने पा लिया है अ-मन। उनके पास कोई समय नहीं क्योंकि वे नहीं सोचते हैं अतीत के बारे में, अतीत तो जा चुका; केवल मूढ़ सोचते हैं उसके विषय में। जब कोई चीज जा चुकी होती है, तो वह जा चुकी होती है।

एक बौद्ध मंत्र है: 'गते, गते, परा गते—स्वाहा।' 'जा चुका, जा चुका, परम रूप से जा चुका; उसे अग्नि में स्वाहा हो जाने दो।' अतीत जा चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। उसकी चिंता क्यों करनी? जब वह आएगा, हम देख लेंगे। तुम मौजूद होओगे उसका सामना करने को, क्यों चिंता करनी उसकी? जो चला गया वह चला गया है, नहीं आया हुआ

अभी तक आया नहीं। केवल यही क्षण बचा हुआ है, शुद्ध प्रगाढ़ ऊर्जा सहित। इसे जियो! यदि यह शांतिपूर्ण है, तो

अनुगृहीत होओ। यदि यह आनंदपूर्ण है, तो धन्यवाद दो परमात्मा को, आस्था रखो इस पर। और यदि तुम आस्था रख सकते

हो, तो यह विकसित होगी। यदि तुम अनास्था रखते हो, तो तुमने पहले से ही इसे विषाक्त कर दिया। 7

संक्रमणकालीन अनिश्चितता और असुरक्षा

जितना ज्यादा मैं
स्वयं को देखता हूँ,
उतना ज्यादा मैं अपने अहंकार
के झूठे-पन को अनुभव करता हूँ।
मैं स्वयं को ही अजनबी
लगने लगा हूँ,
अब नहीं जानता कि क्या झूठ है।
यह बात मुझे एक बेचैन
अनुभूति के बीच छोड़ देती है कि
जीवन-मार्ग की कोई रूपरेखाएं
नहीं हैं, जो कि मुझे लगता था
पहले मेरे पास थीं।

ऐसा होता है, ऐसा होगा ही। और
ध्यान रहे कि तुम्हें खुश होना
चाहिए कि ऐसा हुआ। यह अच्छा
लक्षण है। जब कोई चलना शुरू करता है
अंतर्यात्रा पर तो हर चीज सीधी-साफ,
बद्धमूल जान पड़ती है; क्योंकि अहंकार
नियंत्रण में होता है और अहंकार के पास
सारी रूपरेखाएँ होती हैं, अहंकार के पास
सारे नक्शे होते हैं, अहंकार मालिक होता
है।

जब तुम कुछ और आगे बढ़ते हो इस
यात्रा में, तो अहंकार वाष्पित होने लगता
है; और-और झूठा जान पड़ने लगता है
और अधिक धोखा मालूम पड़ने लगता
है—एक भ्रम। तुम स्वप्न में से जागने
लगते हो, तब सारे नक्शे-ढाँचे खो जाते
हैं। अब वह पुराना मालिक कोई मालिक
नहीं रहता, और नया मालिक अभी तक

आया नहीं होता। एक उलझन होती है,
एक अराजकता। यह एक अच्छा लक्षण
होता है।

आधी यात्रा पूरी हुई, लेकिन एक बेचैन
अनुभूति तो आ बनेगी, एक घबड़ाहट,
क्योंकि तुम खोया हुआ अनुभव करते
हो—स्वयं के प्रति अजनबी, न जानते हुए
कि तुम कौन हो। इससे पहले, तुम जानते
थे कि तुम कौन हो: तुम्हारा नाम, तुम्हारा
रूप, तुम्हारा पता, तुम्हारा
बैंक-खाता—हर चीज निश्चित थी, इस
तरह तुम थे। तुम्हारा तादात्म्य था अहंकार
के साथ। अब अहंकार विलीन हो रहा है,
पुराना घर गिर रहा है और तुम नहीं जानते
कि तुम कौन हो, कि तुम कहां हो। हर
चीज अंधेरे में धिरी होती है, धुंधली होती है
और पुरानी सुनिश्चितता खो जाती है।

यह अच्छा है क्योंकि पुरानी निश्चितता

एक झूठी निश्चितता थी। वस्तुतः वह निश्चितता थी ही नहीं। इसके पीछे गहरे में अनिश्चितता ही थी। इसीलिए, जब अहंकार विलीन होता है, तुम अनिश्चित अनुभव करते हो। अब तुम्हारे अस्तित्व की ज्यादा गहरी परतें उद्घाटित हो जाती हैं तुम्हारे सामने—तुम अजनबी अनुभव करते हो। तुम सदा अजनबी थे। केवल अहंकार ही इस अनुभूति के धोखे में ले गया कि तुम जानते थे कि तुम कौन हो। स्वप्न बहुत ज्यादा था, वह एकदम सत्य जान पड़ता था।

सुबह जब तुम स्वप्न से जाग रहे होते हो, अचानक, तो तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो और कहां हो। क्या तुमने इस अनुभूति को अनुभव किया किसी सुबह?—जब अचानक, तुम स्वप्न से जागते हो और कुछ पलों तक तुम नहीं जानते कि तुम कहां हो, तुम कौन हो और क्या हो रहा है? ऐसा ही होता है जब कोई अहंकार के स्वप्न से बाहर आता है। असुविधा, बेचैनी, उखड़ाव महसूस होगा, लेकिन इससे तो प्रफुल्लित होना चाहिए। यदि तुम इससे दुखी हो जाते हो, जो तुम उन्हीं पुराने ढरों में जा पड़ोगे जहां कि चीजें निश्चित थीं, जहां हर चीज का नक्शा बना था, खाका खिंचा था, जहां कि पहचानते थे हर चीज, जहां जीवन-मार्ग की रूपरेखाएं स्पष्ट थीं।

बेचैनी गिरा दो। यदि वह हो भी तो उससे ज्यादा प्रभावित मत हो जाना। रहने दो उसे, ध्यानपूर्वक देखो और वह भी चली जाएगी। बेचैनी जल्दी ही तिरोहित हो

जाएगी। वह वहां होती है निश्चितता की पुरानी आदत होने से ही। तुम नहीं जानते कि अनिश्चित जगत में कैसे जिया जाता है। तुम नहीं जानते कि असुरक्षा में कैसे जिया जाता है। बेचैनी होती है पुरानी सुरक्षा के कारण। वह होती है केवल पुरानी आदत, पुराने प्रभाव के कारण। वह चली जाएगी। तुम्हें बस प्रतीक्षा करनी है, देखना है, आराम करना है, और प्रसन्नता अनुभव करनी है कि कुछ घटित हुआ है। और मैं कहता हूँ तुमसे—यह अच्छा लक्षण है।

बहुत लौट गए इस स्थल से, केवल फिर से सुविधापूर्ण होने को, आराम में, सुख-चैन में होने को ही। वे चूक गए हैं। मंजिल के बिलकुल करीब आ ही रहे थे, और उन्होंने पीठ फेर ली। वैसा मत करना—आगे बढ़ना। अनिश्चितता अच्छी होती है, उसमें कुछ बुरा नहीं है। तुम्हारा तो केवल ताल-मेल बैठना है, बस इतना ही।

अहंकार के निश्चित संसार के साथ, अहंकार की सुरक्षित दुनिया के साथ तुम्हारा ताल-मेल बैठ जाता है। कितना ही झूठ क्यों न हो सतह पर, हर चीज बिलकुल ठीक जान पड़ती है, जैसा कि उसे होना चाहिए। जरूरत है कि अनिश्चित अस्तित्व के साथ तुम्हारा ताल-मेल थोड़ा बैठ जाए।

अस्तित्व अनिश्चित है, असुरक्षित है, खतरनाक है। वह एक प्रवाह है—चीजें सरक रही हैं, बदल रही हैं। यह एक अपरिचित संसार है; परिचय पा लो

उसका। थोड़ा साहस रखो और पीछे मत देखो, आगे देखो; और जल्दी ही अनिश्चितता स्वयं सौंदर्य बन जाएगी, असुरक्षा सुंदर हो उठेगी।

वस्तुतः केवल असुरक्षा ही सुंदर होती है, क्योंकि असुरक्षा ही जीवन है। सुरक्षा असुंदर है, वह एक हिस्सा है मृत्यु का—इसीलिए वह सुरक्षित होती है। बिना किन्हीं तैयार नक्शों के जीना ही एकमात्र ढंग है जीने का। जब तुम तैयार निर्देशों के साथ जीते हो, तो तुम जीते हो एक झूठी जिंदगी। आदर्श, मार्ग-निर्देश, अनुशासन—तुम लाद देते हो कोई चीज अपने जीवन पर; तुम सांचे में ढाल लेते हो अपना जीवन। तुम उसे उस जैसा होने नहीं देते, तुम कोशिश करते हो उसमें से कुछ बना लेने की। मार्ग निर्देशन की तैयार रूपरेखाएं आक्रामक होती हैं, और सारे आदर्श असुंदर होते हैं। उनसे तो तुम चूक जाओगे स्वयं को। तुम अपने स्वरूप को कभी उपलब्ध न होओगे।

कुछ हो जाना वास्तविक सत्ता नहीं है। होने के सारे ढंग, और कुछ होने के सारे प्रयास, तुम पर कोई चीज लाद देंगे। यह एक आक्रामक प्रयास होता है। तुम हो सकते हो संत, लेकिन तुम्हारे संतत्व में असौंदर्य होगा। मैं कहता हूँ तुमसे और मैं जोर देता हूँ इस बात पर: बिना किन्हीं निर्देशों के जीवन जीना एक मात्र संभव संतत्व है। फिर तुम शायद पापी हो जाओ; पर तुम्हारे पापी होने में एक पवित्रता होगी, एक संतत्व होगा।

जीवन पवित्र है: तुम्हें कोई चीज उस

पर जबरदस्ती लादने की कोई जरूरत नहीं, तुम्हें उसे गढ़ने की कोई जरूरत नहीं, कोई जरूरत नहीं कि तुम उसे कोई ढांचा दो, कोई अनुशासन दो और कोई व्यवस्था दो। जीवन की अपनी व्यवस्था है, उसका अपना अनुशासन है। तुम बस उसके साथ चलो, तुम बहो उसके साथ, तुम नदी को धकेलने की कोशिश मत करना। नदी तो बह रही है—तुम उसके साथ एक हो जाओ और नदी ले जाती तुम्हें सागर तक।

यही होता है एक संन्यासी का जीवन: सहज होने देने का जीवन—करने का नहीं। तब तुम्हारी अंतस-सत्ता पहुंच जाती है, धीरे-धीरे, बादलों से ऊपर, बादलों और अंतर्विरोध के पार। अचानक तुम मुक्त होते हो। जीवन की अव्यवस्था में, तुम एक नई व्यवस्था पा लेते हो। लेकिन व्यवस्था की गुणवत्ता अब संपूर्णतया अलग होती है। यह कोई तुम्हारे द्वारा आरोपित चीज नहीं होती, यह स्वयं जीवन के साथ ही आत्मीयता से गुंथी होती है।

वृक्षों में भी एक व्यवस्था होती है, नदियों में भी, पर्वतों में भी, लेकिन ये व्यवस्थाएं वे नहीं जो नैतिकतावादियों द्वारा, प्यूरिटन्स द्वारा, पुरोहितों द्वारा आरोपित होती हैं। वे किसी के पास मार्गनिर्देशन के लिए नहीं जातीं। व्यवस्था अंतर्निहित होती है; वह स्वयं जीवन में ही होती है। अहंकार वहां नहीं रहता योजनाएं बनाने को, यहां-वहां खींचने-धकेलने को—कि यह करो और वह करो।

जब तुम पूरी तरह अहंकार से मुक्त होते

हो, तो एक अनुशासन तुममें आ जाता है—एक आंतरिक अनुशासन। यह अकारण होता है, अहेतुक होता है। यह किसी चीज की तलाश नहीं है, यह तो बस घटता है: जैसे कि तुम सांस लेते हो, जैसे कि जब तुम्हें भूख अनुभव होती है और तुम कुछ खा लेते हो, जैसे कि जब तुम्हें नींद आने लगती है और तुम बिस्तर पर चले जाते हो। यह आंतरिक सुव्यवस्था होती है, एक अंतर्निहित सुव्यवस्था। वह आ बनेगी जब तुम्हारा ताल-मेल बैठ जाता है असुरक्षा के साथ, जब तुम्हारी सुसंगति बन जाती है अपने भीतर के अजनबी के साथ, जब तुम अपने भीतर की अज्ञात सत्ता के साथ लयबद्ध हो जाते हो।

झेन में उनके पास एक कथन है, सुंदरतम कथनों में से एक: जब कोई व्यक्ति संसार में रहता है, तो पर्वत पर्वत होते हैं, नदियां नदियां होती हैं। जब कोई व्यक्ति ध्यान में उतरता है, तब पर्वत फिर पर्वत नहीं रहते, नदियां नदियां नहीं रहतीं। हर चीज एक भ्रम और एक अव्यवस्था होती है। लेकिन जब कोई व्यक्ति उपलब्ध कर लेता है सतारी को, समाधि को, फिर नदियां नदियां होती हैं और पर्वत होते हैं पर्वत।

तीन अवस्थाएं होती हैं: पहली में तुम अहंकार के प्रति सुनिश्चित होते हो; तीसरी में तुम निरहंकार अवस्था में परिपूर्ण निश्चित होते हो और इन दोनों के बीच अराजकता की अवस्था है, जब अहंकार की निश्चितता तिरोहित हो गयी है और

जीवन की सुनिश्चितता अभी भी आयी नहीं। यह एक बहुत ज्यादा संभावनापूर्ण घड़ी होती है, बहुत गर्भित घड़ी। यदि तुम डर जाते हो और वापस मुड़ जाते हो, तो तुम संभावना को चूक जाओगे।

आगे है सच्ची निश्चितता। वह सच्ची निश्चितता अनिश्चितता के विपरीत नहीं है। आगे है सच्ची सुरक्षा, लेकिन वह सुरक्षा असुरक्षा के विपरीत नहीं है। वह सुरक्षा इतनी विशाल होती है कि वह असुरक्षा को स्वयं के भीतर ही समाए रहती है। वह इतनी विशाल होती है कि वह असुरक्षा से भयभीत नहीं होती। वह असुरक्षा को सोख लेती है स्वयं में ही, वह सारी विपरीत बातों को समाए रहती है। इसलिए कोई उसे कह सकता है असुरक्षा और कोई उसे कह सकता है—सुरक्षा। वस्तुतः वह इनमें से कुछ भी नहीं, या फिर दोनों ही है।

यदि तुम अनुभव करते हो कि तुम स्वयं के लिए अजनबी बन गए हो, तो उत्सव मनाओ इसका, अनुगृहीत अनुभव करो। यह घड़ी बहुत विरल, अनूठी होती है; आनंदित होओ इससे। जितना ज्यादा तुम आनंदित होते हो, उतना ज्यादा तुम पाओगे कि निश्चितता तुम्हारे ज्यादा निकट चली आ रही है, और-और तेजी से चली आ रही है तुम्हारी ओर। यदि तुम उत्सव मना सको तुम्हारे अजनबीपन का, तुम्हारे उखड़ाव का, तुम्हारी गृहविहीनता का, तो अचानक तुम पहुंच जाते हो घर—तीसरी अवस्था आ गयी होती है।⁸

होश के क्षणों का संबल

आप हमें हर चीज के प्रति सजग होने को कहते हैं—जिसका अर्थ हुआ हर चीज और हर कृत्य के साक्षी हो जाना।

जब मैं कार्य में सजग होने का निर्णय लेता हूँ, तो सजगता के विषय में भूल जाता हूँ, और जब मुझे यह बोध होता है कि मैं सजग नहीं था तो ग्लानि अनुभव करता हूँ; मुझे लगता है कि मैंने कोई गलती कर दी। क्या आप कृपया समझाएंगे ?

जो लोग भी कार्य के समय सजग होने का प्रयास कर रहे हैं, यह उनकी बुनियादी समस्याओं में से एक है—क्योंकि कार्य की मांग है कि तुम स्वयं को बिलकुल भूल जाओ। उसमें तुम्हें बिलकुल गहन होकर संबद्ध होना पड़ता है...जैसे कि तुम अनुपस्थित हो। जब तक ऐसी समग्र संबद्धता न हो, कार्य उथला-उथला ही रहता है।

मनुष्य की कृतियों में जो कुछ भी महान है—चित्रकारिता में, काव्य में, वास्तुकला में, मूर्तिकला में, जीवन के किसी भी आयाम में—उसमें तुम्हारी पूरी संबद्धता चाहिए। और यदि साथ ही तुम सजग होने की चेष्टा कर रहे हो, तो तुम्हारा कार्य कभी भी प्रथम कोटि का नहीं होगा, क्योंकि फिर तुम उसमें मौजूद नहीं होओगे।

तो कार्य में सजगता रखने के लिए बड़े प्रशिक्षण और शिक्षण की जरूरत है, और बहुत ही सीधे-सरल कृत्यों से शुरू करना होता है, जैसे टहलना। तुम टहल सकते हो, और सजग हो सकते हो कि तुम टहल रहे हो—हर कदम होश से भरा हो सकता है। भोजन करना...जैसे झेन मठों में वे चाय पीते हैं—इसे वे 'टी सेरेमनी' कहते हैं, क्योंकि चाय पीते समय व्यक्ति को सचेत व सजग रहना होता है।

ये छोटे-छोटे कृत्य हैं लेकिन शुरू करने के लिए बिलकुल ठीक हैं। चित्र बनाने या नृत्य करने जैसी किसी चीज से यह शुरू नहीं करना चाहिए—वे बड़ी गहन और जटिल घटनाएं हैं। दैनिक जीवन के छोटे-छोटे कृत्यों से शुरू करो। जैसे-जैसे तुम सजगता से अधिक परिचित होते जाते हो, जब सजगता तुम्हारी

श्वास-प्रश्वास की तरह हो जाती है—तुम्हें उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, वह सहज हो जाती है—फिर किसी भी कृत्य में, किसी भी कार्य में तुम सजग हो सकते हो।

लेकिन शर्त याद रखो: वह प्रयासरहित होनी चाहिए; उसे सहजता से आना चाहिए। फिर चित्र बनाते हुए या संगीत रचते हुए, या नाचते हुए, या तलवार लेकर किसी शत्रु से लड़ते हुए भी तुम पूर्णतः सजग रह सकते हो। लेकिन यह सजगता वह नहीं है जिसके लिए तुम प्रयास कर रहे हो। यह शुरुआत नहीं है; यह तो एक लंबी साधना की परिणति है। कई बार यह बिना प्रशिक्षण के भी घट सकती है।

लेकिन ऐसा कभी-कभार ही हो सकता है—बिल्कुल अति की परिस्थितियों में। रोजमर्रा के जीवन में तुम्हें सहज क्रम का पालन करना चाहिए। पहले ऐसे कृत्यों के प्रति सजग होना शुरू करो जिनमें तुम्हारी संबद्धता नहीं चाहिए। तुम टहल सकते हो और सोचते जा सकते हो; खाते रह सकते हो और विचारते चले जा सकते हो। सोच-विचार के स्थान पर सजगता को ले आओ। खाते रहो, और सजग रहो कि तुम खा रहे हो। चलो, और सोच-विचार के स्थान पर सजगता को ले आओ। चलते रहो; शायद तुम्हारा चलना थोड़ा धीमा और अधिक प्रसादपूर्ण हो जाए। लेकिन सजगता ऐसे छोटे-छोटे कृत्यों के साथ ही संभव है। और जैसे-जैसे तुम ज्यादा कुशल होते हो तो ज्यादा जटिल कृत्यों का

उपयोग करो।

एक दिन आता है, जब संसार में ऐसा कोई कृत्य नहीं रहता जिसे पूरी समग्रता से करते हुए भी तुम उसमें सजग नहीं रह सकते।

तुम कह रहे हो, “जब मैं कार्य में सजग होने का निर्णय लेता हूँ तो सजगता के विषय में भूल जाता हूँ।” यह तुम्हारा निर्णय नहीं, तुम्हारी लंबी साधना होनी चाहिए। और सजगता सहज ही आनी चाहिए; तुम्हें इसे बुलाना नहीं है, इससे जबरदस्ती नहीं करनी है।

“और जब मुझे यह बोध होता है कि मैं सजग नहीं था तो दोषी अनुभव करता हूँ।” यह बिल्कुल मूढ़ता है। जब तुम्हें यह बोध हो कि तुम सजग नहीं थे, तो प्रसन्न होओ कि कम से कम अब तो तुम सजग हो। अपराध-भाव की धारणा का मेरी देशना में कोई स्थान नहीं है।

अपराध-भाव आत्मा में लगने वाले कैसरों में से एक है। और सभी धर्मों ने तुम्हारी गरिमा, तुम्हारे गौरव को नष्ट करने के लिए, और तुम्हें गुलाम बनाने के लिए अपराध-भाव का उपयोग किया है। अपराधी अनुभव करने की कोई जरूरत नहीं, यह स्वाभाविक है। सजगता इतनी महत घटना है कि कुछ सैकंड के लिए भी सजग हो सको, तो आह्लादित होओ। उन क्षणों पर कोई बहुत ध्यान दो जब तुम भूल जाते हो। उस अवस्था पर ध्यान दो जब अचानक तुम्हें स्मरण आता है, “मैं सजग नहीं था।” धन्यभागी अनुभव करो कि कुछ घंटों के बाद कम से कम सजगता

लौट तो आई है।

इसे कोई पश्चात्ताप, कोई अपराध-भाव, कोई उदासी मत बनाओ—क्योंकि अपराधी और दुखी होने से तुम्हारा कोई भला नहीं होने वाला। गहरे में तुम असफल अनुभव करोगे। और एक बार असफलता का भाव तुममें बैठ जाए, तो सजगता और भी कठिन हो जाएगी।

अपना पूरा फोकस बदल डालो। यह बड़ी बात है कि तुम इस बात के प्रति सजग हो गए कि तुम सजग होना भूल गए थे। अब जितनी देर तक संभव हो सके, मत भूलो। फिर दोबारा तुम भूलोगे; फिर से तुम्हें स्मरण आएगा—लेकिन हर बार, विस्मृति का अंतराल छोटा से छोटा होता जाएगा। यदि तुम अपराध-भाव से बच सको—जो कि मूलतः क्रिश्चियन है—तो तुम्हारी विस्मृत के अंतराल छोटे होते जाएंगे, और एक दिन वे बस समाप्त हो जाएंगे। सजगता तुम्हारी श्वास-प्रश्वास या धड़कन या रक्त प्रवाह की तरह हो जाएगी—दिन हो कि रात।

तो सावधान रहो कि कहीं तुम्हें अपराध-भाव न अनुभव हो। अपराधी अनुभव करने को कुछ भी नहीं है। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि वृक्ष कैथोलिक पादरियों की नहीं सुनते। वरना तो वे गुलाब को अपराध-भाव से भर देंगे कि “तुममें कांटे क्यों हैं?” और जो गुलाब हवा में, वर्षा में, सूर्य की रोशनी में नाच रहा था, वह अचानक उदास हो जाएगा। नृत्य विदा हो जाएगा; आनंद विदा हो

जाएगा; सुवास विलीन हो जाएगी। अब कांटा ही उसकी वास्तविकता, उसका घाव बन जाएगा—“तुममें कांटे क्यों हैं?”

लेकिन क्योंकि गुलाब की कोई झाड़ी इतनी मूढ़ नहीं है कि किसी धर्म के पुरोहित को सुने, इसलिए गुलाब नाचते चले जाते हैं, और गुलाब के साथ-साथ कांटे भी नाचते हैं।

पूरा अस्तित्व अपराध-भाव से मुक्त है। और जिस क्षण कोई व्यक्ति अपराध-भाव से मुक्त होता है, वह जीवन के जागतिक प्रवाह का हिस्सा हो जाता है। यही संबोध है—एक अपराध-भाव से मुक्त चेतना जो हर उस चीज का आनंद मनाती चली जाती है जो अस्तित्व उपलब्ध करवाता है: प्रकाश सुंदर है; ऐसे ही अंधकार भी सुंदर है।

जब तुम अपराध-भाव अनुभव करने के लिए कुछ भी न खोज पाओ, तो मेरे अनुसार तुम धार्मिक व्यक्ति हुए। तथाकथित धर्मों के अनुसार जब तक तुम अपराध-भाव अनुभव नहीं करते, तुम धार्मिक नहीं हो; जितनी तुम्हें ग्लानि हो, उतने ही तुम धार्मिक हो।

दंड के रूप में, प्रायश्चित्त के रूप में लोग स्वयं को प्रताड़ित कर रहे हैं। लोग मुक्के मार-मार कर अपनी छाती पर तब तक चोट करते हैं जब तक छाती से खून न निकलने लगे। ये लोग, मेरे देखे, मानसिक रूप से रुग्ण हैं; ये धार्मिक नहीं हैं। उनके तथाकथित धर्मों ने उन्हें सिखाया है कि यदि तुम कोई गलती करो तो कयामत के दिन परमात्मा से दंडित होने

की अपेक्षा स्वयं को दंड दे लेना बेहतर है—क्योंकि वह दंड तो यह होगा कि तुम अनंत काल के लिए नरक के गहन अंधकार में फेंक दिए जाओगे। और वहां कोई बचाव, कोई निकास-द्वार नहीं है—एक बार तुम नरक में प्रवेश किए, तो बस हमेशा के लिए प्रवेश कर गए।

पूरी मनुष्यता को किसी न किसी मात्रा में अपराध-भाव से भर दिया गया है। इसने तुम्हारी आंखों से चमक छीन ली है; इसने तुम्हारे चेहरे से सौंदर्य छीन लिया है; तुम्हारे अंतस से प्रसाद छीन लिया है। इसने तुम्हें अपराधी बना दिया है—व्यर्थ ही।

स्मरण रखो: मनुष्य क्षीण और कमजोर है, और गलती करना मानवीय है। और जिन लोगों ने यह कहावत गढ़ी है कि “गलती करना मानवीय है” उन्हीं लोगों ने यह कहावत भी गढ़ी है कि “क्षमा करना दिव्य है।” दूसरे हिस्से से मैं सहमत नहीं हूँ।

मैं कहता हूँ, “गलती करना मानवीय है और क्षमा करना भी मानवीय है।” और स्वयं को क्षमा करना महानतम पुण्यों में से है, क्योंकि यदि तुम स्वयं को ही क्षमा नहीं कर सकते तो संसार में किसी को भी क्षमा नहीं कर सकते—यह असंभव है। तुम घावों से, अपराध-भाव से इतने भरे हुए हो, किसी को कैसे क्षमा कर सकते हो? तुम्हारे तथाकथित संत कहे चले जाते हैं कि तुम नरक में फेंक दिए जाओगे। वास्तविकता यह है कि वे नरक में जी रहे हैं! वे परमात्मा को भी तुम्हें क्षमा करने की

इजाजत नहीं दे सकते।

एक महान सूफी शायर उमर खय्याम ने अपने विश्व प्रसिद्ध काव्य-संग्रह, रुबाइयात, में लिखा है: “मैं तो पिऊंगा, नाचूंगा, प्रेम करूंगा। मैं हर पाप करूंगा क्योंकि परमात्मा की करुणा में मेरी श्रद्धा है—वह क्षमा कर देगा। मेरे पाप बहुत छोटे हैं; उसकी करुणा अपार है।”

जब पंडितों को उसकी पुस्तक के बारे में पता चला—क्योंकि उन दिनों पुस्तकें हाथ से लिखी जाती थीं, कोई छापाखाना नहीं होता था... पंडितों को पता चला कि वह ऐसी अधार्मिक चीजें लिख रहा है, कि वह कह रहा है, “चिंता मत करो, जो चाहते हो करते रहो क्योंकि परमात्मा शुद्ध करुणा और प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सत्तर वर्ष के जीवन में तुम कितना पाप कर सकते हो?—उसकी करुणा की तुलना में यह कुछ भी नहीं है।”

वह प्रसिद्ध गणितज्ञ भी था, अपने देश में विख्यात था। पंडित-पुरोहित उसके पास पहुंचे और बोले, “तुम कैसे बातें लिख रहे हो? तुम तो लोगों की धार्मिकता को नष्ट कर दोगे! लोगों में भय पैदा करो, लोगों को बताओ कि परमात्मा बड़ा न्यायोचित है: यदि तुमने कोई पाप किया है, तो तुम्हें सजा मिलेगी। कोई करुणा नहीं की जाएगी।”

उमर खय्याम की पुस्तक उसके जीवनकाल में ही जला दी गई। जब भी कोई प्रति मिल जाती, पंडित-पुरोहित उसको जला देते, क्योंकि यह व्यक्ति ऐसे खतरनाक विचार सिखा रहा था।

यदि यह विचार मनुष्यों में फैल जाए और सभी जीवन में आनंदित होने लगे तो पुरोहितों का क्या होगा? संतों का क्या होगा? स्वर्ग और नरक और परमात्मा की उनकी पौराणिक कहानियों का क्या होगा? सब कुछ हवा में विलीन हो जाएगा।

कम से कम मेरे लिए, उमर खय्याम संबुद्ध सूफी संतों में से एक है, और वह जो कह रहा है उसमें अथाह सत्य है। उसका यह अभिप्राय नहीं है कि तुम पाप करो। उसका इतना ही अर्थ है कि तुम्हें अपराध-भाव अनुभव नहीं करना चाहिए। जो भी तुम करते हो—यदि वह सही नहीं है, तो उसे फिर से मत करो। यदि तुम्हें लगता है कि इससे किसी को दुख होता है, तो उसे दोबारा मत करो। लेकिन अपराधी अनुभव करने की जरूरत नहीं है, पश्चात्ताप करने की, प्रायश्चित्त करने की, तपस्या करने की और स्वयं को

प्रताड़ित करने की जरूरत नहीं है।

मैं तुम्हारा फोकस पूरी तरह बदलना चाहता हूँ। बजाय इसको गिनने के कि कितनी बार तुम सजग होना भूले, उन थोड़े से सुंदर क्षणों की गिनती करो जब तुम स्फटिक की तरह स्पष्ट और सजग थे। वे थोड़े से क्षण तुम्हें बचाने के लिए, तुम्हारा उपचार करने के लिए पर्याप्त हैं। और यदि तुम उन पर ध्यान दो तो वे तुम्हारी चेतना में बढ़ते और फैलते चले जाएंगे। धीरे-धीरे बेहोशी का सारा अंधकार मिट जाएगा।

प्रारंभ में कई बार तुम्हें यह भी लगेगा कि शायद कार्य करना और सजग रहना साथ-साथ संभव नहीं है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि यह न केवल संभव है, बल्कि बहुत ही सरलता से संभव है। बस जरा ठीक ढंग से शुरू करो। क्षत्रज्ञ से शुरू मत करो; कखग से शुरू करो।

जीवन में हम गलत शुरुआत के कारण कई चीजें चूकते चले जाते हैं। हर चीज

बिल्कुल प्रारंभ से शुरू करनी चाहिए। हमारे मन अधीर हैं; हम सबकुछ जल्दी से करना चाहते हैं। हम सीढ़ी के हर सोपान से गुजरे बिना उच्चतम बिंदु पर पहुंचना चाहते हैं।

लेकिन उसका अर्थ होगा पूर्ण असफलता। और सजगता जैसी चीज में तुम एक बार असफल हो गए तो यह कोई छोटी असफलता नहीं है—शायद तुम फिर कभी भी इसका प्रयास नहीं करोगे। असफलता दुखती है।

तो जो भी चीज सजगता जैसी मूल्यवान हो—क्योंकि यह अस्तित्व के रहस्यों के सारे द्वार खोल सकती है, यह तुम्हें परमात्मा के मंदिर पर पहुंचा सकती है—इन्हें तुम्हें बड़ी सावधानी से शुरू करना चाहिए और आरंभ से ही फूंक-फूंक कर चलो।

थोड़ा-सा धैर्य, और लक्ष्य बहुत दूर नहीं है।^१

द्रष्टा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर गहराओ

मन के एक हिस्से द्वारा मन के दूसरे हिस्से को देखने और द्रष्टा के बीच मैं किस प्रकार भेद कर सकता हूँ? क्या द्रष्टा स्वयं को देख सकता है? एक दिन, मुझे लगा मैंने द्रष्टा को पा लिया, और उसी दिन प्रवचन में मैंने आपको यह कहते सुना, “यदि तुम सोचते हो कि तुमने द्रष्टा को पा लिया, तो तुम चूक गए।” तब से मैंने शरीर की अनुभूतियों, विचारों और भावों का द्रष्टा होने का प्रयास किया है। अधिकांशतः, तो मैं उन्हीं में पकड़ा जाता हूँ, लेकिन कभी-कभार मैं बिल्कुल विश्रामपूर्ण अनुभव करता हूँ, और कुछ भी ठहरता नहीं—बस चलता रहता है। क्या कुछ है जो किया जा सकता है?

शुरू करना होता है शरीर को चलते हुए, बैठे हुए, बिस्तर पर जाते या खाते हुए देखने से। स्थूलतम चीजों से व्यक्ति को शुरू करना चाहिए, क्योंकि यह सरल है। और फिर उसे सूक्ष्म अनुभवों की ओर जाना चाहिए, विचारों को देखना शुरू करना चाहिए। और जब व्यक्ति विचारों को देखने में कुशल हो जाता है तो उसे अनुभूतियों को देखना शुरू करना चाहिए। जब तुम्हें लगे कि तुम अपनी अनुभूतियों को भी देख सकते हो, तो फिर अपनी भावदशाओं को देखना शुरू करो, जो कि अनुभूतियों से अधिक सूक्ष्म भी हैं और अस्पष्ट भी।

द्रष्टा होने का चमत्कार यह है कि जब तुम शरीर को देखते हो तो तुम्हारा द्रष्टा अधिक मजबूत होता है; जब तुम अपने विचारों को देखते हो, तो तुम्हारा द्रष्टा और भी मजबूत होता है; और जब अनुभूतियों को देखते हो, तो तुम्हारा द्रष्टा फिर और मजबूत होता है। जब तुम अपनी

भावदशाओं को देखते हो, तो द्रष्टा इतना मजबूत हो जाता है कि स्वयं बना रह सकता है—स्वयं को देखता हुआ, जैसे कि अंधेरी रात में जलता हुआ एक दीया न केवल अपने आस-पास प्रकाश करता है, बल्कि स्वयं को भी प्रकाशित करता है।

द्रष्टा को उसकी विशुद्धता में खोज लेना अध्यात्म में सबसे बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि तुम्हारे भीतर का द्रष्टा तुम्हारी आत्मा है, तुम्हारे भीतर का द्रष्टा तुम्हारा अमरत्व है। लेकिन एक क्षण के लिए भी यह मत सोचो, “मैंने पा लिया,” क्योंकि तब भी उसी क्षण तुम चूक जाते हो।

अवलोकन एक सनातन प्रक्रिया है; तुम गहन से गहनतर होते जाते हो, लेकिन ऐसे अंतिम छोर पर तुम कभी नहीं पहुँचते जहाँ कह सको “मैंने पा लिया।” बल्कि जितने गहरे तुम जाते हो उतना ही तुम्हें बोध होता है कि तुम एक ऐसी प्रक्रिया में प्रवेश कर गए जो सनातन है—अनादि और अनंत।

लेकिन लोग बस दूसरों को देख रहे हैं;

वे कभी स्वयं को देखने की चिंता नहीं लेते। हर कोई देख रहा है—यह सबसे उथले तल पर देखना है—कि दूसरा व्यक्ति क्या कर रहा है, दूसरा व्यक्ति क्या पहन रहा है, वह कैसा लगता है। हर व्यक्ति देख रहा है; देखने की प्रक्रिया कोई ऐसी नई बात नहीं है, जिसे तुम्हारे जीवन में प्रवेश देना है। उसे बस गहराना है, दूसरों से हटाकर स्वयं की आंतरिक अनुभूतियों, विचारों और भावदशाओं की ओर करना है—और अंततः स्वयं द्रष्टा की ओर ही इंगित कर देना है।

गाड़ी में एक यहूदी एक पादरी के सामने बैठा है।

“महाराज, आपने कॉलर उलटा करके पीछे की ओर क्यों पहना हुआ है?”

“क्योंकि मैं एक फादर हूँ,” पादरी ने जवाब दिया।

“फादर तो मैं भी हूँ, लेकिन मैं अपना कॉलर ऐसे नहीं पहनता,” यहूदी कहता है।

“ओह, लेकिन मैं तो हजारों के लिए फादर हूँ।”

“फिर तो शायद,” यहूदी कहता है, “आपको अपनी पतलून उलटी करके पहननी चाहिए।”

लोग एक-दूसरे को बड़े गौर से देखते हैं।

दो पोलक टहलने के लिए बाहर गए और अचानक बारिश होने लगी। “जल्दी करो,” एक ने दूसरे से कहा, “अपना

छाता खोलो।”

“उससे कुछ नहीं होगा,” दूसरा बोला, “मेरी छतरी में छेद ही छेद हैं।”

“तो तुम छतरी लाए ही क्यों थे?”

“मैंने सोचा ही नहीं था कि बारिश भी हो सकती है।”

लोगों की हास्यास्पद बातों पर तुम आसानी से हंस सकते हो, लेकिन कभी तुम स्वयं पर भी हंसे हो? कभी तुमने स्वयं को कुछ हास्यास्पद करते हुए पकड़ा है? नहीं, स्वयं को तुम बिलकुल अनदेखा रखते हो; तुम्हारा सारा देखना दूसरों के विषय में ही है, और उसका कोई लाभ नहीं है।

अवलोकन की इस ऊर्जा का उपयोग अपने अंतस के रूपांतरण के लिए कर लो। यह इतना आनंद दे सकती है, इतने आशीर्षक बरसा सकती है कि तुम स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। सरल-सी प्रक्रिया है, लेकिन एक बार तुम इसका उपयोग स्वयं पर करने लगे, तो यह एक ध्यान बन जाता है।

किसी भी चीज को ध्यान बनाया जा सकता है।

जो कुछ भी तुम्हें तुम तक ले जाए, वही ध्यान है। और अपना स्वयं का ध्यान खोज लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि उस खोजने में ही तुम अथाह आनंद पा लोगे। और क्योंकि यह तुम्हारी अपनी खोज है—तुम पर आरोपित कोई विधि-विधान नहीं—उसके भीतर तुम सहजता से गहरे चले जाओगे। और जितने गहरे तुम उसके

भीतर जाओगे, उतने ही सुखी अनुभव करोगे—शांत, अधिक मौन, अधिक एकजुट, अधिक महिमावान, अधिक प्रसादपूर्ण।

अवलोकन तो तुम सभी जानते हो, इसलिए उसे सीखने का कोई प्रश्न नहीं है, केवल देखने के विषय को बदलने का प्रश्न है। उसे करीब पर ले आओ। अपने शरीर को देखो, और तुम चकित होओगे। अपना हाथ मैं बिना द्रष्टा हुए भी हिला सकता हूँ, और द्रष्टा होकर भी हिला सकता हूँ। तुम्हें भेद नहीं दिखाई पड़ेगा, लेकिन मैं भेद को देख सकता हूँ। जब मैं हाथ को द्रष्टा-भाव के साथ हिलाता हूँ तो उसमें एक प्रसाद और सौंदर्य होता है, एक शांति और एक मौन होता है। तुम हर कदम को देखते हुए चल सकते हो, उससे तुम्हें वे सब लाभ तो मिलेंगे ही जो चलना तुम्हें एक व्यायाम के रूप में दे सकता है, साथ ही इससे तुम्हें एक बड़े सरल ध्यान का लाभ भी मिलेगा।

बोधगया में जहां बुद्ध संबोधि को उपलब्ध हुए एक मंदिर बनाया गया है दो बातों की स्मृति में—एक है वह बोधि-वृक्ष जिसके नीचे बुद्ध ध्यान में बैठा करते थे। वृक्ष के बाजू में छोटे-छोटे पत्थर हैं धीरे-धीरे चलने के लिए। वे बैठते, ध्यान करते और जब उन्हें लगता कि बैठना बहुत ज्यादा हो गया और शरीर के लिए कुछ व्यायाम की जरूरत है—तब वे उन पत्थरों पर चलने लगते। वह उनका चलते हुए ध्यान करना था।

जब मैं बोधगया में ध्यान-शिविर ले

रहा था तो मंदिर देखने गया। मैंने तिब्बत से, जापान से, चीन से आए लामाओं को देखा। वे सभी बोधि-वृक्ष को अपनी श्रद्धांजलि दे रहे थे, और मुझे एक भी लामा नजर नहीं आया जो उन पत्थरों के प्रति सम्मान प्रकट कर रहा हो जिन पर बुद्ध मीलों-मील चले थे। मैंने उन्हें कहा, “यह ठीक नहीं है। तुम्हें उन पत्थरों को नहीं भूलना चाहिए। गौतम बुद्ध के चरणों ने उन्हें लाखों बार स्पर्श किया है। लेकिन मुझे पता है तुम उनकी ओर कोई ध्यान क्यों नहीं दे रहे, क्योंकि तुम बिल्कुल भूल चुके हो कि बुद्ध का इस बात पर जोर था

कि तुम अपने शरीर के हर कृत्य का अवलोकन करो: चलना, बैठना, लेटना।”

एक भी क्षण तुम बेहोशी में मत जाने दो। द्रष्टा होना तुम्हारे होश को पैना करेगा। यही मूल धर्म है—बाकी तो सब कोरी बातचीत है। लेकिन मुझसे पूछते हो, “क्या इसके अतिरिक्त कुछ और भी है?” नहीं, यदि तुम केवल द्रष्टा होना भर साध सको तो किसी और चीज की जरूरत नहीं है।

यहां मेरा प्रयास है कि धर्म को जितना हो सके सरल बना दूं। सब धर्मों ने ठीक इससे विपरीत प्रयास किया है: उन्होंने

चीजों को बहुत जटिल बना लिया है—इतना जटिल कि लोगों ने कभी उनको करने की चेष्टा ही नहीं की। उदाहरण के लिए, बौद्ध शास्त्रों में बौद्ध भिक्षुओं के लिए तैंतीस हजार नियम हैं, और उन्हें स्मरण रखना तक असंभव है। तैंतीस हजार की संख्या ही तुम्हें धबड़ाने के लिए पर्याप्त है: “मैं तो गया! मेरा पूरा जीवन व्यथित और विनष्ट हो जाएगा।”

मैं तुम्हें सिखाता हूं कि बस एक नियम खोज लो जो तुम्हें ठीक बैठता हो, जो तुम्हारे साथ लयबद्ध होता हो—और वह पर्याप्त है।¹⁰

साक्षित्व के बीज और अ-मन के फूल

साक्षित्व किस प्रकार अ-मन तक ले जाता है? मैं अपने शरीर, अपने विचारों और भावों को देख पाने में सक्षम होता जा रहा हूँ, और यह अच्छा लगता है। लेकिन निर्विचार के क्षण बीच-बीच में बहुत-बहुत दूरी पर आते हैं। जब मैं आपको यह कहते सुनता हूँ कि “साक्षी होना ही ध्यान है,” तो मुझे लगता है बात मेरी समझ में पड़ती है। लेकिन जब आप ‘अ-मन’ की बात करते हैं तो वह मुझे बिलकुल समझ नहीं आती। आप कृपया कुछ कहेंगे?

ध्यान एक बहुत लंबी तीर्थयात्रा तय करता है। जब मैं कहता हूँ “साक्षी होना ही ध्यान है,” तो यह ध्यान की शुरुआत है। और जब मैं कहता हूँ “ध्यान अ-मन है,” तो यह यात्रा की पूर्णाहुति है। साक्षित्व प्रारंभ है, और अ-मन है पूर्णाहुति। साक्षित्व अ-मन तक पहुंचने की विधि है।

स्वभावतः साक्षित्व तुम्हें अधिक सरल लगेगा। वह तुम्हारे करीब पड़ता है। लेकिन साक्षित्व केवल बीज की भांति है और फिर प्रतीक्षा का एक लंबा समय होता है—केवल प्रतीक्षा ही नहीं, बल्कि श्रद्धा कि यह बीज अंकुरित होगा ही, कि यह पौधा भी बनेगा, कि एक दिन वसंत आएगा और पौधे में फूल भी आएंगे। अ-मन खिलावट की अंतिम स्थिति है।

बीज बोना निश्चित ही बहुत सरल है। यह तुम्हारे हाथों में है। लेकिन फूल ले आना तुम्हारे बस के बाहर है। तुम पूरी

भूमि तैयार कर सकते हो, लेकिन फूल अपने-आप से आएंगे। तुम उन्हें आने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। वसंत तुम्हारी पहुंच के बाहर है। लेकिन यदि तुम्हारी तैयारी ठीक है, तो वसंत आता है। यह पूरी तरह सुनिश्चित है।

जिस तरह से तुम बढ़ रहे हो वह बिलकुल ठीक है। साक्षित्व तुम्हारा मार्ग है और कभी-कभार तुम विचारशून्य क्षण को भी अनुभव करने लगे हो। ये अ-मन की झलकें हैं, लेकिन केवल एक क्षण के लिए।

एक बुनियादी नियम याद रखो: जो एक क्षण के लिए ठहर सकता है, वह सनातन भी बन सकता है, क्योंकि तुम्हें हमेशा एक ही क्षण मिलता है—दो क्षण एक साथ नहीं मिलते। और यदि तुम एक क्षण को निर्विचार दशा में रूपांतरित कर सको, तो तुम राज सीखने लगे। तो फिर कोई बाधा नहीं है कि तुम क्यों नहीं बदल

सकते। दूसरा क्षण भी उसी संभावना और उसी क्षमता को लिए हुए अकेला ही आएगा।

यदि तुम राज जान जाओ, तो तुम्हारे हाथ कुंजी लग गई जो हर क्षण को अ-मन की झलक के लिए खोल दे सकती है। अ-मन अंतिम अवस्था है, जब मन सदा-सदा के लिए विलीन हो जाता है, और निर्विचार अंतराल तुम्हारी अंतर्निहित वास्तविकता बन जाता है। यदि ये थोड़ी-सी झलकें आ रही हैं तो इनसे पता चलता है कि तुम सही मार्ग पर हो और सही विधियों का उपयोग कर रहे हो।

लेकिन अधीर मत होओ। अस्तित्व बड़ा धैर्य चाहता है। परम रहस्य उन्हीं के लिए खुलते हैं जिनमें अथाह धैर्य होता है। एक बार कोई व्यक्ति अ-मन की दशा में आ जाए तो कुछ भी उसे उसकी अंतः-सत्ता से विचलित नहीं कर सकता। अ-मन की शक्ति से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। ऐसे व्यक्ति को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता। कोई मोह, कोई लोभ, कोई ईर्ष्या, कोई क्रोध, कुछ भी उसमें उठ नहीं सकता। अ-मन एक बिलकुल विशुद्ध आकाश है जिसमें कोई बादल नहीं।

तुम कहते हो, “साक्षित्व किस प्रकार अ-मन तक ले जाता है?” एक अंतर्भूत नियम है: विचारों का अपना कोई जीवन नहीं है। वे परजीवी हैं। वे तुम्हारे तादात्म्य पर जीते हैं जो तुमने उनके साथ बना लिया है। जब तुम कहते हो, “मैं क्रोधित हूँ” तो तुम क्रोध में जीवन ऊर्जा डाल रहे हो,

क्योंकि तुम क्रोध के साथ तादात्म्य कर रहे हो।

लेकिन जब तुम कहते हो, “मैं अपने भीतर मन के परदे पर से क्रोध को गुजरता देख रहा हूँ,” तो तुम क्रोध को अब कोई जीवन, कोई रस, कोई ऊर्जा नहीं दे रहे हो। तुम उसे देख पाओगे क्योंकि तुमने उससे तादात्म्य नहीं किया है। क्रोध बिलकुल नपुंसक है, उसका तुम पर कोई प्रभाव नहीं है, वह तुम्हें बदलता नहीं, प्रभावित नहीं करता। वह बिलकुल खोखला और मुरदा है। वह गुजर जाएगा और आकाश को स्वच्छ और मन के परदे को खाली छोड़ जाएगा।

धीरे-धीरे तुम अपने विचारों से बाहर निकलने लगते हो। साक्षी और द्रष्टा की पूरी प्रक्रिया ही यही है। दूसरे शब्दों में, जार्ज गुरजिएफ इसे ‘अतादात्म्य’ कहा करते थे। अब तुम अपने विचारों के साथ तादात्म्य नहीं बना रहे। तुम हट कर अकेले खड़े हुए हो—तटस्थ, जैसे कि वे किसी और के विचार हों। तुमने उनसे अपने संबंध तोड़ लिए। तभी तुम उन्हें देख सकते हो।

द्रष्टा होने के लिए एक निश्चित दूरी की जरूरत है। यदि तुम उनके साथ तादात्म्य बनाए हुए हो, तो कोई दूरी नहीं हुई, वे बहुत करीब हैं। यह ऐसे ही है जैसे तुम दर्पण को अपनी आंख के बहुत करीब लगा लो—तब तुम अपना चेहरा नहीं देख पाओगे। एक निश्चित दूरी चाहिए, तभी तुम दर्पण में अपना चेहरा देख सकते हो।

यदि विचार तुम्हारे बहुत करीब हों, तो

तुम उनके द्रष्टा नहीं हो सकते, तब तुम अपने विचारों से प्रभावित हो जाते हो और उन्हीं में रंग जाते हो। क्रोध तुम्हें क्रोधित कर देता है, लोभ तुम्हें लोभी कर देता है, वासना तुम्हें वासना से भर देती है, क्योंकि बीच में बिलकुल भी दूरी नहीं है। वे इतने करीब हैं कि तुम यह सोचने को बाध्य हो कि तुम और तुम्हारे विचार एक हैं।

द्रष्टृत्व इस ऐक्य को तोड़कर एक विभाजन पैदा कर देता है। जितना तुम अवलोकन करते हो, दूरी उतनी बड़ी हो जाती है; जितनी बड़ी दूरी होती है, उतनी ही कम ऊर्जा तुम्हारे विचार तुमसे ग्रहण करते हैं, और अन्य तो कोई स्रोत उनके पास है ही नहीं।

शीघ्र ही वे मरने लगते हैं, मिटने लगते हैं। मिटने के इन क्षणों में तुम्हें अ-मन की पहली झलक मिलेगी—जैसा कि तुम अनुभव कर रहे हो। तुम कहते हो, “मैं अपने शरीर, अपने विचारों और भावों को देख पाने में सक्षम होता जा रहा हूँ, और यह अच्छा लगता है।” यह तो केवल बस शुरुआत है। शुरुआत भी अपूर्व रूप से सुंदर है। बस ठीक मार्ग पर आ जाना ही—चाहे तुम एक भी कदम न बढ़ाओ—तुम्हें अकारण ही अपूर्व आनंद से भर देगा।

और एक बार तुम ठीक मार्ग पर चलने लगे तो तुम्हारा आनंद, तुम्हारे सुंदर अनुभव और-और गहराएंगे, नए रंगों, नए फूलों और नई सुगंधों के साथ और-और फैलेंगे।

तुम कहते हो, “लेकिन निर्विचार के

क्षण बीच-बीच में बहुत-बहुत दूरी पर आते हैं।" यह एक बड़ी उपलब्धि है, क्योंकि लोगों को तो एक अंतराल का भी पता नहीं है। उनके विचारों की सदा ही धक्का-मुक्की रहती है। विचारों पर विचार, कंधे से कंधा मिलाए। लाइन लगी रहती है—चाहे तुम जागे हो कि सोए हो। जिन्हें तुम अपने स्वप्न कहते हो वे चित्रों के रूप में विचारों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, क्योंकि अचेतन मन अक्षरों की भाषा नहीं जानता।

जो तुम अनुभव कर रहे हो वह इस बात का बड़ा संकेत है कि तुम सही मार्ग पर हो। साधक के सामने सदा ही यह प्रश्न रहता है कि वह ठीक दिशा में चल रहा है कि नहीं। कोई सुरक्षा, कोई संरक्षण, कोई गारंटी नहीं है। सभी आयाम खुले हुए हैं; सही का चुनाव तुम कैसे करोगे?

ये उपाय हैं और कसौटियां हैं कि व्यक्ति कैसे चुनाव करे। यदि तुम किसी भी मार्ग पर, किसी भी विधि पर चलो और वह तुम्हारे लिए आनंद ले आए, अधिक संवेदनशीलता और अधिक द्रष्टा-भाव ले आए और तुम्हें मंगल का एक भाव दे दे, तो यही एक कसौटी है कि तुम ठीक मार्ग पर चल रहे हो। यदि तुम और दुखी, और क्रोधित, और अहंकारी, और लोभी, और वासनायुक्त हो जाओ तो ये संकेत हैं कि तुम गलत मार्ग पर चल रहे हो।

सही मार्ग पर तुम्हारा आनंद रोज-रोज अधिकाधिक विकसित होता जाएगा। और सुंदर अनुभूतियों के तुम्हारे अनुभव अपार रूप से अलौकिक व रंगपूर्ण हो

जाएंगे—रंग जो तुमने संसार में कभी देखे नहीं, सुगंधें जो तुमने संसार में कभी अनुभव नहीं कीं। फिर तुम मार्ग पर चल सकते हो बिना इस भय के कि तुम गलत भी जा सकते हो।

ये अंतर्अनुभव तुम्हें सदा ठीक मार्ग पर रखेंगे। बस इतना स्मरण रखो कि वे विकसित हो रहे हैं। इसका अर्थ है कि तुम बढ़ रहे हो। अब तुम्हारे पास निर्विचार के कुछ क्षण हैं। यह कोई साधारण उपलब्धि नहीं है, यह एक बड़ी उपलब्धि है क्योंकि लोग तो अपने पूरे जीवन में भी कोई ऐसा क्षण नहीं जान पाते जब कोई विचार न हो।

ये अंतराल बढ़ेंगे। जैसे-जैसे तुम अधिक केंद्रित होओगे, अधिक सजग होओगे, ये अंतराल बढ़े होने लगेंगे। और यदि तुम बिना पीछे मुड़े, बिना भटके चलते चले जाओ तो वह दिन भी दूर नहीं है—यदि तुम सीधे चलते रहो, तो वह दिन दूर नहीं है जब पहली बार तुम्हें लगेगा कि अंतराल इतने बड़े हो गए हैं कि घंटों बीत जाते हैं और एक भी विचार नहीं उठता। अब तुम्हें अ-मन के बृहत्तर अनुभव मिलने लगे।

परम उपलब्धि तब होती है जब तुम चौबीस घंटे अ-मन से घिरे रहते हो। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम अपने मन का उपयोग नहीं कर सकते। यह भ्रांति उन लोगों द्वारा फैलाई गई है जो अ-मन के विषय में कुछ भी नहीं जानते।

अ-मन का यह अर्थ नहीं है कि तुम मन का उपयोग नहीं कर सकते। इसका इतना ही अर्थ है कि मन तुम्हारा उपयोग नहीं कर

सकता। अ-मन का यह अर्थ नहीं है कि मन नष्ट हो गया। अ-मन का इतना ही अर्थ है कि मन हटा कर अलग रख दिया गया। जिस क्षण भी तुम संसार से संवाद करना चाहो उसे सक्रिय कर ले सकते हो, फिर वह तुम्हारा गुलाम हो जाएगा। अभी तो वह तुम्हारा मालिक है। जब तुम अकेले भी बैठे होते हो तो वह चलता रहता है: याकेटी-याक, याकेटी-याक! और तुम कुछ भी नहीं कर सकते। तुम इतने असहाय हो।

अ-मन का इतना ही अर्थ है कि मन अपने सही स्थान पर आ गया। गुलाम की तरह वह अच्छा यंत्र है। मालिक की भांति बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है, खतरनाक है। तब वह तुम्हारा पूरा जीवन नष्ट कर देगा।

मन केवल एक माध्यम है—जब तुम दूसरों से जुड़ना चाहते हो। लेकिन जब तुम अकेले होते हो, तो मन की कोई जरूरत नहीं है। तो जब भी तुम उसका उपयोग करना चाहो, कर सकते हो। फिर एक बात और याद रखो: जब मन घंटों तक शांत रहता है, तो वह ताजा और युवा हो जाता है, अधिक सक्रिय, अधिक संवेदनशील और विश्राम करके पुनरुज्जीवित हो जाता है।

साधारण लोगों के मन लगभग तीन या चार वर्ष की उम्र के आस-पास सक्रिय होते हैं और सत्तर-अस्सी वर्ष तक बिना रुके चलते रहते हैं। स्वभावतः वे बहुत सृजनात्मक नहीं हो सकते। वे बिलकुल थके-टूटे होते हैं, और थकते हैं कूड़े-कचरे से। संसार में लाखों लोग बिना

किसी सृजनात्मकता के जीते हैं। और सृजनात्मकता महानतम आनंददायी अनुभवों में से एक है। लेकिन लोगों के मन थक चुके हैं। वे ऊर्जा के अतिरेक की दशा में नहीं हैं।

अ-मन को प्राप्त हुआ व्यक्ति मन को विश्राम में रखता है, ऊर्जा से परिपूर्ण और अति संवेदनशील रखता है, उसको तैयार रखता है कि जिस क्षण भी आदेश दे वह सक्रिय हो जाए। यह कोई संयोग नहीं है कि जिन लोगों को अ-मन का अनुभव हुआ है, उनके शब्दों में अपना एक जादू आने लगता है। जब वे अपने मन का उपयोग करते हैं तो उसमें एक करिश्मा होता है, एक चुंबकत्व होता है। उसमें अत्यंत सहजता होती है और सूर्योदय से पूर्व भोर के ओस-क्षणों की सी ताजगी होती है। और मन अभिव्यक्ति तथा सृजनात्मकता के लिए प्रकृति का सबसे विकसित माध्यम है।

तो ध्यानी व्यक्ति, या दूसरे शब्दों में अ-मनी व्यक्ति अपने गद्य को भी पद्य में बदल लेता है। बिना किसी प्रयास के उसके शब्द इतने अधिकार से भर जाते हैं कि उनके लिए किसी तर्क की जरूरत नहीं रहती, वे स्वयं अपने तर्क बन जाते हैं। उनमें जो शक्ति होती है वह स्व-प्रमाणित सत्य बन जाती है। तर्क या शास्त्रों से किसी और समर्थन की जरूरत नहीं रहती। अ-मन को प्राप्त हुए व्यक्ति के शब्दों में अपनी एक अंतर्भूत निश्चितता होती है।

और यदि तुम ग्रहण करने और सुनने को तैयार होओ तो इस स्व-प्रमाणित सत्य को अपने हृदय में अनुभव करोगे।

तुम कहते हो, “जब मैं आपको यह कहते सुनता हूँ कि ‘साक्षी होना ही ध्यान है’ तो मुझे लगता है: बात मेरी समझ में पड़ती है। लेकिन जब ‘अ-मन’ की बात करते हैं तो वह मुझे बिल्कुल समझ नहीं आती।” कैसे समझ पड़ सकती है? वह तुम्हारे भविष्य की संभावना है। ध्यान तुमने शुरू कर दिया है, वह चाहे अभी प्रारंभिक स्थिति में हो, लेकिन तुम्हें उसका कुछ अनुभव हुआ है जो तुम्हें मुझे समझने में सक्षम बनाता है। लेकिन यदि तुम ध्यान को समझ सकते हो, तो फिर बिल्कुल भी चिंता मत करो। ध्यान निश्चित ही अ-मन तक ले जाता है, जैसे हर नदी बिना किसी नक्शे और बिना किसी मार्गदर्शन के सागर की ओर बढ़ती जाती है।

हर नदी बिना किसी अपवाद के अंततः सागर पर पहुंच जाती है। हर ध्यान, बिना किसी अपवाद के, अंततः अ-मन की दशा तक पहुंच जाता है।

लेकिन स्वभावतः गंगा जब हिमालय के पहाड़ों और घाटियों में भटक रही होती है, तो उसे कुछ पता नहीं होता कि सागर क्या है, वह सागर के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती, लेकिन सागर की ओर बढ़ती चली जाती है क्योंकि पानी में सदा निम्नतम स्थान खोज लेने की एक अंतर्भूत क्षमता होती है, और सागर निम्नतम है। तो

नदियां हिमालय के शिखरों पर जन्मती हैं और तत्क्षण निम्नतर क्षेत्रों की ओर बहने लगती हैं और अंततः वे सागर को खोज ही लेंगी।

ध्यान की प्रक्रिया इससे बिल्कुल उलटी है—वह उच्चतर शिखरों की ओर ऊपर उठता है। और अ-मन परम शिखर है। अ-मन एक सीधा-सरल शब्द है, लेकिन इसका अर्थ होता है: संबोधि, मुक्ति, हर बंधन से स्वतंत्रता, मृत्यु-अतीत और अमृत का अनुभव।

ये बड़े शब्द हैं और मैं यह नहीं चाहता कि तुम इनसे भयभीत होओ। तो मैं एक सीधे से शब्द का उपयोग करता हूँ: अ-मन। मन को तुम जानते हो। उस अवस्था की तुम कल्पना कर सकते हो जब मन अक्रिया में हो जाएगा।

एक बार यह मन निष्क्रिय हो जाए, तो तुम ब्रह्मांडीय मन के, जागतिक मन के हिस्से हो जाते हो। जब तुम जागतिक मन के हिस्से होते हो तो तुम्हारा व्यक्तिगत मन एक सुंदर अनुचर बन जाता है। उसने मालिक को पहचान लिया। और वह जागतिक मन से उन लोगों के लिए खबर लाता है जो अभी भी व्यक्तिगत मन से बंधे हुए हैं। जब मैं तुमसे बोल रहा हूँ तो वास्तव में ब्रह्मांड मेरा उपयोग कर रहा है। मेरे शब्द मेरे शब्द नहीं हैं। ये जागतिक सत्य के शब्द हैं। वही इनकी शक्ति है, वही इनका करिश्मा है, वही इनका जादू है। ॥

साक्षित्व पर्याप्त है

मैंने सदा आपको यह कहते सुना है, “करना छोड़ो। देखो।”

हाल ही में मैंने कई बार आपको यह कहते सुना है कि मन हमारे मालिक की अपेक्षा हमारा सेवक होना चाहिए। ऐसा लगता है कि देखने के अतिरिक्त और कुछ भी करने को नहीं है। लेकिन फिर भी प्रश्न उठता है:

क्या इस उच्छृंखल को मात्र देखने के अतिरिक्त उसके साथ कुछ और नहीं किया जा सकता?

इस उच्छृंखल सेवक के साथ और कुछ भी करने जैसा नहीं है, सिवाय उसे देखने के। ऊपरी तौर पर तो यह अत्यंत जटिल समस्या का एक अत्यंत सरल समाधान दिखाई पड़ता है। लेकिन यह अस्तित्व के रहस्यों का हिस्सा है। समस्या चाहे बहुत जटिल हो, समाधान अत्यंत सरल हो सकता है।

देखना, साक्षी होना, सजग होना इत्यादि मन की पूरी जटिलता को सुलझाने के लिए बड़े छोटे शब्द लगते हैं। वंश, परंपरा, संस्कार और पूर्वाग्रह के लाखों वर्ष मात्र देखने भर से किस तरह मिट जाएंगे? लेकिन वे मिट जाते हैं।

जैसा कि गौतम बुद्ध कहते थे, यदि घर में प्रकाश जलता हो तो चोर उस घर के करीब नहीं आते—वे जान जाते हैं कि घर का मालिक जागा है, क्योंकि खिड़कियों से, द्वार से प्रकाश झांक रहा है, तुम देख सकते हो कि प्रकाश जल रहा है। यह घर में घुसने का समय नहीं है। जब प्रकाश

बुझा होता है तो चोर घर की ओर आकर्षित होते हैं। अंधकार एक आमंत्रण बन जाता है। जैसा कि गौतम बुद्ध कहा करते थे, यही बात तुम्हारे विचारों, कल्पनाओं, स्वप्नों, चिंताओं और पूरे मन के संबंध में है।

यदि साक्षी मौजूद हो, तो साक्षी लगभग प्रकाश की भांति है। ये चोर भागने लगते हैं। और यदि इन चोरों को पता लग जाए कि साक्षी मौजूद नहीं है तो वे अपने भाइयों को, अपने रिश्तेदारों को और सबको बुलाने लगते हैं कि, “आ जाओ।” यह प्रकाश जैसी सीधी घटना है। जिस क्षण तुम प्रकाश भीतर लाते हो, अंधकार मिट जाता है। तुम यह नहीं पूछते कि, “क्या अंधकार को मिटाने के लिए प्रकाश ही पर्याप्त है?” या, “जब हम प्रकाश ला चुके हों, तो क्या अंधकार को मिटाने के लिए कुछ और भी करना पड़ेगा?”

नहीं, बस प्रकाश की उपस्थिति मात्र ही अंधकार की अनुपस्थिति है और प्रकाश की अनुपस्थिति अंधकार की उपस्थिति है।

साक्षी की उपस्थिति मन की अनुपस्थिति है और साक्षी की अनुपस्थिति मन की उपस्थिति है।

तो जिस क्षण तुम देखना शुरू करते हो, धीरे-धीरे जैसे तुम्हारा द्रष्टा मजबूत होता है, तुम्हारा मन क्षीण हो जाएगा। जिस क्षण मन को बोध होता है कि द्रष्टा परिपक्व हो गया तो मन तत्क्षण एक अच्छे नौकर की तरह समर्पण कर देता है। वह एक यंत्र-रचना है। यदि मालिक आ पहुंचे, तो मशीन का उपयोग किया जा सकता है।

यदि मालिक मौजूद न हो या गहरी नींद में सोया हो तो मशीन अपने आप से जो कर सकती है करती चली जाती है। न तो कोई आदेश देने को है, न कोई यह कहने को है कि, “नहीं, रुक जाओ। यह काम नहीं करना है।” फिर मन को धीरे-धीरे विश्वास हो जाता है कि वही मालिक है, और हजारों वर्षों से वह तुम्हारा मालिक रहा है।

तो जब तुम साक्षी होने का प्रयास करते हो तो मन संघर्ष करता है, क्योंकि यह उसके जीवन-मरण का प्रश्न है। वह बिल्कुल भूल ही चुका है कि वह केवल सेवक है। तुम इतने समय से अनुपस्थित हो—तुम्हें वह पहचानता ही नहीं। इसीलिए साक्षी और विचारों में संघर्ष चलता है। लेकिन अंतिम विजय तुम्हारी ही होगी, क्योंकि स्वभाव और अस्तित्व दोनों ही चाहते हैं कि तुम मालिक बनो और मन सेवक हो। तब चीजें तारतम्यता में आ जाती हैं। तब मन पथ-भ्रष्ट नहीं हो सकता। तब सब कुछ अस्तित्वगत रूप से

शिथिल, शांत और अपनी नियति की ओर बहता हुआ होता है। देखने के अतिरिक्त तुम्हें और कुछ नहीं करना है।

पैडी ने नीलामी में एक तोता खरीदा। उसने नीलाम कराने वाले से पूछा: “इस तोते पर मैंने काफी पैसे लगाए हैं—तुम्हें पक्का है कि यह बोल सकता है?” विक्रेता ने जवाब दिया, “निश्चित ही मुझे पूरा विश्वास है; यही तो तुम्हारे खिलाफ बोली लगा रहा था।”

ऐसी मन की बेहोशी है और ऐसी मन की मूढ़ताएं हैं।

मैंने सुना है, आयरलैंड के नास्तिकों ने जब देखा कि आस्तिकों ने डायल-ए-प्रेयर सर्विस शुरू की है, तो उन्होंने भी शुरू कर दी, जबकि वे नास्तिक हैं। प्रतियोगी मन है... उन्होंने भी डायल-ए-प्रेयर सर्विस शुरू कर दी है। जब तुम उन्हें फोन करो, कोई भी जवाब नहीं आता।

दो भिखारी एक रात आग के पास बैठे थे। उनमें से एक बहुत ही उदास था। “जानते हो जिम,” वह बोला, “भिखारी की जिंदगी इतनी मजेदार नहीं होती जितनी लोग कहते हैं। बगीचों के बेंचों पर या किसी ठंडे अस्तबल में रात बिताओ। पैदल चलते रहो और हमेशा पुलिस से बचते-बचाते रहो। एक शहर से दूसरे शहर में टुकड़ाए जाओ, और इस बात का ठिकाना नहीं कि अगला भोजन कहां से

मिलेगा; अपने साथियों से तिरस्कार सहो...” यह कहते-कहते उसकी आवाज लड़खड़ाने लगी और उसने लंबी सांस भरी।

“अच्छा,” दूसरा भिखारी बोला, “यदि तुम्हें ऐसा ही लगता है तो तुम अपने लिए कोई नौकरी क्यों नहीं ढूँढ लेते?” “क्या!” पहला भिखारी आश्चर्य से बोला, “और अपनी असफलता स्वीकार कर लूं?”

मन मालिक होने का आदी हो गया है। उसके होश ठिकाने लगाने में थोड़ा समय लगेगा। साक्षित्व पर्याप्त है। यह एक बड़ी शांत प्रक्रिया है, लेकिन इसके परिणाम विराट हैं। जहां तक मन के अंधकार को मिटाने का संबंध है, साक्षित्व से बेहतर कोई और उपाय नहीं है। वास्तव में, ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं। मैं उन सब विधियों से गुजरा हूँ—मात्र बौद्धिक रूप से नहीं। हर विधि से गुजरने और उसके सार को खोजने में मुझे वर्षों लगे।

और एक सौ बारह विधियों से गुजरने के बाद, मैं हैरान हुआ कि सब का सार साक्षित्व ही है; विधियों के गैर-अनिवार्य अंग तो भिन्न हैं, लेकिन सबका केंद्र साक्षित्व है।

तो मैं तुमसे कह सकता हूँ कि पूरे विश्व में एक ही ध्यान है, और वह है साक्षित्व की कला। वही सब कुछ कर देगी—तुम्हारी समग्र सत्ता का रूपांतरण—और सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के द्वार खोल देगी।¹²

परिशिष्ट-सूची

xvii	ओशो के विषय में
xx	संदर्भ पुस्तकें
xxvi	ध्यान-विधियों की सूची
xxix	ओशो का अंग्रेजी साहित्य
xxxiii	ओशो का हिंदी साहित्य
xxxvi	ओशो पत्रिकाएं

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या शृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है: ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात्।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश चन्द्रमोहन था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैरकर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि (परम जागरण) को

उपलब्ध हुए। संबोधि के संबंध में वे कहते हैं: 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूँ। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।' उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। संबोधि घटित होने के पश्चात् भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्डमेडलिस्ट) रहकर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः ही 60-70 हजार की संख्या में श्रोता उनकी सभाओं में उपस्थित

होते। वे आध्यात्मिक जन-जागरण की एक लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध थी जो किसी पार के लोक से आती है।

सन 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि अस्तित्व ने जिस परम भगवत्ता का खजाना उन पर लुटाया है उसे वे पूरी मानवता के प्रति बांट सकें और एक नये मनुष्य को जन्म देने की प्रक्रिया में समग्रतः लग सकें।

ओशो का यह नया मनुष्य 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो ज़ोरबा की भांति भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है और जो गौतम बुद्ध की भांति मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक समग्र व अविभाजित मनुष्य है। इस नये मनुष्य के

ओशो के विषय में

बिना पृथ्वी का कोई भविष्य शेष नहीं है।

सन 1970 में ओशो बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो अकेली भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें बताया कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आसपास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने जाने लगे।

सन 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने के बाद उनके प्रभाव का दायरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जोसस के साथ ही साथ भारतीय अध्यात्म-आकाश के अनेक नक्षत्रों—आदिशंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, ज्ञान, हसीद, सूफी जैसी विभिन्न साधना-परंपराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन,

शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण तथा संभावित परमाणु युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

ओशो अपने आवास से दिन में केवल दो बार बाहर आते—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

सन 1980 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष जून में उन्हें अमरीका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगोन राज्य के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जमीन खरीदी थी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह अर्ध-रेगिस्तानी जगह एक फूलते-फलते कान्यून में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5,000 प्रेमी मित्र मिल-जुलकर अपने सद्गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे। शीघ्र ही यह नगर रजनीशपुरम नाम से संयुक्त राज्य अमरीका का एक निगमीकृत (इन्कापोरेटेड)

शहर बन गया। किंतु कट्टरपंथी ईसाई धर्माधीशों के दबाव में व राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थवश प्रारंभ से ही कान्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्टूबर 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया। जीवन-सत्यों के इतने स्पष्टवादी व मुखर विवेचनों से निहित स्वार्थों की जड़ें और भी चरमराने लगीं।

अक्टूबर 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डालकर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल में घुमाते हुए पोर्टलैंड (ओरेगोन) ले जाया गया। इस प्रकार, जो यात्रा कुल पांच घंटे की है वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असरवाला जहर दिया।

14 नवंबर 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने भी उन्हें समूचे विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। तब ओशो नेपाल चले गये। नेपाल में भी उन्हें अधिक समय तक रहने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी 1986 में ओशो विश्व-भ्रमण के लिए निकले जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से

की, लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतंत्र व लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्जरलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना के अपने आश्रम में लौट आए, जो अब ओशो कम्प्यून् इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्प्यून् इंटरनेशनल में अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित उटोपिया का सपना साकार देखकर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी 1989 को ओशो कम्प्यून् इंटरनेशनल के बुद्ध सभागार में सांध्य-प्रवचन के समय उनके 10,000 शिष्यों व

प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्टूबर 1985 में जेल में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया। इसके बावजूद वे ओशो कम्प्यून् इंटरनेशनल, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल 1989 तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे। इसके बाद के अगले कई महीने उनका शारीरिक कष्ट बढ़ गया।

17 सितंबर 1989 से पुनः गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में हर शाम केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। इस बैठक को उन्होंने "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" नाम दिया। ओशो 16 जनवरी 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सभा में आधे घंटे के लिये उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को "ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड" की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी प्रेम अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर का दर्द इतना बढ़ गया है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी 1990 को, अपराह्न पांच बजे

ओशो शरीर छोड़कर महाप्रयाण कर गये। इसकी घोषणा सांध्य-सभा में की गयी। ओशो की इच्छा के अनुरूप, उसी सांध्य-सभा में उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए लाकर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी 1990 के पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्प्यून् में लाकर च्वांगत्सू हॉल में निर्मित संगमरमर के समाधि भवन में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11 1931 – Jan 19 1990

ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन, ओशो कम्प्यून्, ओशो की विदेह-उपस्थिति में भी आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बना हुआ है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति में अवगाहन कर रहे हैं।

INTRODUCTION
NOTES TO THE READER

1. The Book, Series II, p. 240.
2. Ibid., p. 305.
3. Ibid., p. 240.
4. Ibid., p. 240.
5. Sanyas, Number 3, 1980, p. 4.
6. The Book of the Books, Vol. I, Session 2.

ABOUT MEDITATION

1. The Orange Book, p. 94.
2. The Rajneesh Bible, Vol. IV, Session 2.
3. The Rajneesh Upanishad, Session 3.
4. Light on the Path: Talks in the Himalayas.
5. The Search, Session 7.
6. The Book, Series I, pp. 87-88.
7. Beyond Enlightenment, Session 9.
8. The Psychology of the Esoteric, Session 2.
9. The Golden Future, Session 1.
10. Beyond Enlightenment, Session 28.
11. The Search, Session 7.
12. Guida Spirituale, Session 15.
13. The Book, Series I, p. 230.
14. The Secret of Secrets, Vol. II, Session 3.
15. Guida Spirituale, Session 12.
16. The Book, Series I, p. 28, 30.
17. Ibid., p. 30.
18. Ibid., p. 31.
19. The Book of the Books, Vol. II, Session 8.
20. Guida Spirituale, Session 2.

THE SCIENCE OF MEDITATION

1. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 15.
2. Tantra: The Supreme Understanding, Session 8.
3. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 2.
4. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 9.
5. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 9.
6. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 1.
7. The Book of Wisdom, Vol. I, Session 1.
8. The Book of the Secrets, Vol. V, Session 11.
9. The Book of the Secrets, Vol. V, Session 7.

THE SCIENCE OF MEDITATION

10. The Secret of Secrets, Vol. II, Session 1.
11. Ibid.
12. Yoga: The Alpha and the Omega, Vol. VI, Session 7.
13. Meditation: The Art of Ecstasy, Session 4.
14. The Great Zen Master: Ta Hui, Session 20.
15. Ibid., Session 14.
16. Ancient Music in the Pines, Session 7.
17. A Cup of Tea, Letter 72.
18. The Book of Wisdom, Vol. I, Session 9.
19. Yoga: The Science of the Soul, Vol. III, Session 10.
20. YAA-HOO! The Mystic Rose, Session 8.
21. The Hidden Splendor, Session 10.
22. The Book of Wisdom, Vol. II, Session 7.
23. Sermons in Stones, Session 4.
24. What Is, Is, What Ain't, Ain't, Session 10.
25. Light on the Path: Talks in the Himalayas.

THE MEDITATIONS

Two Powerful Methods for Awakening

1. The Orange Book, pp. 135-136
2. My Way: The Way of the White Clouds, Session 4.
3. Instructions currently in use at Osho Commune International, Poona, India.
4. Meditation: The Art of Ecstasy, Session 3.
5. The Orange Book, pp. 29-30.
6. Ibid., pp. 132-136.

The Meditative Therapies

1. YAA-HOO! The Mystic Rose, Session 30.
2. Instructions currently in use at Osho Commune International, Poona, India.
3. Live Zen, Session 17.
4. The Supreme Doctrine, Session 1.

Dancing as a Meditation

1. The Orange Book, pp. 50-52.
2. Ibid., pp. 49-50
3. Ibid., pp. 143-145.

THE MEDITATIONS

Anything Can Be a Meditation

1. The Orange Book, p. 64.
2. Ibid., pp. 23-26.
3. A Sudden Clash of Thunder, Session 9.
4. The Orange Book, p. 16.
5. The Secret of Secrets, Vol. II, Session 4.
6. The Orange Book, pp. 65-69.

Breath – a Bridge to Meditation

1. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 3.
2. The New Dawn, Session 16.
3. Instructions currently in use at Osho Commune International, Poona, India.
4. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 3.
5. Ibid., Session 5.
6. Ibid.
7. Yoga: The Science of the Soul, Volume II, Session 9.

Opening the Heart

1. The Book, Series I, p. 634.
2. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 12.
3. The Orange Book, pp. 195-196.
4. The Book of the Secrets, Vol. V, Session 7.
5. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 11.
6. The Book of Wisdom, Vol. I, Session 1.
7. Ibid., Session 5.

Inner Centering

1. Unio Mystica, Vol. I, Session 2.
2. The Book of Wisdom, Vol. II, Session 2.
3. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 1.
4. Ibid., Session 5.
5. Ibid., Session 3.
6. Ibid.
7. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 13.

Looking Within

1. The Book of the Secrets, Vol. II, Session 5.
2. Ibid.
3. Ibid.
4. The Secret of Secrets, Vol. I, Session 7.

THE MEDITATIONS

Meditations on Light

1. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 1.
2. The Secret of Secrets, Vol. II, Session 13
3. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 1.
4. Ibid., Session 15.
5. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 15.

Meditations on Darkness

1. The Shadow of the Bamboo, Session 11.
2. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 3.
3. Ibid.

Moving Energy Upwards

1. You Ain't Seen Nothin' Yet, Session 7.
2. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 15.
3. Ibid.

Listening to the Soundless Sound

1. The Secret of Secrets, Vol. I, Session 13.
2. The Orange Book, pp. 153-154
3. Ibid.
4. The Book of the Secrets, Vol. II, Session 11.
5. Yoga: The Science of the Soul, Vol. III, Session 6.
6. The Orange Book, pp. 201-202.
7. The Book of the Secrets, Vol. II, Session 11.
8. Ibid., Session 9.
9. Ibid., Session 11.

Finding the Space Within

1. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 8.
2. Ibid., Session 1.
3. Ibid., Session 13.
4. The Orange Book p. 62-63.
5. Yoga: The Science of the Soul, Vol. III, Session 7.
6. Tantra: The Supreme Understanding, Session 4.

Entering into Death

1. The Revolution, Session 9.

THE MEDITATIONS

2. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 5.
3. Vedanta – Seven Steps to Samadhi, Session 15.

Watching with the Third Eye

1. The Hidden Splendor, Session 19.
2. The Orange Book, pp. 199-200.
3. Ibid., pp. 36-37
4. The Book of the Secrets, Vol. I, Session 5.
5. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 15.
6. The Secret of Secrets, Vol. I, Session 11.

Just Sitting

1. The Book of the Books, Vol. I, Session 9.
2. Ibid.
3. The Orange Book, pp. 114-115.
4. Instructions currently in use at Osho Commune International, Poona, India.
5. Roots and Wings, Session 10.

Rising in Love: A Partnership in Meditation

1. Beyond Enlightenment, Session 16.
2. The Book of the Secrets, Vol. V, Session 3.
3. The Book of the Secrets, Vol. III, Session 1.
4. Ibid.

OBSTACLES TO MEDITATION

1. Light on the Path: Talks in the Himalayas.
2. The Discipline of Transcendence, Vol. IV, Session 3.
3. Light on the Path: Talks in the Himalayas.
4. The Psychology of the Esoteric, Session 2.
5. A Sudden Clash of Thunder, Session 2.
6. Ancient Music In the Pines, Session 3.
7. Yoga: The Alpha and the Omega, Vol. VI, Session 6.
8. The Book of the Secrets, Vol. IV, Session 8.
9. Ibid.
10. Light on the Path: Talks in the Himalayas.
11. The Rebel, Session 17.

QUESTIONS TO THE MASTER

1. The Book of the Books, Vol. IV, Session 10.
2. Beyond Psychology, Session 18.
3. The True Sage, Session 5.
4. The Tantra Vision, Vol. I, Session 8.
5. The Rajneesh Upanishad, Session 10.
6. Ah, This!, Session 8.
7. Yoga: The Science of the Soul, Vol.III, Session 4.
8. Yoga: The Alpha and the Omega, Vol. IV, Session 10.
9. The Hidden Splendor, Session 11.
10. The Golden Future, Session 19.
11. Satyam-Shivam-Sundram, Session 7.
12. Ibid., Session 22.

ध्यान की विधियां	पृष्ठ
सक्रिय-ध्यान (डाइनेमिक मेडिटेशन)	39
कुंडलिनी ध्यान	45
"मिस्टिक रोज़" ध्यान	49
"नो-माइंड" ध्यान	53
बॉर्न अगेन	55
नटराज ध्यान	59
व्हीरलिंग ध्यान	60
दौड़ना, जॉगिंग और तैरना	65
हंसना ध्यान	67
धूम्रपान ध्यान	69
विपस्सना	73
चलते हुए विपस्सना: चंक्रमण	75
श्वासों के बीच के अंतराल को देखना	76
बाजार में अंतराल को देखना	78
स्वप्न पर स्वामित्व	80
मनोदशाओं को बाहर फेंकना	82
बुद्धि से हृदय की ओर	85
प्रार्थना ध्यान	88
शांत हृदय	90
हृदय का केंद्रीकरण	94
अतीशा की हृदय विधि	96
दुखी या सुखी होने का निर्णय	101
वास्तविक स्रोत की खोज	103
झंझावात का केंद्र	105

ध्यान की विधियां	पृष्ठ
अनुभव करो—‘मैं हूँ’	110
मैं कौन हूँ?	112
स्व-सत्ता के केंद्र की ओर	113
अंतर्दर्शन ध्यान	117
समग्रता को देखना	119
ऊर्जा का अंतर्वृत्त	121
स्वर्णिम प्रकाश ध्यान	125
प्रकाश का हृदय	127
सूक्ष्म शरीर को देखना	129
आलोकमयी उपस्थिति	131
आंतरिक अंधकार	135
आंतरिक अंधकार को बाहर लाओ	141
जीवन ऊर्जा का आरोहण—1	143
जीवन ऊर्जा का आरोहण—2	149
नादब्रह्म ध्यान	153
स्त्री-पुरुष जोड़ों के लिए नादब्रह्म	154
ओम् ॐ	155
देववाणी	158
संगीत: एक ध्यान	160
ध्वनि का केंद्र	162
ध्वनि का आरंभ और अंत	165
रिक्त आकाश में प्रवेश करो	169
सब को समाविष्ट करो	172
जेट-सेट के लिए एक ध्यान	174

ध्यान की विधियां	पृष्ठ
विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो	175
बांस की पोली पोंगरी	178
मृत्यु में प्रवेश	181
मृत्यु का उत्सव मनाना	184
गौरीशंकर ध्यान	189
मंडल ध्यान	191
साक्षी को खोजना	192
पंख की भांति छूना	195
नासाग्र को देखना	198
झा-झेन	205
प्रेम का वर्तुल	215
संभोग में कंपना	217
प्रेम का आत्म-वर्तुल	219

BOOKS BY OSHO ENGLISH LANGUAGE EDITIONS

Early Discourses and Writings

A Cup of Tea *Letters to Disciples*
Dimensions Beyond the Known
From Sex to Superconsciousness
The Great Challenge
Hidden Mysteries
I Am the Gate
The Inner Journey
The Long and the Short and the All
The Psychology of the Esoteric
Seeds of Wisdom

Meditation

And Now, and Here (Volumes 1&2)
In Search of the Miraculous (Volumes 1&2)
Meditation: The Art of Ecstasy
Meditation: The First and Last Freedom
The Orange Book *Meditation Techniques*
The Perfect Way
Vigyan Bhairav Tantra (Series 1&2)
(boxed 2-volume set with 112 meditation cards)
The Path of Meditation
YAA-HOO! The Mystic Rose

Buddha and Buddhist Masters

The Dhammapada (Vois 1-12) *The Way of the Buddha*
The Diamond Sutra *The Vajrachchedika Prajnaparamita Sutra*
The Discipline of Transcendence (Volumes 1-4)
On the Sutra of 42 Chapters
The Heart Sutra *The Prajnaparamita Hridayam Sutra*
The Book of Wisdom Atisha's Seven Points of Mind Training

Indian Mystics

The Bauls

The Beloved (Volumes 1&2)

Kabir

The Divine Melody
Ecstasy: The Forgotten Language
The Fish in the Sea is Not Thirsty
The Great Secret
The Guest
The Path of Love
The Revolution

Krishna

Krishna: The Man and His Philosophy

Ashtavakra

Enlightenment: The Only Revolution

The Upanishads

Finger Pointing to the Moon *Adhyatma Upanishad*
Heartbeat of the Absolute *Ishavasya Upanishad*
I Am That *Isa Upanishad*
Behind a Thousand Names *Nirvana Upanishad*
Philosophia Ultima *Mandukya Upanishad*
The Supreme Doctrine *Kenopanishad*
That Art Thou *Sarvasar Upanishad, Kaivalya Upanishad, Adhyatma Upanishad*
The Ultimate Alchemy (Volumes 1&2) *Atma Pooja Upanishad*
Vedanta: Seven Steps to Samadhi *Akshya Upanishad*

Jesus and Christian Mystics

Come Follow to You (Volumes 1-4) *The Sayings of Jesus*
I Say Unto You (Volumes 1&2) *The Sayings of Jesus*
The Mustard Seed *The Gospel of Thomas*
Theologia Mystica *The Treatise of St. Dionysius*

Jewish Mystics

The Art of Dying
The True Sage

Sufism

Just Like That
The Perfect Master (Volumes 1&2)
The Secret
Sufis: The People of the Path (Volumes 1&2)
Unio Mystica (Volumes 1&2) *The Hadiqa of Hakim Sanai*
Journey to the Heart (same as *Until You Die*)
The Wisdom of the Sands (Volumes 1&2)

Tantra

Tantra: The Supreme Understanding
Tilopa's Song of Mahamudra
The Tantra Experience *The Royal Song of Saraha*
(same as *Tantra Vision Vol. 1*)
Tantric Transformation *The Royal Song of Saraha*
(same as *Tantra Vision Vol. 2*)

ओशो का अंग्रेजी साहित्य

Yoga

Yoga: The Alpha and the Omega (Volumes 1-10)
The Yoga Sutras of Patanjali

Tao

The Empty Boat *The Stories of Chuang Tzu*
 The Secret of Secrets (Volumes 1&2)
The Secret of the Golden Flower
 Tao: The Golden Gate (Volumes 1&2)
 Tao: The Pathless Path (Volumes 1&2) *The Stories of Lieh Tzu*
 Tao: The Three Treasures (Volumes 1-4)
The Tao Te Ching of Lao Tzu
 When the Shoe Fits *The Stories of Chuang Tzu*

Western Mystics

Guida Spirituale *On the Desiderata*
 The Hidden Harmony *The Fragments of Heraclitus*
 The Messiah (Volumes 1&2)
Commentaries on Kahlil Gibran's The Prophet
 The New Alchemy: To Turn You On
Mabel Collins' Light on the Path
 Philosophia Perennis (Volumes 1&2)
The Golden Verses of Pythagoras
 Zarathustra: A God That Can Dance *Commentaries on*
Friedrich Nietzsche's Thus Spake Zarathustra
 Zarathustra: The Laughing Prophet *Commentaries on*
Friedrich Nietzsche's Thus Spake Zarathustra

Zen And Zen Masters

Ah, This!
 Ancient Music in the Pines
 And the Flowers Showered
 A Bird on the Wing (same as *Roots and Wings*)
 Dang Dang Doko Dang
 The First Principle
 The Grass Grows By Itself
 Nirvana: The Last Nightmare
 No Water, No Moon
 Returning to the Source
 The Search *Talks on The Ten Bulls of Zen*
 A Sudden Clash of Thunder
 Walking in Zen, Sitting in Zen
 Zen: The Path of Paradox (Volumes 1-3)
 Zen: The Special Transmission
The Mystery School
 Communism and Zen Fire, Zen Wind
 God is Dead: Now Zen is the Only Living Truth
 I Celebrate Myself: God is No Where; Life is Now Here
 No Mind: The Flowers of Eternity
 One Seed Makes the Whole Earth Green

Zen Manifesto: Freedom from Oneself
 Zen: The Mystery and the Poetry of the Beyond

Zen Boxed Sets

The World of Zen *A boxed set of 5 volumes, containing:* *
 Live Zen
 This. This. A Thousand Times This.
 Zen: The Quantum Leap from Mind to No-Mind
 Zen: The Solitary Bird, Cuckoo of the Forest
 Zen: The Diamond Thunderbolt
 Zen: All the Colors of the Rainbow
A boxed set of 5 volumes, containing: *
 The Miracle
 Turning In
 The Original Man
 The Language of Existence
 The Buddha: The Emptiness of the Heart
 Osho: On the Ancient Masters of Zen
A boxed set of 7 volumes, containing: *
 Dōgen, the Zen Master: A Search and a Fulfillment
 Ma Tzu: The Empty Mirror
 Hyakujō: The Everest of Zen, with Bashō's Haikus
 Nansen: The Point of Departure
 Jōshū: The Lion's Roar
 Rinzai: Master of the Irrational
 Isan: No Footprints in the Blue Sky
 *Each volume is also available individually

Zen Masters

Bodhidharma: The Greatest Zen Master *Commentaries on the*
Teachings of the Messenger of Zen from India to China
 The Great Zen Master Ta Hui *Reflections on the Transformation*
of an Intellectual to Enlightenment
 Hsin Hsin Ming: The Book of Nothing
Discourses on the Faith-Mind of Sosan
 Kyōzan: A True Man of Zen
 The Sun Rises in the Evening *Sutras of Yoka Daishi*
 Take it Easy (Volumes 1&2) *Poems of Ikkyū*
 This Very Body the Buddha *Hakuin's Song of Meditation*
 The White Lotus *The Sayings of Bodhidharma*
 Yakusan: Straight to the Point of Enlightenment

Responses to Questions

Be Still and Know
 Come, Come, Yet Again Come
 The Goose is Out!
 The Great Pilgrimage: From Here to Here
 The Invitation
 My Way: The Way of the White Clouds
 Nowhere to Go But In
 The Razor's Edge

Walk Without Feet, Fly Without Wings and
Think Without Mind
The Wild Geese and the Water
Zen: Zest, Zip, Zap and Zing

Talks in America

From Bondage to Freedom *Answers to the Seekers of the Path*
From Darkness to Light *Answers to the Seekers of the Path*
From Death to Deathlessness *Answers to the Seekers of the Path*
From the False to the Truth *Answers to the Seekers of the Path*
From Unconsciousness to Consciousness
The Rajneesh Bible (Volumes 1-4)

The World Tour

Beyond Enlightenment *Talks in Bombay*
Beyond Psychology *Talks in Uruguay*
Light on the Path *Talks in the Himalayas*
The Path of the Mystic *Talks in Uruguay*
The Osho Upanishad *Talks in Bombay*
Sermons in Stones *Talks in Bombay*
Socrates Poisoned Again After 25 Centuries *Talks in Greece*
The Sword and the Lotus *Talks in the Himalayas*
The Transmission of the Lamp *Talks in Uruguay*

Osho's Vision for the World

The Golden Future
The Hidden Splendor
The New Dawn
The Rebel
The Rebellious Spirit

The Mantra Series

Satyam-Shivam-Sundram *Truth-Godliness-Beauty*
Sat-Chit-Anand *Truth-Consciousness-Bliss*
Om Mani Padme Hum *The Sound of Silence:
The Diamond in the Lotus*
Hari Om Tat Sat *The Divine Sound: That is the Truth*
Om Shantih Shantih Shantih *The Soundless Sound:
Peace, Peace, Peace*

Personal Glimpses

Books I Have Loved
Glimpses of a Golden Childhood
Notes of a Madman

Interviews with the World Press

The Last Testament (Volume I)

Darshan Diaries – Intimate Talks between Master and Disciple

Hammer on the Rock (December 10, 1975 – January 15, 1976)
Above All Don't Wobble (January 16 – February 12, 1976)
Nothing to Lose But Your Head (February 13 – March 12, 1976)
Be Realistic: Plan For a Miracle (March 13 – April 6, 1976)
Get Out of Your Own Way (April 7 – May 2, 1976)
Beloved of My Heart (May 3 – 28, 1976)
The Cypress in the Courtyard (May 29 – June 27, 1976)
A Rose is a Rose is a Rose (June 28 – July 27, 1976)
Dance Your Way to God (July 28 – August 20, 1976)
The Passion for the Impossible (August 21 – September 18, 1976)
The Great Nothing (September 19 – October 11, 1976)
God is Not for Sale (October 12 – November 7, 1976)
The Shadow of the Whip (November 8 – December 3, 1976)
Blessed are the Ignorant (December 4 – 31, 1976)
The Buddha Disease (January 1977)
What Is, Is, What Ain't, Ain't (February 1977)
The Zero Experience (March 1977)
For Madmen Only (Price of Admission: Your Mind) (April 1977)
This is It (May 1977)
The Further Shore (June 1977)
Far Beyond the Stars (July 1977)
The No Book (No Buddha, No Teaching, No Discipline)
(August 1977)
Don't Just Do Something, Sit There (September 1977)
Only Losers Can Win in This Game (October 1977)
The Open Secret (November 1977)
The Open Door (December 1977)
The Sun Behind the Sun Behind the Sun (January 1978)
Believing the Impossible Before Breakfast (February 1978)
Don't Bite My Finger, Look Where I'm Pointing (March 1978)
Let Go! (April 1978)
The 99 Names of Nothingness (May 1978)
The Madman's Guide to Enlightenment (June 1978)
Don't Look Before You Leap (July 1978)
Hallelujah! (August 1978)
God's Got a Thing About You (September 1978)
The Tongue-Tip Taste of Tao (October 1978)
The Sacred Yes (November 1978)
Turn On, Tune In, and Drop the Lot (December 1978)
Zorba the Buddha (January 1979)
Won't You Join the Dance? (February 1979)
You Ain't Seen Nothin' Yet (March 1979)
The Shadow of the Bamboo (April 1979)
Just Around the Corner (May 1979)
Snap Your Fingers, Slap Your Face & Wake Up! (June 1979)
The Rainbow Bridge (July 1979)
Don't Let Yourself Be Upset by the Sutra, Rather Upset the Sutra
Yourself (August/September 1979)
The Sound of One Hand Clapping (March 1981)

Compilations

At the Feet of the Master
Beyond the Frontiers of the Mind
Bhagwan Shree Rajneesh: On Basic Human Rights
The Book *An Introduction to the Teachings of
Bhagwan Shree Rajneesh*
Series I from A – H
Series II from I – Q
Series III from R – Z
Death: The Greatest Fiction
The Greatest Challenge: The Golden Future
India My Love
I Teach Religiousness Not Religion
Jesus Crucified Again, This Time in Ronald Reagan's America
The New Man: The Only Hope for the Future
Priests and Politicians: The Mafia of the Soul
The Rebel: The Very Salt of the Earth
Sex: Quotations from Bhagwan Shree Rajneesh
Tantra, Spirituality and Sex
Excerpts from The Book of the Secrets
What is Meditation

Gift Books of Osho Quotations

A Must for Morning Contemplation
A Must for Contemplation Before Sleep
Gold Nuggets
More Gold Nuggets
Words from a Man of No Words

Photobiographies

Shree Rajneesh: A Man of Many Climates, Seasons and Rainbows
Through the Eye of the Camera
This Very Place The Lotus Paradise
Bhagwan Shree Rajneesh and His Work 1978–1984

Books about Osho

Bhagwan: The Buddha For The Future (*by Juliet Forman*)
Bhagwan Shree Rajneesh: The Most Dangerous Man
Since Jesus Christ (*by Sue Appleton*)
Bhagwan: The Most Godless Yet The Most Godly Man
(*by Dr. George Meredith*)
Bhagwan: One Man Against the Whole Ugly Past of Humanity
The World Tour and Back Home Again to India
(*by Juliet Forman*)
Bhagwan: Twelve Days That Shook The World
(*by Juliet Forman*)
The Choice is Ours (*by Dr. George Meredith*)
Diamond Days With Osho (*by Ma Prem Shunyo*)
Was Bhagwan Shree Rajneesh Poisoned by Ronald Reagan's
America? (*by Sue Appleton*)

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद

सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत
(विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण

गीता-दर्शन
(आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर

महावीर-वाणी (दो भागों में)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

बुद्ध

एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

अष्टावक्र

अष्टावक्र महागीता (छह भागों में)

लाओत्से

ताओ उपनिषद (छह भागों में)

जगजीवन

नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

दरिया

कानों सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कंवल

सुंदरदास

हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

धरमदास

जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

पलटू

अजहूँ चेत गंवार
सपना यह संसार
काहे होत अधीर

दादू

सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

मलूकदास

कन थोरे कांकर धने
रामदुवारे जो मरे

कबीर

सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
न कानों सुना न आंखों देखा
(कबीर व फरीद)

शांडिल्य

अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

अन्य रहस्यदर्शी

भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढमते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
पद घुंघरू बांध (मीरा)

नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना
(दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
हंसा तो मोती चुगै (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर

नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करै
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर

दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं
सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पांजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
क्या सोवै तू बावरी
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र

संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)

योग

पतंजलि : योग-सूत्र (पांच भागों में)
योग : नये आयाम

विचार-पत्र

क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप

पत्र-संकलन

अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा

मिट्टी के दीये

झेन, सूफी और उपनिषद् की कहानियां

बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

ध्यान, साधना

ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
नेति-नेति
चेति सकै तो चेति
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
समाधि कमल
साक्षी की साधना
धर्म साधना के सूत्र
मैं कौन हूं
समाधि के द्वार पर
अपने माहिं टटोल
ध्यान दर्शन
तृषा गई एक बूंद से
ध्यान के कमल
जीवन संगीत
जो घर बारे आपना
प्रेम दर्शन

ओशो का हिन्दी साहित्य

साधना-शिविर

साधना-पथ
मैं मृत्यु सिखाता हूँ
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
असंभव क्रांति
रोम-रोम रस पीजिए

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और
अब है भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज
नये भारत की खोज
नये भारत का जन्म
नारी और क्रांति
शिक्षा और धर्म
भारत का भविष्य

विविध

मैं कहता आंखन देखी
एक एक कदम
जीवन क्रांति के सूत्र
जीवन रहस्य
करुणा और क्रांति
विज्ञान, धर्म और कला
शून्य के पार
प्रभु मंदिर के द्वार पर
तमसो मा ज्योतिर्गमय
प्रेम है द्वार प्रभु का
अंतर की खोज
अमृत की दिशा
अमृत वर्षा
अमृत द्वार
चित चकमक लागे नाहिं
एक नया द्वार
प्रेम गंगा
समुंद समाना बुंद में
सत्य की प्यास

शून्य समाधि

व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज
अज्ञात की ओर
धर्म और आनंद
जीवन-दर्शन
जीवन की खोज
क्या ईश्वर मर गया है
नानक दुखिया सब संसार
नये मनुष्य का धर्म
धर्म की यात्रा
स्वयं की सत्ता
सुख और शांति
अनंत की पुकार

अंतरंग वार्ताएं

संबोधि के क्षण
प्रेम नदी के तीरा
सहज मिले अविनाशी
उपासना के क्षण

ओशो के आडियो-वीडियो प्रवचन एवं साहित्य की समस्त जानकारी, आर्डर एवं राशि भेजने के लिए

सम्पर्क-सूत्र :

साधना फाउंडेशन

17, कोरेगांव पार्क, पुणे-411001 (महाराष्ट्र)

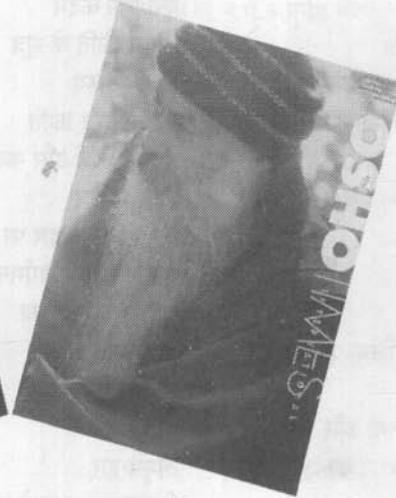
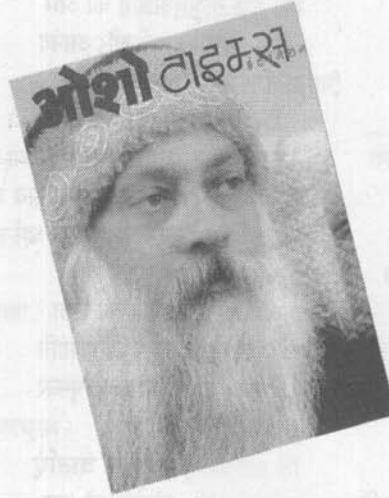
फोन : (0212) 628562 Fax: (0212) 624181

ओशो पत्रिकाएं

ओशो टाइम्स

इंटरनेशनल

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र



एक वर्ष में 12 अंक

	एक प्रति का मूल्य	वार्षिक शुल्क
हिंदी संस्करण	15 रुपये	150 रुपये
अंग्रेजी संस्करण	55 रुपये	660 रुपये

ओशो टाइम्स इंटरनेशनल के लिए संपर्क सूत्र :

ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.

50, कोरेगांव पार्क, पुणे-411001 (महाराष्ट्र) फोन: (0212) 628562

ध्यान में कुछ अनिवार्य तत्व हैं;
विधि कोई भी हो,
वे अनिवार्य तत्व हर विधि के लिए आवश्यक हैं।
पहली है एक विश्रामपूर्ण अवस्था:
मन के साथ कोई संघर्ष नहीं,
मन पर कोई नियंत्रण नहीं; कोई एकाग्रता नहीं।
दूसरा, जो भी चल रहा है उसे बिना किसी हस्तक्षेप के,
बस शांत सजगता से देखो भर—
शांत हो कर, बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के,
बस मन को देखते रहो।

ये तीन बातें हैं: विश्राम, साक्षित्व, अनिर्णय—
और धीरे-धीरे एक गहन मौन तुम पर उतर आता है।
तुम्हारे भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है।
तुम हो, लेकिन 'मैं हूँ' का भाव नहीं है—
बस एक शुद्ध आकाश है।

ध्यान की एक सौ बारह विधियाँ हैं;
मैं उन सभी विधियों पर बोला हूँ।
उनकी संरचना में भेद है, परंतु उनके आधार वही हैं:
विश्राम, साक्षित्व और एक अनिर्णयात्मक दृष्टिकोण।

ओशो

यह ओशो का विशेष गुण है कि
वे व्यक्ति को सारे आध्यात्मिक अनुभव के
गहन बोध में ले जाने में उसकी मदद करते हैं।
मैं मानता हूँ कि हमारे समय में वे धार्मिक चेतना की एक
प्रमुख शक्ति हैं।

जेम्स ब्रोटन
प्रसिद्ध अभिनेता



A REBEL BOOK

ISBN 01-7201-022-7